शिक्षण
की
वैज्ञानिकता



कलासन प्रकाशन

कल्याणी भवन
मॉडर्न मार्केट, बीकानेर
द्वारा प्रकाशित

शिक्षण की वैज्ञानिकता

रामनरेश सोनी

कलासन प्रकाशन, बीकानेर

संस्करण प्रथम 1996
मुद्रक कल्याणी प्रिण्टर्स माल गोदाम रोड बीकानेर
प्रकाशक कलासन प्रकाशन
कल्याणी भवन मॉडर्न मार्केट बीकानेर 334001 [राज]
फोन 0151 526890
प्रमुख वितरक कामेश्वर प्रकाशन
तेलीवाड़ा चौक बीकानेर 334 005 [राज]
फोन 0151 524330
मूल्य 120/
आवरण पारस भंसाली

मेरी अपनी बात

सड़क के किसी कोने मे खड़े होकर क्या आपने आने जाने वालो के चेहरो का अवलोकन किया है? कीजिए कभी। मुझे तो हर चेहरा लटका हुआ उदास विषादग्रस्त किसी उलझन मे खोया हुआ ही दिखाई दिया है। किसी भी चेहरे पर आतरिक उल्लास और खुशी नज़र नहीं आई। सोचने की बात है कि लोगो के चेहरे की प्रसन्नता कहाँ विलीन हो गई? किसने छीन लिया उनका आनद?

बड़े बुजुर्गों के चेहरो की उदासी तो समझ मे आती है लेकिन बच्चे? गुलाबो सी खिलखिलाती हँसी वाले बच्चो के उल्लास को किसने छीन लिया? कधो पर बस्तों का बोझ लटकाए अपनी अपनी पोशाक में पैदल साइकिल मोपेड या बस से जाते बच्चो को देखकर हैरानी होती है कि उनकी बाल-सुलभ अठखेलियो का क्या हुआ? उनकी ख़यालों की समानातर दुनिया कहाँ विलुप्त हो गई? बेवक्त उनको प्रौढ कौन बना गया?

विद्यालयो मे जाने वाले अधिकाश विद्यार्थी परेशान है। किसी को मास्टरजी के डडे का भय है। किसी को कक्षा में पिछड़े जाने या सबके सामने अपमानित होने का भय है। कोई इसलिए दुखी है कि होमवर्क पूरा नहीं हुआ और जो समझाया गया वह समझ मे नहीं आया। कोई बच्चा घर से माँ-बाप की डॉट खाकर स्कूल जा रहा है कि टेस्टो मे नबर कम क्यो आए? कोई छात्र इसलिए परेशान है कि स्कूलो में जो जो चीजे मँगवाई गई उनके लिए उसके घर मे पैसे नहीं है। सब की अपनी अपनी पीड़ाएँ है परेशानियाँ है।

शिक्षा तो उत्फुल्लता देती ह बच्चो को हिम्मत हौंसला ताजगी और आत्मविश्वास देती है फिर यह हालत क्यो? शिक्षा तो रास्ता बनाना सिखाती है बच्चो को सक्षम बनाती है प्रोत्साहन देती है ऊर्जावान बनाती है फिर ऐसा क्यो? क्यों वे एक-दूसरे के लिए अजनबी है? क्यो सब अलग अलग खाँचो में जीते है? क्यो वे एक-दूसरे को नहीं समझते साथ नहीं देते? क्यो उनके लिए कक्षा के सहपाठी दुश्मन बन जाते है? क्यो उनके दिमाग मे रटने शॉर्टकट अपनाने कुजियाँ वन डे सीरीज पढने और अच्छे अक लाने का ऊहापोह भरा रहता है? क्या ये सवाल सहज ही टाल देने योग्य है?

शिक्षा के रचनाकार इस बात से अनजान तो नहीं कि जिन मूल्यो

और क्षमताओं के अर्जन के लिए बालकों को विद्यालयों में भेजा जाता है वे विद्यालयों की औपचारिकताओं तले कब की दम तोड़ चुकी हैं। वहाँ तो बस एक ही तत्त्व नजर आता है–होड़। विद्यार्थियों को बस यही सिखाया जाता है कि हर दूसरे साथी से आगे बढ़ो उसे परास्त करो पीछे खदेड़ो। हमारा सम्पूर्ण कक्षा शिक्षण इसी स्पर्धा और प्रतियोगिता के पहियों पर दौड़ा जा रहा है। एक महत्वाकांक्षा हर किसी को दौड़ा रही है। भारी भरकम पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तकों और कापियों की बढ़ती तादाद होमवर्क का बढ़ता घटाटोप अंकों के हंटर की मार और परीक्षा में साँप सीढ़ी का त्रासदायी खेल।

एकाएक लोगों के दिमाग से जीवन और शांतिपूर्ण आह्लादकारी जीवन के लिए शिक्षा के विचार कहाँ गायब हो गए? क्या यही है जीवन की तैयारी की शिक्षा? व्यक्ति को स्वतंत्र और सक्षम बनाने की शिक्षा? क्या इस शिक्षा के सहारे बालक अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है? अपना पेट भर सकता है?

जब विद्यालयों में प्रेम और सहकार पर बल नहीं दिया जाता जब वहीं से सामाजिकता के संस्कार नहीं डाले जाते तो बच्चों में अपने परिजनों पड़ौसियों के प्रति लगाव व प्यार कैसे पैदा होगा? बच्चों को पाठ्यपुस्तक पढ़ाई जाती हैं पर उनमें निहित मूल्यों को जीवन में धारण करना नहीं सिखाया जाता न गुरुजन उन पर बल देते न उन्हें लेकर छात्रों को सम्मानित किया जाता। परीक्षा गुणों और मूल्यों की नहीं होती पाठ्यपुस्तकों की होती है। छात्रों को प्रतियोगी बनाया जाता है ताकि वे एक-दूसरे को हरा सकें। क्या यह शिक्षा अहिंसक समाज रचना के बापू के सपनों की शिक्षा है? यदि नहीं तो क्या हम शिक्षा के माध्यम से ऐसा ही प्रतियोगिता पर आधारित परस्पर अजनबी समाज निर्मित करना चाहते हैं?

बगीचे में फूलों का विकास सहज स्वाभाविक रीति से होता है। प्रकृति रूपी गुरु हर किसी के मौलिक गुणों के विकास पर नज़र रखता है ताकि वे अपने निराले रंगों आकार महक और गुणों के साथ प्रकट हो सकें। प्रकृति का शिक्षक शॉर्टकट नहीं चाहता। उसके लिए प्रतियोगिता और होड़ का महत्त्व नहीं है अपितु वहाँ जीवन की जय जयकार है जीवन का वैविध्य है और जीवन के उल्लासपूर्ण उत्सव हैं।

प्राचीन मिस्र के राजा टोलेमी को ज्योमिति पढ़ने की इच्छा हुई। उसने ग्रीस के युक्लिड को अपना गुरु बनाया। राजा को राजकाज की व्यस्तता के कारण समय कम मिलता था अतः उसने युक्लिड से कहा कि मुझे ज्योमिति सीखने का शॉर्टकट कोई छोटा रास्ता बताओ। उत्तर में युक्लिड ने साफ कह दिया कि 'राजन' ज्योमिति सीखने का कोई छोटा रास्ता नहीं!

यही बात शिक्षा और जीवन पर लागू होती है। इसका भी कोई शॉर्टकट नहीं होता। सधा काम साधना और सावधानी चाहता है। धैर्य और समर्पण चाहता

है। ज्योमिति मे एक प्रमेय के बाद दूसरा प्रमेय आता है। दूसरे से तीसरा व चौथा क्रमश जुड़े होते है। बीच मे से किसी को हटाया अथवा निकाला नहीं जा सकता। यह रास्ता तो सभी को बराबर काटना पड़ता है। इसके लिए कोई शॉर्टकट नहीं होता।

पर आज की शिक्षा जीवन की तैयारी हेतु साधना सावधानी समर्पण और धैर्य का रास्ता अपनाने की बजाय प्रतिस्पर्धा का मार्ग अपनाती है। ऐसे मे यदि शिक्षक-शिक्षार्थी के बीच आत्मीय सबध न रहे प्रेम और प्रोत्साहन न रहे तो कैसा आश्चर्य! आज की शिक्षा ईर्ष्या की नींव पर खड़ी है और बालकों को घर परिवार समाज से अजनबी बना रही है। कल यही बालक बड़े होकर पद प्रतिष्ठा प्रलोभनो के जलावर्त मे फॅस जाएँ तो कैसा आश्चर्य!

जानते सब है देखते सब हैं सब की जानकारी के बावजूद एक धोखाधड़ी खुले आम चल रही है पर इसे रोकने को कोई तैयार नहीं। शिक्षा आर्थिक लाभ और ऊँचे पद हथियाने का माध्यम बन गई है। जिस वर्ग को यह लाभ मिल रहा है उसे तो मौन रहना ही इष्ट है!

पर अध्यापन का क्षेत्र अपनी जीवतता और ऊष्मा क्यो खोता जा रहा है यह देखकर हैरानी होती है। अध्यापन मे वह तेजस्विता वह सलग्नता वह स्वाध्याय प्रियता और नवोन्मेष परक दृष्टि ही धुँधली होने लगी है जो इसका प्राण थी। कहाँ गई वह आग?

जापान के बौद्ध झेन सम्प्रदाय के एक सत बोकोजू से सबधित एक बोधकथा आपने पढी होगी। वे अपने आश्रम मे धूनी के पास बैठे हुए थे कि तभी एक यात्री आया। ठड के मारे वह ठिठुर रहा था। धूनी के पास बैठते ही उसने राख को अपनी उगली से इधर उधर किया और हताशा के स्वर मे बोला लगता है आग ठडी हो गई। इस पर बोकोजू ने अपनी लाक्षणिक शैली मे कहा आग भी कभी ठडी होती है भला! लकड़ी से जरा गहरे कुरेदो न! यात्री ने लकड़ी से कुरेदा तो सचमुच राख के गर्भ से ढेर सारे लालसुर्ख दहकते अगारे बाहर निकल आए। यात्री को बड़ा सुकून मिला और इस बोधकथा का मर्म हृदयगम कर ले तो हमे भी बड़ा सुकून मिलेगा।

बोकोजू की ही भॉति राष्ट्रपिता बापू भी वर्षों से कहते आए हैं कि शिक्षा और सस्कारो की जो आग तुम्हारे भीतर दबी है जरा उसे कुरेदो। उससे ऐसा अदभुत तेज प्रकट होगा कि देश के लाखो बच्चो का व्यक्तित्व आलोकित हो उठेगा। टॉलस्टाय आश्रम मे काम करते हुए महात्मा गॉधी ने अध्यापकों की स्वायत्तता मौलिक सूझ और बच्चो के प्रति सलग्नता के मर्म को समझा था। विश्व के महान शिक्षाविदों की भॉति उन्होने भी अध्यापको के प्रति अपनी अपेक्षा व्यक्त की थी कि भले ही आप बालक को भाषा या गणित सिखाएँ पर आपको सफलता तभी मिलेगी जब आपको भाषा या गणित के ज्ञान के साथ साथ उस बालक के बारे मे भी गहन ज्ञान होगा। क्या हमारे विद्यालयो में ऐसा होता है?

अध्यापको के प्रशिक्षण मे शिक्षा मनोविज्ञान शि ा सिद्धात और शिक्षा प्रविधि की बारीकियो का समावेश तो है पर विद्यालयो मे छात्रो से व्यवहार एव वैचारिक आदान प्रदा‍न के बीच उनका प्रयोग शायद कहीं-कहीं होता होगा। शिक्षण की प्रभावोत्पादकता के लिए इनकी उपादेयता असदिग्ध है।

विश्व के महान शिक्षा विज्ञानियो और मनोविज्ञानवेत्ताओ ने वर्षों की साधना के उपरात हम ऐसे युगातरकारी शिक्षा सिद्धात दिए है कि जिनको हृदयगम करके कोई भी शि क अपना शि ण वैज्ञानिक बना सकता है। जब विज्ञान के सूत्र सार्वदेशिक और सार्वकालिक होते है और उनका समान रूप से प्रयोग करके वाछित परिणाम पाए जा सकते है तो शिक्षाविदो के बहुमूल्य विचारो का व्यवहार म लाकर वाछित परिणाम क्यो नहीं पाए जा सकते? तात्त्विक विज्ञानो और सामाजिक विज्ञानो के बीच जितना अतर है वह तो रहगा ही पर नि सदेह अध्यापको को अपना शिक्षण प्रभावी एव वैज्ञानिक बनाने का सताष मिलेगा।

पिछले वर्षों मे जॉन हॉल्ट कार्ल रोजर्स फ्लैंडर्स ज्याँ पियाज़े विलियम जेम्स कोनराड लॉरेंज मार्शल मैक्लुहान माकारेंको एरिक एरिक्सन बैंजामिन ब्लूम पावलो फ्रेरे वसीली सुखोम्लीस्की गिजुभाई बधेका वर्जीनिया एक्सेलाइन थोर्नडाइक जिरोम ब्रूनर ए एस नील जे कृष्णमूर्ति मार्गरेट डोनाल्डसन हर्बर्ट थेलन तथा रोबी किड के लेखो ग्रथो का आस्वादन करते हुए मुझ लगा कि यदि कोई चाहे तो इन विद्वानो के विचारो को आत्मसात करके अपने शिक्षण को जीवत प्रभावशाली तथा वैज्ञानिक बना सकता है। इस पुस्तक के सभी निबध और कहानीनुमा लेख क्रमश इन्हीं विद्वानो के चिन्तन की परिणति हैं। राजस्थान पत्रिका शिविरा पत्रिका व 'नया शिक्षक' मे जब ये रचनाएँ प्रकाशित हुई थी तो सुधी पाठको ने इन्हें अपने तईं उपादेय समझा था। इसीलिए जब कलासन प्रकाशन के श्री मनमोहन ने मेरी पुस्तक प्रकाशित करने का प्रस्ताव सामने रखा ता मेरी यही इच्छा थी कि अपने हम पेशा अध्यापकों शिक्षा प्रेमियो एव विचारको के हाथो में ये रचनाएँ जानी चाहिए। आशा है सुधी पाठक इनका आस्वादन करेगे तथा शैक्षिक सवाद की धारा को आगे बढाएँगे।

रामनरेश सोनी

सैंट्रल जेल के सामने
बीकानेर (राज) 334005

अनुक्रम

सीखना नहीं करना 1
सम्बन्ध बिना शिक्षण कैसा ! 6
कक्षा शिक्षण की वैज्ञानिकता 11
कोरे कागद नहीं है बालक 19
बात वहाँ से शुरु करें जहाँ विद्यार्थी है 29
शिक्षण मे बालक के परिवेश की पकड़ 36
शिक्षण मे सम्प्रेषणीयता 40
अनुशासन शिक्षण का परिणाम 47
जैसी टहनी वैसा वृक्ष 53
बालक को फल क्या करे ? 61
शिक्षण का प्राण है संवाद 66
प्रकृति और शिक्षण 72
बालको की स्वतत्रता 78
बालक के मनोभावो की समझ 95
खेलना भी सीखना है 102
सवाल सीखने सिखाने का 112
समरहिल का सम्मोहन 118
जीवन और शिक्षा की समग्रता 128
वसुधा का स्कूल एक नई दिशा 133
किसिम किसिम के अध्यापक 141
शिक्षण का क्षण 146

सीखना नहीं, करना

शिक्षा व्यक्ति को जीवन के लिए पूरी तरह से तैयार न करे तो वह कैसी शिक्षा ? ताता रटत अथवा पढे हुए पाठो का ज्या का त्या उगल देना तो शिक्षा नहीं है। कक्षा की चहारदीवारी और किताबा के पन्ना म ही शिक्षा सीमित नहीं हाती। शिक्षा हमारे चारो ओर है। घर परिवार, गली मोहल्ला स लेकर हाट बाज़ारा और प्रकृति की विस्तीर्ण गादी म—सर्वत्र शिक्षा की अनत सभावनाएँ बिखरी हैं। बालक के अवलोकन म उसके चलने ओर क्रिया करने म शिक्षा है। यदि किन्हीं शालाआ म बालकों को स्वक्रिया और अवलोकन के द्वारा स्वसृजन व स्वचिंतन का अवसर दिया जाता है तो समझना चाहिए कि वे शिक्षा और जीवन म फर्क नहीं करती बल्कि वे शिक्षा को जीवन की तैयारी मानकर चलती हैं।

खेल के मेदाना स्काउटिंग के शिविरा प्रयागशालाआ समाजापयोगी उत्पादक एव समाज सवा शिविरा नाट्य शिविरो आदि मे सक्रिय सहभागिता स बालको को ऐसी आधारभूत बाता की आधारभूत दृष्टि मिलती है कि जो कक्षा शिक्षण द्वारा कतई सभव नहीं। अमेरिका में आउट ऑव स्कूल एज्युकेशन क समर्थक व पुरस्कर्ता शिक्षाविद जॉन हॉल्ट ने शिक्षा क माध्यम स बालको को जीवन के लिए तैयार करने का मर्म बताते हुए अनेक पुस्तक लिखी हैं। उनकी एक मननीय पुस्तक है 'इन्स्टीड ऑव एज्युकेशन। वस हाऊ चिल्ड्रन लर्न हाऊ चिल्ड्रन फल 'फ्रीडम फ्रॉम बियाड तथा एस्केप फ्रॉम चाइल्डहुड पुस्तक भी पढी जानी चाहिए।

जॉन हॉल्ट की 'इन्स्टीड ऑव एज्युकेशन पुस्तक करने (डुइग) से सबधित है अथात स्वनिर्देशित सोद्देश्य सार्थक जीवन एव कर्म से सबधित है साथ ही साथ यह पुस्तक उस प्रकार की शिक्षा के विरुद्ध है जो स्पन्दनशील जीवन स्थितियो से काट कर दी जाती है—जहाँ पढाई म दबाव डर सज़ा लोभ व लालच का बोलबाला रहता है।

आज की दुनिया मे शिक्षा का जो अर्थ प्रचलन म है उसे दख कर जॉन हॉल्ट को बड़ी कोफ्त होती है—अर्थात वह शिक्षा जो चद लोग

सीखना नहीं, करना

शिक्षा व्यक्ति को जीवन के लिए पूरी तरह से तैयार न करे तो वह कैसी शिक्षा ? तोता रटन्त अथवा पढे हुए पाठो का ज्यो का त्यो उगल देना तो शिक्षा नहीं है। कक्षा की चहारदीवारी और किताबो के पन्नो म ही शिक्षा सीमित नहीं होती। शिक्षा हमारे चारो ओर है। घर परिवार गली मोहल्ले से लेकर हाट बाजारो और प्रकृति की विस्तीर्ण गोदी म–सर्वत्र शिक्षा की अनत सभावनाएँ बिखरी हैं। बालक के अवलोकन मे उसके चलने और क्रिया करने म शिक्षा है। यदि किन्हीं शालाओ म बालकों को स्वक्रिया और अवलोकन के द्वारा स्वसृजन व स्वचितन का अवसर दिया जाता है तो समझना चाहिए कि वे शिक्षा और जीवन में फर्क नहीं करती बल्कि व शिक्षा को जीवन की तैयारी मानकर चलती हैं।

खेल के मैदानो स्काउटिंग के शिविरो प्रयोगशालाओ, समाजोपयोगी उत्पादक एव समाज सेवा शिविरो नाट्य शिविरो आदि म सक्रिय सहभागिता से बालको को ऐसी आधारभूत बातो की आधारभूत दृष्टि मिलती है कि जो कक्षा शिक्षण द्वारा कतई सभव नहीं। अमेरिका में आउट ऑव स्कूल एज्युकेशन के समर्थक व पुरस्कर्ता शिक्षाविद जॉन हॉल्ट ने शिक्षा के माध्यम से बालको को जीवन के लिए तैयार करने का मर्म बताते हुए अनेक पुस्तक लिखी हैं। उनकी एक माननीय पुस्तक है इन्स्टीड ऑव एज्युकशन। वैसे 'हाऊ चिल्ड्रन लर्न 'हाऊ चिल्ड्रन फेल फ्रीडम फ्रॉम बियाड तथा एस्केप फ्रॉम चाइल्डहुड पुस्तक भी पढी जानी चाहिए।

जॉन हॉल्ट की 'इन्स्टीड ऑव एज्युकेशन' पुस्तक करने (डुइग) से सबधित है अर्थात स्वनिर्देशित सोद्देश्य सार्थक जीवन एव कर्म स सबधित है साथ ही साथ यह पुस्तक उस प्रकार की शिक्षा के विरुद्ध है जो स्पन्दनशील जीवन स्थितियो से काट कर दी जाती है–जहाँ पढ़ाई म दबाव डर सज़ा लाभ व लालच का बोलबाला रहता है।

आज की दुनिया म शिक्षा का जो अर्थ प्रचलन मे है उसे देख कर जॉन हॉल्ट को बड़ी कोफ्त होती है–अर्थात् वह शिक्षा जो चद लोग

स्वार्थो के निमित्त आरा क लिए सयाजित करते हैं—अर्थात उन्हें ढालना उन्हे सरकार देना उन्हे वह सब कुछ सिखाना जो वे उनके वास्ते ज़रूरी समझते है। हॉल्ट ऐसी शिक्षा के सख्त खिलाफ है। उसके अनुसार शिक्षा वह है जो व्यक्ति अपने वास्ते अर्जित करता है न कि वह जो कोई दूसरा उसे देता है। जिस शिक्षा मे व्यक्ति के 'स्व अर्जन' के बजाय 'प्रदान का तत्त्व प्रमुख हो जाता है वह अपनी प्रभविष्णुता खो देती है। भयकर विकृति के कारण फिर उसे सुधार पाना भी सभव नहीं होता क्योंकि उसका प्रयाजन न विवेक सम्मत होता है, न मानवीय।

अपनी शिक्षा अपना विवेक दुनिया को देखने का अपना नज़रिया अपने और पराया के अनुभवों का तुलनात्मक विवेचन यह हमारा मौलिक मानवीय अधिकार है। इसके विपरीत कोई व्यक्ति 'शिक्षा के बहाने हमसे यह अधिकार छीन लेना चाहता हो तो समझ लेना चाहिए कि वह हमारी अस्मिता पर प्रहार करना चाहता है। उसका मतलब यह हुआ कि हम अपने बारे मे सोचे विचार भी नहीं जीवन पर्यंत औरो पर निर्भर रहे वही लाग हमे हमारी ज़िदगी का मकसद बताएँ कि हम किस तरह बर्ताव करे? अथात हमारे अपने जीवनानुभवो की कोई महत्ता नहीं ।

वस्तुत मानवता के विकास की दिशा मे अब तक जितने भी प्रकार के सामाजिक अन्वेषण हुए है जॉन हॉल्ट के मत से उन सब म सबसे अधिक सत्तावादी और खतरनाक तत्त्व है शिक्षा क्योंकि इसके साथ स्कूल नामक एक सहकर्मी तत्र जुड़ा हुआ है जिसम अनिवार्यता का तत्त्व भी है और प्रतियागिता धर्मिता भी। इस तत्र ने हमे इस क़दर गुलाम बना डाला है कि हम उत्पादक उपभोक्ता अथवा दर्शक की भूमिकाएँ धारण किए चक्कर लगाते रह और लोभ द्वेष अथवा भयवश जीवन जीते रह। ऐसी शिक्षा को सुधारने के बजाय समाप्त करना ही लाज़िमी है क्योंकि यह मानवीय आत्माओ को ढालने का बड़ा ही भद्दा और अमानवीय व्यापार बन चली है।

जॉन हॉल्ट जब 'सीखने के बजाय करने का आग्रह सामने रखता है तो इससे उसका आशय शरीर भुजबल अथवा मशीन ही नहीं मस्तिष्क भी है। शारीरिक तथा बौद्धिक गतिविधियाँ तो साथ साथ चलती है उन्हे पृथक नहीं किया जा सकता। वे परस्पर एक है तथा सयुक्त समनुपातिक रूप मे काम करती है। जॉन हॉल्ट के करने की बात म बोलने सुनने लिखने पढ़ने सोचने—बल्कि सपने देखने तक की क्रियाएँ सम्मिलित रहती है। तत्त्व की बात यह है कि कर्ता ही निर्णय लेने

का अधिकारी होगा कि वह क्या पढ़े लिखे कहे सुने बोले अथवा सपने देखे? किसी और को यह हक़ हासिल नहीं रहेगा। कर्म के केन्द्र म तो कर्ता ही रहेगा। वही योजना बनाये निर्देश दे नियत्रित करे और वही निष्कर्ष निकाले। यह एक सोद्देश्य दृष्टि है।

जब हॉल्ट 'सीखने के बजाय करने की और बेहतर तरीके से कार्य करने की बात कहता है तो उसका सकेत 'सीखने' का लेकर प्रचलित भ्रातियो की तर्कहीनता को सिद्ध करना है। सीखन का अर्थ प्रचलन मे यही रह गया है कि उसका जीवन से कहीं कोई सबध नहीं है कि व्यक्ति तभी सीख सकेगा कि जब वह कोई काम न करे कि वह उसी स्थल पर सीख सकेगा कि जहाँ कुछ काम नहीं कराया जाता। स्कूली तत्र से निकलने वाला व्यक्ति तो सीखने का यहाँ तक गुणगान करेगा कि (क) सीखने का मन हो तो शाला मे जाओ, (ख) सिखाने का काम सिर्फ अध्यापक ही कर सकता है (ग) सीखना बहुत ही पेचीदा काम है (घ) सीखने मे यह आशका लगी रहती है कि आप सीखो भी और न भी सीखो।

इन सब के विपरीत हमारा अपना अनुभव बताता है कि शालाओ से भी बेहतर विधि से सीखने के दृष्टात हमे शालाओ से बाहर मिल जाते है। यहाँ तक कि जो बात शालाओ से नहीं सीख सके उन्हे बाहर से आसानी से सीख लिया। इस तरह की अनौपचारिक विधि से सीखने वाले लोगों को इस कथन पर हँसी आएगी कि ज्ञान और मेधा स्कूल और किताबो म ही पाई जाती है अन्यत्र नहीं। जॉन हॉल्ट का तजुर्बा है कि जो कुछ वह जानता है उसमे से अधिकाश ज्ञान-कौशल उसने स्कूलो से नहीं सीखा बल्कि हैरत की बात है कि सीखने की जो स्थितियाँ (लर्निंग सिच्युएशस) शालाओ मे जुटाई गईं उनसे सीखने की कोई स्थिति नही बन पाई।

सीखने के सिद्धातो मे एक और शब्द प्राय सुनने को मिलता है—लर्निंग एक्सपीरियस। शिक्षाविद इसके दो भाग बताते है एक वे अनुभव जिनसे हम कुछ सीखते है और दूसरे वे अनुभव जिनसे हम कुछ नही सीख सकते। जॉन हॉल्ट कहते है कि क्या सचमुच ऐसे भी अनुभव होते है जिनसे हम कुछ भी न सीख सकते हो? इसके अनुसार हम प्रत्येक कार्य से सीखते है यह बात दीगर है कि हमने जो कुछ सीखा है उससे हमारी जानकारी मे बढोतरी हुई या कि हमारे अज्ञान में हम बुद्धिमान बने अथवा मूर्ख ताकतवर बने अथवा कमज़ोर।

जॉन हॉल्ट के विचार का केन्द्रीय बिन्दु यही है कि जो अनुभव

जीवन से गहरे जुड़े हुए नहीं होते और जो आगामी जीवन के लिए प्रीतिकर अथवा उपयोगी नहीं होते उन अनुभवो से सीखने की सभावनाएँ कम रहती है। जिज्ञासा कभी निरर्थक नहीं होती। वास्तविक चिता और वास्तविक जरुरत पर वह स्वत जाग्रत हो उठती है' महत्त्व की बात एक और है कि फुसलाने ललचाने डराने धमकाने जैसी पीड़ादायी अर्थात मजबूरी की स्थितिया मे भी अच्छी बाते नही सीखी जा सकतीं।

हॉल्ट हमारी एक भ्रात धारणा की ओर इगित करते हुए कहते है कि लोग (बल्कि अध्यापक भी) 'सीखने ओर करने' को दो अलग अलग क्रियाएँ मानते है। जैसे घरो मे कई माता पिता किताब लेकर पन्ने पलटते बालक को देखकर तो आश्वस्त हो जाते है कि वह पढने सीखने मे लगा है पर रसोईघर मे आटे से कुछ बनाने मे कोयला लेकर दीवार पर रेखाएँ खींचने म अथवा कागज़ को मोड़ देकर आकृति बनाने मे लगे बालक को देखकर वे उसे पढना-सीखना नहीं अपितु वक्त गँवाना समझते है।

सितार बजाना सीखना और सितार बजाना वस्तुत दो भिन्न कार्य नहीं है। बजाना सीखने मे बजाने की क्रिया समाहित रहती है। किसी कार्य को करके ही तो सीखा जाता है और तरीका भी क्या है' शुरु शुरु मे हम किसी काम को करे तो सभव है अच्छी तरह से न कर पाएँ लेकिन यदि इसको करते रहे तो अच्छी तरह से करने लगेगे। करने की यह प्रक्रिया कभी समाप्त नही होती। चाहे कोई सगीतज्ञ हो अथवा सर्जन डाक्टर हो अथवा पायलट–रियाज़ और अभ्यास तो उन्हे बराबर करना ही पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सीखने का काम कभी नही छोड़ा जाता। आर्केस्ट्रा के एक वादक ने कहा कि यदि मै एक दिन के लिए अपना रियाज़ छोड़ दूँ तो उससे पड़ने वाला फर्क मेरे कानो को सुनाई देने लगेगा यदि मै दो दिन के लिए रियाज़ बद कर दूँ तो मेरे कपोजर के कानो मे खटकेगा और यदि तीन दिन तक रियाज़ बद कर दूँ तो मेरे श्रोताओ के दिल पर धावा बोल देगा।

रियाज़ की बात ऊपर आई है। शिक्षाशास्त्रियो के व्याकरण म इसे कौशल कहा जाता है पठन कौशल लेखन कौशल श्रवण कौशल सम्प्रेषण कौशल आदि आदि। जहाँ तक शब्दार्थ की बात है यह बात ठीक है कि कोई किसी दुरुह काम को आसान बनाता है तो वह कई प्रकार के कौशलो का उपयोग करता है। लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि किसी कार्य को कई-कई कौशलो मे तोड़ देना ही पढाने का उत्कृष्ट तरीका होता है। वाइटहैड ने वर्षों पूर्व कहा था कि किसी कार्य का उस कार्य

विशेष के कौशल से विच्छेद नहीं किया जा सकता। बच्चा जब बोलना शुरू करता है तो क्या वह पहले बोलने के कौशल सीखता है अथवा जब वह चलना सीखना शुरू करता है तो क्या पहले चलने के कौशल सीखता है? सच तो यह है कि बच्चा बोलकर ही बोलना सीखता है और चलकर ही चलना। जब बच्चा झिझकते झिझकते अपना पहला कदम उठाता है तो वह अभ्यास नहीं कर रहा होता न ही वह चलने के गुर सीख रहा होता है कि जिनके आधार पर आगे चलकर उसे 'चलने' का कार्य अंतिम रूप में करना है वरन् वह तो चल ही रहा होता है क्योंकि उसे चलना है —अभी तत्काल।

जॉन हॉल्ट का मत है कि कौशल को कार्य से अलगाया नहीं जा सकता अन्यथा बड़ी गलती होगी। बोलना कौशल नहीं है न वह कौशलों का समुच्चय है वरन एक कृत्य है और कृत्य के पीछे एक उद्देश्य निहित रहता है। हम बोलते इसलिए है कि कुछ कहना चाहते है किसी दूसरे से सम्प्रेषित होना चाहते हैं। हम कहना इसलिए चाहते है क्योंकि हमारे शब्द अर्थ रखते हैं।

कृत्य थोथे नहीं होते। वे ज्ञान के पर्याय होते है। ज्ञान की कोई विभाजक रेखा नहीं होती कि यह रसायन है यह गणित दर्शन इतिहास अथवा यह भूगोल है। ये सब विविध विधाएँ हैं कि जिनमें हम मानवीय अनुभूति को अथवा समग्र यथार्थ को अंशो में देखते हैं और उन्हें लेकर तरह तरह के प्रश्न या कि जिज्ञासाएँ खड़ी करते है। इतिहास अतीत के कतिपय पहलुओं और पक्षो पर प्रश्न खड़े करने का कृत्य (एक्ट) है। इसी भाँति भूगोल गणित रसायन आदि भी विविध कृत्यो का समुच्चय है और ज्ञान इन्हीं के सदर्भ मे उठाई गई जिज्ञासाओ अथवा निष्कर्षों का समेकित रूप है। तभी तो हम कर्म मे निरत रहते है अनवरत क्रियाशील रह कर तथ्यो का पता लगाते है कि अमुक वस्तु क्यो है कैसी है कहाँ है क्या है और इससे हमारा क्या नाता है ?

जॉन हॉल्ट की अन्य पुस्तकों मे भी उक्त विचारो के परिप्रेक्ष्य मे नियत्रणवादी एव स्वतत्रता प्रिय स्कूलो का उनके पूरे तत्र का तर्कपूर्ण सुन्दर विवेचन विश्लेषण पढ़ने को मिलता है। पढ़ने व सीखने का आनद प्राप्त करने के लिए यदि विद्यालय 'सीखने' की बजाय 'करने' पर अपना ध्यान केन्द्रित करें और प्रत्येक अध्यापक शिक्षण के इस कर्म को आत्मसात कर ले तो वहाँ से निश्चय ही स्वस्थ पीढ़ी का निर्माण होगा।

☐

सम्बन्ध बिना शिक्षण कैसा ?

घटी लगी। मास्टरजी कक्षा म आए। छात्रो ने खड़े होकर अभिवादन किया और कुछ ओपचारिकताएँ पूरी करक अध्यापकजी टेविल क कोने पर आ डटे।

हॉ भई निकालो अपनी किताबे ! कौनसा पाठ पढना है आज ? हॉ याद आया 67वॉ पेज दूसरा पैरा कौन पढेगा भई किसकी वारी है आज? और वारी वाले छात्र ने खड़े होकर किताब पढनी शुरु कर दी।

पाठ चाहे इतिहास का हो भूगोल सामाजिक ज्ञान जीवविज्ञान या भेतिकशास्त्र का हो हमारे विद्यालयो मे आमतौर स पढाई का यही तरीका अपनाया जाता है। इसके विना कोर्स पूरा कैसे हो और अध्यापक के माथे का यह योझ भी कैसे हल्का हो कि उसने पाठ्यपुस्तक को पूरा पढाया था। कुछ तो छात्रो की मानसिकता और कुछ यह बदिश कि किताब पूरी होनी चाहिए कई अध्यापक चाहते हुए भी छात्रो के सम्मुख जीवन से सम्बद्ध अवातर प्रसगो की चर्चा ही नहीं छड़ पाते। और इस प्रकार अधिकाश अध्यापको और छात्रा के बीच शिक्षण प्रकिया को जीवत बनाने के नाम पर सिर्फ किताव पढी जाती है। न तो अध्यापक ही उसे उठाकर ताक पर रखना चाहते न उपयोगी पाठ्य सामग्री ही अपने स्तर पर सॅजोना चाहते ! कुछ उनकी जड़ता कह लीजिए ओर कुछ नया न सोच पाने की दृष्टिहीनता !

इसक बावजूद अनेक अध्यापको के प्रमाण हमारे सामने हे जा वाकायदा छात्रो के साथ परिश्रम करते हैं अपनी सूझ समझ से नयी सामग्री जुटाते हैं। ऐसे अध्यापक कितावो पर नजर नहीं रखते पाठ्यक्रम और पाठ्यविदुआ को अपने वीच मे रखते है। उन्हे भरासा होता है कि जिन जिन तत्त्वो तथ्यो की जानकारी दी जानी है जिन जिन कौशलो को विकसित किया जाना है उन्हे पाठ्यपुस्तक के वगैर भी सपादित किया

जा सकता है।

बात पाठ्यपुस्तक की अवमानना की नहीं है शिक्षको और छात्रा के बीच सीधे सबध की है और बिना कोई व्यवधान डाल एक शिक्षण-प्रक्रिया निर्मित करने की है। किताबे पढाने वाले अध्यापक बहुधा इसम सफल नहीं हो पाते क्योकि न वे अपना शिक्षण उद्देश्य निर्धारित करते है न पाठ्यवस्तु पर उनकी कोई पकड़ होती है।

शिक्षण म वाचिक माध्यम का अपना एक महत्त्व होता है पर सिर्फ 'बोलते ही रहना शिक्षण नहीं होता। उसमे प्रायोगिक काम भी करना पड़ता है। छात्रो को विषयवस्तु का सम्पूर्ण क्षेत्र बताने के लिए सक्रिय बनाना पड़ता है। सिर्फ कान ही नहीं शिक्षण मे पूरी इन्द्रियाँ समनुपातिक रूप से क्रियाशील रहती है। ज़ाहिर है शिक्षण किसी जड़ प्रक्रिया या एकातिक-एकपक्षीय सक्रियता का नाम नहीं है। ऐसी क्रियाशीलता उन कक्षाओ मे नहीं मिलती जहाँ अध्यापकजी सिर्फ बोलते है और छात्र 'सुनते है।

काश, हमारे छात्र रोबोट या कम्प्यूटर होते तो शिक्षको के बोल सुन समझ लेते उन्हे याद कर लते ! पर छात्रो और अध्यापको मे पढाई के वक्त सीखने सिखाने का जो दुतरफा रिश्ता निर्मित होता है क्या वह इन मशीनो के बीच बन सकता है ? नहीं।

तो पढाना' बोलना नहीं है। दोनो मे एक बुनियादी फर्क यही है कि पढाना दुतरफा प्रक्रिया है जबकि 'बोलना' एकागी। दुतरफा प्रक्रिया के आस्थावान अध्यापक कक्षा मे एक ऐसा वातावरण बनाते है कि विद्यार्थी किसी अनुभव या ज्ञान को सीखने जानने पचाने आत्मसात करने मे स्वय पूरी मेहनत करते है — बौद्धिक प्रक्रिया के एक पूरे दौर से गुजरते है वे।

शिक्षण को मैं बोलने या 'लेक्चरबाजी का पर्याय नहीं अपितु अनुदेशन निर्देशन की प्रबध व्यवस्था (मैनेजमेट) मानता हूँ, जिनके बिना शिक्षण प्रक्रिया बन नहीं सकती।

शिक्षण कर्म को लेकर जब अध्यापको की भूमिकाओ पर नज़र दौड़ाता हूँ तो मोटे तौर पर दो तरह के अध्यापक मिलते है। एक वे जो स्वय को छात्रो तक सिर्फ ज्ञान-सम्प्रेषण का माध्यम मानते हैं और दूसरे वे जो छात्रो के समक्ष पाठ्यवस्तु की बनावट और बुनावट को रेशा रेशा खोलकर रखने और इस तरह उन्हें खुद समझने मे भरोसा रखते है। सुविधा के लिए इन्हे प्रथम और द्वितीय मॉडल कह ले।

प्रथम मॉडल बहुत पुराना है वह प्रचलित भी कि पढाने का मतलब है ज्ञान देना। मानो ज्ञान का एक जाना-माना परिमित कोश है हमारे पास जिसमे से छात्रो के लिए चुन चुन कर अध्यापक को निकालना है। ऐसे अध्यापक ज्ञान के 'सचित कोश को किताबो के माध्यम से पढते है उसे याद करते है और कक्षा मे जाकर उगल देते है। छात्रों को सोचना-विचारना सिखाने से पूर्व वे उन्हे बुनियादी सूचनाएँ और जानकारी देना ही अपना इष्ट मानते है। ज़ाहिर है ऐसे मे स्वय वे ही सक्रिय रहेगे। वे ही बोलेगे हुक्म देंगे और निर्णय लेगे। सीखने सिखाने की प्रक्रिया सिर्फ उन्हीं के आसपास मँडरायेगी। छात्रा को तो बस देखते-सुनते रहना है या बहुत हुआ तो रटी रटायी बाते उगल देना है। ज्याँ पियाज़े ने छात्रो की जिस क्रियाशीलता और पहल शक्ति को 'सीखने मे अपरिहार्य बताया था उसकी इस मॉडल म गुजाइश नहीं होती। परिणामत ऐसी कक्षाओ मे सूखी रटाई और उबासियो का दमघोटू वातावरण पथराया रहता है।

द्वितीय मॉडल नया है पर डेढ दो दशक पुराना है। इन शिक्षा। की मान्यता रहती है कि सूचनाए देने की बजाय छात्रो को अवधारणाएँ समझाना तथा उनकी पूछताछ प्रक्रिया को पनपाना अधिक ज़रूरी होता है। इसे हम 'समस्या समाधान के समीप मान सकते हैं जहाँ किसी अवधारणा की सरचना को समझ कर समस्या का हल निकालना सीखा जाता है। मान ले अध्यापक को भूगोल पढानी है। प्रथम मॉडल के शिक्षको की तरह यह छात्रो को राज्य के प्रमुख नगरो के नाम या राज्य की उपज को नहीं रटायेगा। वह छात्रों को राज्य के प्राकृतिक नक्शे की खाली प्रतियाँ देगा जिनम नदिया पहाड पठार झीले घाटियाँ आदि दर्शाई हुई होंगी। छात्रों से वह जानना चाहेगा कि कौन कौन से सभावित स्थानो पर नगर हो सकते है। कहने का आशय यह कि द्वितीय मॉडल के अध्यापक छात्रो मे एक जिज्ञासा एव प्रश्नाकुलता पैदा करेगे ताकि वे स्वत जान सके कि अमुक अमुक भूभागो मे ही नगर क्यो विकसित होते है। ये अध्यापक छात्रो को विषयो के ज्ञाता अथवा मिनि स्कॉलर बनाना चाहते है।

अध्यापको का तीसरा मॉडल एक और भी है जो छात्रो अध्यापकों के मध्य आत्मीय मानवीय सबध स्थापित करने पर बल दे रहा है। वैसे यह मॉडल सर्वथा नया नहीं है पर है व्यक्ति सापेक्ष। कहीं ऐसे विचारवान अध्यापक भी मिल जाते है जो मानवीय सबधो के पोषण को शिक्षण मे एक प्राथमिक शर्त मान कर व्यवहार करते है। पर उधर अमेरिका

मे इस दिशा में गभीर काम किया है कार्ल रोजर्स न। उनकी मान्यता है कि अगर अध्यापक छात्रा को सच्चा स्नेह व सहानुभूति देता है तो कक्षा म उन दोनो के बीच पढाई का बड़ा ही आत्मीय तथा निभाऊ वातावरण बन जाता है फलत छात्रो के सीखने पर उसका बड़ा ही गहरा प्रभाव पड़ता है।

अपनी पुस्तक फ्रीडम टु लर्न' मे राजर्स ने शिक्षा की गुणात्मकता को बढाने के लिए तीन बाता को अपरिहार्य माना है और वे हैं (1) सहानुभूति (2) शर्तरहित सकारात्मक सम्मान, और (3) नेकनीयत। मेरे खयाल स शिक्षण की यान्त्रिकता के प्रचलित दोषा से अगर हम बचना चाहते है तो रोजर्स क इन सूत्रों को व्यवहार म लाना होगा।

आज की सबसे बड़ी समस्या ही यह है कि न छात्र अध्यापक को समझना चाहता न अध्यापक अपने छात्र को। परिणामत दोनो के बीच सवाद सम्प्रेषण की स्थितियाँ बन ही नहीं पातीं। इसक लिए पहली कोशिश अध्यापक को ही करनी पड़ेगी। अनेक अध्यापको का अह सामने अड़ जाता है कि जब छात्रों को गरज नहीं है तो वे ही क्या परेशान हा। महानगरा और कस्बा मे उदासीनता का यही एकरस माहौल चला आ रहा है जिससे छात्रा को तो प्रत्यक्ष हानि उठानी पड़ती ही है अध्यापको म भी निष्क्रियता और जड़ता आनी शुरू हो जाती है। रोजर्स ने सहानुभूति शब्द को वस्तुत 'परानुभूति (empathy) के अर्थ मे व्यक्त किया है कि अध्यापक अपने छात्रो के प्रति प्रतिक्षण यह भावना अपने भीतर रखे। पल भर को भी इसका क्षय न होन दे। व स्वत इसका अदभुत लाभ महसूस करगे कि छात्रो के और उनके बीच सम्प्रेषण का एक नाता पनपने लगा है और वे छात्रों की भावनाओ और अनुभवो को सही परिप्रेक्ष्य म समझने भी लगे हैं।

इसी बिंदु से जुड़ा है अगला बिंदु याने शर्तरहित सकारात्मक सम्मान। अव्वल तो अध्यापक छात्रो को आदर देना जानते तक नहीं और भूले भटके आदर देने लगे तो एक तटस्थता रखेगे या फिर शर्तबदी म उलझ जाऐंगे। रोजर्स शिक्षको से अपेक्षा करता है कि वे अपने निर्णय या फतवे छात्रा पर हर्गिज न थोप आर छात्रा को उनके यथार्थ रूप मे—याने जैसे वे है उसी रूप में ग्रहण करे। अध्यापक को अपने आरोपणो से छात्रो को विभूषित करने या विकृत करने से भी बचना चाहिए। कई वार वे एक शर्त रख कर छात्रो से व्यवहार करने लगते है कि तुम लोग अमुक अमुक काम करो तब मे तुम्हे अमुक-अमुक चीज़े दूँगा लाड़

दुलार या सम्मान दूँगा। रोजर्स छात्रो अध्यापको के अन्तर्संबधो मे किसी भी शर्त के सर्वथा खिलाफ है। वह उसे पूर्वग्रह रहित मन से स्वीकार करने पर बल देता है।

तीसरा और अतिम बिंदु है नेकनीयत या प्रामाणिकता। अध्यापक अगर यह मान कर चले कि छात्रो को उनके बहाने का क्या पता लगेगा तो सचमुच वे गलती करते है। चालीस जोडी ऑखे राडार की तरह अध्यापक के व्यक्तित्व पर हर वक्त नजर रखती है। उनसे छिपा रह भी नहीं सकता कि अध्यापकजी कहॉ निष्कपट हैं और कहॉ कपट जाल फैला रहे है। छात्रो के साथ आधे मन से काम नहीं किया जा सकता। अगर वे कहीं व्यस्त है तो छात्रो को साफ-साफ कह दे पर बहानेबाजी करेगे तो जाहिर है छात्रो के सामने उनकी प्रामाणिकता मे बट्टा लगेगा ही लगेगा।

उक्त विचारो के परिप्रेक्ष्य म सोचने की बात यह है कि शिक्षण के ये दोनो ही मॉडल अब तक प्रचलन मे रहे हैं और आगे भी रहेगे पर इनमे से विशेष ध्यान हमे किन तत्वो पर देना है ? प्रथम मॉडल के लाभ दिनो दिन न्यून होते जा रहे है क्योकि यह शिक्षण प्रक्रिया को निर्मित करने मे असफल रहा है। उधर द्वितीय मॉडल अन्वेषण पद्धति पर बल देता है। यह शिक्षक के साथ साथ छात्रो की भी सक्रियता और रुचि को बनाये रखना चाहता है अत निर्विवाद रूप से इसी मॉडल को हमे पनपाने की आवश्यकता है। और तीसरा मॉडल तो शिक्षण के आधारभूत सिद्धातों का तोहफा ही हमारे हाथो मे सौंपे दे रहा है। इससे हमारे ही व्यक्तित्व मे चार-चॉद लगेगे और छात्रो की गुणात्मकता मे वृद्धि होगी सो अलग।

□

कक्षा-शिक्षण की वैज्ञानिकता

अपने अध्यापक जीवन के प्रारंभिक वर्षों की बात आपको बताऊँ। पढ़ाने की रुचि तो शुरू से ही थी क्योंकि पढ़ने और लिखने का ही शौक था। उन दिनो अध्यापक बनने के लिए ट्रेनिंग ज़रूरी नहीं थी अत बिना ट्रेनिंग किए ही नियुक्ति मिल गई थी तो मे बराबर सोचता रहता था कि अपन में क्या परिवर्तन लाऊँ कैसे कैसे कौशल अर्जित करूँ कैसी कैसी तैयारी करूँ कि विद्यार्थियो पर मेरा अच्छा प्रभाव पड़े।' मास्टरजी कह रहे थे और हम सुन रहे थे। वे उसी रौ म कहे जा रहे थे -

'अपने विद्यार्थी जीवन मे मारपीट और डॉट फटकार करने वाले बहुत से अध्यापको से मेरा साबिका पड़ा था और उनकी मार का लड़को पर प्रभाव भी वर्षों तक देखा था। लड़के भय के मारे गलिया मे जा छिपते थे और सामना हो जाने पर शालीनता से झुक झुककर प्रणाम करते थे।

क्या मजाल कि ध्रुवप्रसादजी खड़े हो और कोई लड़का नज़र उठाकर देख ले लाइन तोड़कर चलने की हिमाकत करे अथवा आगे-पीछे चलने वाले साथिया से बाते करने की हिम्मत करे। ध्रुवप्रसादजी की शान मे बहुत बड़ी बेअदबी थी यह ।

जब मैं अध्यापक बन गया तो अपने विद्यार्थियो पर ध्रुवप्रसादजी जैसा प्रभाव नहीं चाहता था। मेरी माटी अलग थी। स्कूल के लिए घर से तैयारी करके आता था छात्रो के साथ पूरी मेहनत करता था। वाणी ही नहीं किताब ब्लैकबोर्ड चार्ट-ग्राफ-नक्शे भी काम मे लेता था पर कम। चूँकि मेरा लक्ष्य पाठ्यपुस्तके थी अत उनकी पढ़ाई कराने को ही म शिक्षा देना समझता था। यह बात तो धीमे धीमे पता लगी कि सिर्फ वही सब कुछ शिक्षण नहीं है।

उन दिनो कस्बे के उस हायर सैकंडरी स्कूल मे 38 40 अध्यापक थे और मेरा सब के साथ बहुत अच्छा सम्पर्क ससग था। सब के साथ वैयक्तिक सम्बंध स्थापित करने के पीछे मेरी यही चाह कारणभूत थी

कि अपने भीतर मुझे अच्छे अध्यापक के किन किन गुणो का विकास करना चाहिए।"

मास्टरजी को हम लोग दत्तचित्त सुन रहे थे मानो उनकी कक्षा के ही विद्यार्थी हो। उनकी बात जारी थी

उन दिनो कुछ महीना से मे अग्रेजी के एक टीचर मि शेखर को समझने और उनसे जान पहचान बढाने मे लगा था क्योंकि वे नए नए बी एड की ट्रेनिग लेकर आए थे। दसवीं क्लास म हम दोनो के पीरियड आते थे। वे अग्रेजी पढाते मै हिन्दी। उनका पीरियड मुझसे तत्काल पहले आता था। घटा लग जाने पर भी वे सात आठ मिनट तक क्लास लेते रहते। मै उन्ह कक्षा मे बहुत चुस्त और व्यस्त देखता। कक्षा के लड़के भी बहुत अनुशासित नज़र आते।

अक्सर मुझको क्लास के बाहर खड़ा देख साइस के एक टीचर सी एल शाह मुझसे बगलगीर होते हुए कह जाते तपस्या करो अभी। अदर नए मुल्ला पढ़ा रहे हैं। नए मुल्ला वाली बात कई दिनो बाद समझ मे आई कि ट्रेनिग से लौटने वाले नए टीचर अक्सर क्लासा मे ज्यादा समय लेते है।

शेखरजी कई बार खिड़की-दरवाज़े बद करके पढाते थे और जब क्लास स बाहर निकलते थे तो यो लगता था मानो अभी अभी कोई रोड रोलर विद्यार्थियो को अच्छी तरह रोदकर गया है। कई बार कक्षा का कमरा रसोईघर की तरह शिक्षण प्रक्रिया के अच्छे खासे छोक से गधाता मिलता।"

तब तो गुरुजी आपके पॉव वापिस लौट पड़ते होगे।" गणपतसिह से बोले बिना रहा नहीं गया। बातो मे हम सबको मज़ा आ रहा था।

क्या बताऊँ। मेरी क्लास मे मुक्त भाव से चहचहाने वाले और उद्दडता के स्तर तक जाकर आज़ादी लेने वाले विद्यार्थियो को मै कक्षा मे घुसते ही लस्त पस्त काम मे व्यस्त देखता। एक अयाचित दशहत उनको चेहरा पर देखकर मन वितृष्णा से भर जाता। कक्षा के उस माहौल से बड़ी घुटन होती थी मुझे अत कक्षा मे आते ही सबसे पहले खिड़कियाँ दरवाज़े खोलता और दो चार लड़का से बातचीत करके कक्षा के माहौल को बदलने की कोशिश करता। मेरे लिए यह लगभग रोजाना की बात थी कि अपने विषय की पढाई से पूर्व विद्यार्थियो की अभिमुखता की चिता करॅू म नए नए हथकडे अपनाता। कभी कोई चुटकला कोई कविता छद कहानी सुनाता। कभी कोई रगीन पत्रिका या किताब दिखाता कभी ग्रामोफोन लाकर कोई गीत सुनाता या फिर छात्रो को उनके ही सस्मरण

सुनाता। यह तो मुझे बाद मे पता चला कि प्रशिक्षणालयो म इसे 'मोटिवेशन कहा जाता है। पर सच मान वह मेरी ज़रुरत थी अन्यथा मै कैसे पढा पाता ?

तब तो आपके शेखर साहब एक नमूना ही थे गुरुजी' गणपतसिह ने फिर से बीच मे अपना वाक्य उछाला।

नमूना क्या? मास्टरजी कहने लगे उनका तो मुझ पर भी एक दबाव था। अव्वल तो क्लास मे मेरा बहुत सा समय यूँही निकल जाता था और फिर छात्रो को उनके चले जाने के बाद भी उनके अदृष्ट घगुल से मुक्त कर पाना मेरे लिए टेढी खीर थी। एक दिन मिस्टर शेखर खाली घटे मे बाहर धूप म बैठे किसी अग्रेजी पत्रिका पर उड़ती नज़र डाल रहे थे। मै भी उनके पास आकर बैठ गया। एकदम अग्रेजी लिबास सासकिन का सूट और काली वो ।

दो एक मिनट बीते होगे मैने कहा शेखरजी ! आप तो क्लास म लगे ही रहते है। लड़को को भी बहुत व्यस्त रखते है। कक्षा शिक्षण म आप सबसे अधिक किस बात पर बल देना पसद करते है?

वे ठहरे पूरे अग्रेज। अग्रेजी से कम मे क्या बोले ! जवाब मानो उनके पास पहले से तैयार था–रटारटाया बोले 'आई वाट टु हेल्प स्टूडेटस रियलाइज देयर फुल पोटेंशियल एज इडिविजुअल्स टु बिकम सेल्फ एक्चुअलाइजिग।

मै समझा नहीं सो पूछ बैठा वह कैसे सर?

थोड़ा रुककर वे बोले 'सरटेनली इटस वेरी डिफिकल्ट टास्क बट एज ए टीचर आव इग्लिश आई शेल स्ट्राइव फोर दिस गोल।

बात तब भी मेरी समझ मे नही आई थी और आज भी मेरी समझ से परे है। वह तो धीरे धीरे किस्तो मे सचाई सामने आई कि अपना प्रभा मडल बनाने के लिए वैसी अमूर्त बाते कहना उनकी अनिवार्यता थी। वहॉ शिक्षण प्रक्रिया नहीं, एक वाग्जाल था एक दहशत थी जिसके पीछे का मकसद बहुत छोटा था।

छोटा क्या आछा कहिए मास्टरजी।' इस बार जियालाल बोला ऐसे नाटक किए बिना ट्यूशने थोड़े ही मिलती है?

खैर मास्टरजी ने लगभग स्वीकारोक्ति म कहा अमूर्त शब्दावली मे अपनी श्रेष्ठता शालीनता भद्रता का दिखावा करने वाले अध्यापक आज भी है बल्कि अपने शिक्षक जीवन के चार दशकों मे मैने यही अमूर्तता बराबर व्याप्त देखी है। यह भी उतनी ही नुकसानदायी है जितनी किसी अध्यापक की तटस्थता।

बहुत शात मोहाल था। वर्षा हो चुकी थी। हवा म न ठडक थी न गर्मी। बाड़ से घिरे मकान के भीतरी कमरे तक कभी-कभार किसी बच्चे की किलकारी या गायो भैंसों के रभाने की आवाज़ आए तो आए अन्यथा भरपूर खामोशी थी। मास्टरजी ने आगे कहा

एक गॉव मे नाथूरामजी मास्टरजी थे। बच्चो को हिसाब किताब और गणित पढाते थे। मिडिल करके ही नौकरी लग गए थे। भला उन्हे शिक्षण के लक्ष्यो और उद्देश्यो से क्या लेना देना? वे अक्सर बातचीत मे कहते रहते थे कि अपना तो भैया पहाड़े सिखाने का काम है सो लिखवा दिया बस' याद करना या न करना लड़का का काम। वे जानें और उनके घर वाले' कितना साफ सुथरा नपा-तुला सोचा-समझा कार्य व्यवहार था उनका' कैसी निरीह तटस्थता थी' ऐसी बाते आजकल भी मुझे कई बार सुनने को मिल जाती है।"

कई बार? माफ कीजिए मास्टरजी अब तो खास औ आम हर तरह के अध्यापक से सुन लीजिए।" जियालाल से रहा नहीं गया बोला गुरुजी' क्लास की क्लासे खाली पड़ी रहती है।"

मास्टरजी ने विराम देते हुए पानी का एक घूँट भरा और हम जिज्ञासुओ पर एक मुक्त दृष्टि डाली। ये मास्टर साहब गोरधनजी थे। थर्ड ग्रेड के एक मामूली अध्यापक के रूप म किसी ज़माने मे इन्होने नौकरी शुरू की थी। इनका अधिक समय गाँव की प्राइमरी और मिडिल स्कूलो मे बीता था। जिस गॉव म भी ये रहे थे लड़को पर इनके पढ़ाने का ऐसा प्रभाव था कि लड़के तो लड़के इनके माता पिता और गॉव का गॉव इनकी इज़्ज़त करता था। गाँवो मे इन्होने विकास के काम भी कम नहीं किए थे। शिक्षा और शिक्षण म भी इनकी गहरी रुचि थी। पढ़ाने के साथ-साथ ये स्वय भी अध्ययन करते रहे। धीमे धीमे इन्होने एम ए भी कर लिया था और बी एड भी। वर्षों पूर्व ये हायर सैकडरी के प्रिंसिपल पद से सेवानिवृत्त हुए थे पर आज भी वही सादगी वही स्वाध्याय प्रियता वही अनुराग। राज्य सरकार इन्हे वर्षों पूर्व श्रेष्ठ सेवाओ के लिए सम्मानित कर चुकी थी।

हम लोग कई दिनो से मास्टरजी को विद्यालय मे बुलाना चाहते थे। पर ये आयोजना उत्सवो से हमेशा बचते थे अत आज हम इनके गॉव इनके घर ही आ धमके थे। परमानद इनका विद्यार्थी था। उसी ने प्रस्ताव रखा था कि गुरुजी आज तो अपने शिक्षक जीवन के कुछ अनुभव सुनाइए। बस इसी इरादे से हम लोग आपकी सेवा मे आए है। मास्टरजी अपने अनुभव हमे सुना रहे थे और हम लोग सुधबुध भूले

सुन रहे थे।

मास्टरजी का लम्बा सस्मरणात्मक भाषण सुनकर मेरे पास बैठे गणपतसिह ने कहा श्रीमान' आपकी बातो से लगता है कि आप शिक्षका के 'इन्वोल्वमट को बहुत ऊँचा दर्जा देते हैं पर क्या आप प्रत्येक शिक्षक की अपनी सीमाआ और बाहरी दबाव को सर्वथा महत्त्वहीन मानते हे जो उसे समर्पण के लिए अवकाश ही नहीं देते?

यह तो ठीक हे लेकिन दबावा को तोड़ने की इच्छा और कोशिश तो होनी चाहिए? मास्टरजी का दो टूक उत्तर था।

फिर हम पाँचा साथिया पर एक साथ उड़ती सी दृष्टि डालते हुए वे उसी क्रम म कहने लगे 'मे यह मानता हूँ कि बाहरी तत्त्व भी शिक्षक को शिक्षण-कर्म मे सहभागी बनने देना नहीं चाहते पर क्या शिक्षक खामोश बैठा रहे? शासन सत्ता चाहे जो हो निष्ठावान तथा ईमानदार स्वरा को निश्चित रूप स सुना जाता है। खीज भरा स्वर तो क्षण भर के लिए भले ही कोई न सुने मगर तर्काश्रित बातो की उपेक्षा कर पाना कैसे सभव है? आर फिर हमारे यहॉ तो प्रजातात्रिक जीवन पद्धति हे। मुक्त चितन म हमारी आस्था है। शिक्षक के नात शिक्षण विषयो और तत्त्वा पर हम ही अपनी प्रतिक्रिया नहीं देंगे अपनी गोष्ठियाँ नहीं करेगे लेख नहीं लिखेगे तो कैस कह पाएँगे कि हम अपने कर्म के प्रति ईमानदार है? हमारा इन्वोल्वमट दोना दिशाओ म हो–विद्यार्थिया के पाठ्यक्रम की समीक्षा करने की ओर तथा उन्हे परिश्रम व प्रेमपूर्वक पढाने मे भी। मैंने तो हमेशा ही बालका की जिज्ञासाओं का सम्मान किया हे। जब तक उनकी जिज्ञासाआ का समाधान नहीं करता तब तक मन मे एक तरह की बेचैनी बनी रहती है। शिक्षण को मैंने हानि लाभ या समय की सीमा मे कभी नहीं बाँधा। मेरी प्रतिबद्धता बालको की जिज्ञासा के समाधान के साथ जुड़ी रही है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि मे कोई बात समझ नही पाया अथवा कक्षा मे हाथा हाथ बालको के सवाला के उत्तर नहीं दे पाया। पर मेने समय लेकर भी बालको को जटिल प्रसग सहजता से समझाने के प्रयत्न किए हे। पढाने मे मै कई बार असफल भी हुआ हूँ, पर मेरे प्रयास कभी असफल नहीं हुए। मेने तो हर बार इसी तरह की शिक्षण प्रक्रिया जीने की कोशिश की है ओर मैं इसी बात की शिक्षक को सलाह दूँगा।' कहते-कहते मास्टरजी के होठो पर एक निश्छल व सात्विक मुस्कान तैर गई। चितन की जितनी गहराई उतनी ही नम्रता।

गोरधनजी का नाम बहुत सुन रखा था हमने लेकिन हम म से कुछेक ने न उन्हे देखा था न सुना था। पत्रिकाओ मे लेख तो उनके

पढते ही थे। आज छुट्टी का दिन निकाल कर 40 कि.मी. बस का सफर तय करके उनसे मिलने आए थे इस शिक्षक धाम मे।

बात जारी थी। कोने मे बैठे जियालाल की ओर से सवाल आया तो क्या आप हमें विरोध करने का परामर्श दे रहे हे कि किसी भी अकादमिक प्रश्न पर हम तर्काश्रित विरोध से न चूक?

बेशक! इसम बुराई ही क्या है! मास्टरजी ने तत्काल अपनी बात साफ करते हुए कहा अपनी ही बात बताता हूँ आपको। मसूर अलीजी हमारे प्रिंसिपल थे। ऊपर स आदेश था कि अध्यापक डायरी भरनी अनिवार्य है। कई ट्रेंड अध्यापका की डायरियाँ म ने देखी थी जिनमे सिर्फ इतना भर लिखा होता था कि अमुक कक्षा को अमुक विषय मे अमुक काम कराना है। इतनी जरा सी बात को डायरी म टूँकने का मुझे कोई आचित्य नज़र नहीं आया। एक दिन मेने प्रधानाध्यापकजी से अपनी कक्षा का काम दिखाते हुए कहा श्रीमान! मे छात्रो को रोजाना पढाता हूँ, लिखित काम करता हूँ ओर नियमित रूप से जाँचता हूँ। इससे उनकी अभिव्यक्ति मे निखार आया है रचनाशीलता और कल्पनाशीलता बढी है। क्या इसी काम को आप मेरे अध्यापन कर्म का प्रमाण नही मान सकते? क्या आप इसको गेर जरूरी मानत हे जो हमसे पृथक से अध्यापक डायरी भरवाना चाहते हे?

आपको यह जानकर खुशी होगी कि उस दिन के बाद प्रिंसिपल महोदय ने अध्यापक डायरी पर इतना बल नहीं दिया लेकिन हाँ वे अध्यापको का कक्षा कार्य तथा लिखित कार्य अवश्य देखते। मरे विद्यालय मे मन अध्यापक डायरी भरने की बंदिश कभी नहीं रखी। तो मेरे कहने का आशय समझ गए न आप लोग?

आपको तो श्रीमान किसी उच्च अध्ययन शिक्षा सस्थान मे होना चाहिए था। कम से कम हमारे कक्षा शिक्षण मे एकरूपता ओर वैज्ञानिकता की चिता करने वाला कोई तो होता! इस बार टिप्पणी मैंने की। सुनकर चारा साथिया ने सामूहिक हँसी म योगदान दिया।

हँसने को तो गारधनजी भी हँसे पर शीघ्र ही उनकी आँखे चश्मे के मोटे शीशा के पीछे कहीं खो गई। बोले भई! कक्षा शिक्षण की वैज्ञानिकता का तो मैं भी पक्षधर हूँ, लेकिन मे एकरूपता नहीं चाहता। एकरूपता ता अभी है ही। हर्बर्ट के पचसूत्री शिक्षण से अलग ट्रेनिंग कॉलेज म कोई नवीनता हे ही कहाँ? या तो माइक्रो टीचिंग पी.एस.आई. सिमुलेशन सिस्टम एप्लिकशन एक्शन रिसर्च आदि बीसो बात आई हे पर उनक आने स न तो किसी गेर-जरूरी रिवाज से छात्राध्यापको को

मुक्ति मिली न उनका शिक्षण उपयोगी बना। जब विज्ञान के सिद्धात सार्वभौम और सार्वकालिक होते है और उनका वाछित लाभ प्राप्त किया जा सकता है तो शिक्षा विज्ञान का वाछानुरूप लाभ क्या नहीं लिया जा सकता? आप सब के साथ मेरी भी अभिलाषा यही है कि कक्षा शिक्षण वैज्ञानिक बने पर अभी इसमे बहुत समय लगेगा। सचमुच बहुत समय!

आपने गुरुजी इस दिशा मे क्या सोचा है? आपके मुताबिक किन किन शिक्षण सूत्रो को प्रयोग मे लाया जाना चाहिए ताकि हम वैज्ञानिकता के समीप तो पहुँच सके? यह बाबूलाल का सवाल था।

मास्टरजी ने जरा आसन बदला और सोचते हुए कहने लगे यूँ तो भाइयो! हमें बहुत सारी बाते जानने समझने की है लेकिन एक अत्यत स्थूल से विषय की ओर ही मे आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

लगभग 25-26 वर्ष पूर्व एक विदेशी विद्वान ने वर्तमान शिक्षा पर एक आक्षेप लगाया था कि यह कथन रोग से ग्रसित है। अगर मै यह आक्षेप अध्यापक समाज पर लगाऊँ तो क्षमा कर गलत नही होगा। वर्षों तक अपना विषय छात्रो को पढाते समय मेने यही बात सर्वोपरि रखी है कि अनावश्यक और गैर-जरूरी कथन से बचूँ।

मेरे खयाल से शिक्षण दो प्रकार का होता है-प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रत्यक्ष शिक्षण मे बोलने का अधिकाश काम अध्यापक ही करता है-वह भाषण देता है निर्देश देता है किसी पाठ या प्रसग को स्पष्ट करता है व्याख्या करता है अथवा अपने विचारो का औचित्य प्रमाणित करता है। छात्रो को तो चुपचाप बैठे बैठे सुनना होता है। मेने अनेक अध्यापको का सर्वेक्षण किया है अतएव कह सकता हूँ कि 80/ कथन अध्यापको का होता है।

परोक्ष शिक्षण मे अध्यापक रटे रटाए प्रश्नो और विधियो से बचता है और मुक्त प्रश्न पूछता है मुक्त विधियाँ अपनाता है। वह विद्यार्थिया की सकारात्मक नकारात्मक भावनाआ का सम्मान करता है छात्रो को प्रोत्साहन देता है उनकी प्रशसा करता है और तनाव को घटाने के लिए मनोरजन की विधियाँ अपनाता है।

पर परोक्ष शिक्षण मे शिक्षक के धैर्य की परीक्षा होती है। यही नहीं छात्रो के प्रति सहयोग की उसके रचनात्मक नज़रिये की जीवतता और प्रेरणा की भी परीक्षा होती है। यदि आप लोग इन दोनो तरीका का फर्क देखना चाहे तो दो अलग अलग कक्षाओ मे आजमा कर देख सकते है। आपको पता लग जाएगा कि परोक्ष पद्धति वाले छात्रो को

तुलनात्मक रूप मे अधिक लाभ मिलेगा। बल्कि इस सबध मे मै कहना चाहता हूँ कि शिक्षक को कक्षा मे बहुत ज़रूरी लगे तो अपनी ओर से कोई वक्तव्य या निर्देश उपदेश दे। शिक्षण का लाभ तो तभी सभव होता है जब छात्रों की ओर से सीखने की क्रिया करने व अनुभव करने की पहल हो। अध्यापक को निरतर सकारात्मक दृष्टि रखनी चाहिए। उसकी वाणी और उसके आगिक सकेता से छात्रो को निरतर प्रोत्साहन मिलना चाहिए। ऐसे वातावरण से निकलने वाले बालको को मैने अत्यत रचनाशील कर्मशील उल्लसित और सयत देखा है। अगर आप लोग चाहे तो इस गुर को आजमा कर देख सकते है। कहते हुए मास्टरजी ने अपनी बात समाप्त कर दी।

गॉव मे रहते हुए भी मास्टर साहब गोरधनजी शिक्षा साहित्य का अध्ययन करने मे अपना समय बिताते है। हम युवा अध्यापका के लिए उनका यही प्रसाद काफी था। नितात अनजान अपरिचित शिक्षको के छोटे-से समूह को अपने बुजुर्ग शिक्षक द्वारा इससे बड़ा और क्या अवदान मिल सकता था। हमारा पाँच सितबर का छुट्टी का दिन सार्थक हो गया।

मास्टरजी से विदा लेकर हम पॉचो पाडव बस अड्डे आए। अगले दिन जब हमने स्टाफरूम मे यह सारा अहवाल साथियो को सुनाया ता कुछ ने उसे बकवास बताया कुछ ने खुराफात। कुछ ने उल्लसित होकर कहा यार हम भी क्या न साथ ले गए? कुछ साथी पल्ला झाड़ कर बिना कोमेट किए ही चल दिए मानो उनकी प्रायोरिटी कुछ और थी। मुझे असाध्य वीणा का स्मरण हो आया जहॉ वीणा का साधक वीणा वादन से पूर्व उन समस्त उपादानो उपकरणो अवयवो तत्वो का स्मरण करता है जिनसे वीणा का सबध रहा है। वह उनके साथ वैचारिक एकतानता अनुभव करता है। शिक्षण कर्म भी असाध्य वीणा ही है। इसे साधने के लिए प्रत्येक साधक को अनेकानेक स्तरो पर स्वर सगति बिठानी होगी। गुरुजना से मिलना स्वर सगति की भी तलाश है और अपनी जड़ो की ओर लौटना भी। काश कोई समझे कि ये जड़े नीचे नहीं ऊपर की ओर है और हम वहीं से नीचे की ओर आने वाली शाखाएँ हैं एष अश्वत्थ सनातन ।

इस प्रसग की महक बहुत अर्से तक मेरे अतर्मन मे छाई रही। जब जब भी शिक्षक-दिवस आता है मन म एक छतनार अश्वत्थ वृक्ष आकार लेने लगता है एक असाध्य वीणा बजने लगती है और मै अपने गुरुजनो की पावन स्मृतियो मे खो जाता हूँ। ❒

कोरे कागद नही है बालक

ज्ञान और भक्ति का निरूपण करते हुए भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने वर्षों पूर्व ज्ञान के सम्बन्ध मे कितना सही लिखा था ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका नहीं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना ज्ञान के पथ कृपाण के धारा। भक्ति की अगम बात को एक ओर रहने दे तथा एक साधारण सा सवाल स्वय से पूछे कि इस दृष्यमान जगत की बुनियादी सचाइयो का ज्ञान हमे कैसे होता है? बल्कि सिर्फ इतना ही पूछे कि ज्ञान कैसे आता है? क्या तरीका है उसके आने का? हम सोचते कैसे हे? सोचने का रिश्ता क्या बुद्धि से है? बुद्धि मे बाते कैसे निपजती हैं? क्या बुद्धि जन्मजात होती है? इन ढेर सारे प्रश्नो के सामने जा मूलत एक ही प्रश्न पर उपजी हुई जिज्ञासाएँ हे हम अपने को बोना पाएँगे। दर्शनशास्त्र के अनेक धुरधर विद्वान युगो तक इन प्रश्नो का समाधान निकालने को कृपाण की धार पर चलते रहे। वे मानवीय प्रकृति और मानव मन के अतस्तल म गहरे उतर कर सोचने की प्रक्रिया तलाशते रहे। देश देश के अनेक मनोविज्ञान वेत्ता अपने अपने स्तर पर अपने अपने काल म प्रयोग करते रहे पर सफलता के द्वार पर दस्तक देने जो चन्द विद्वान पहुँच सके उनमें से एक है स्विटजरलैंड के ज्याँ पियाज़े उन्हाने जीवविज्ञान के सिद्धातो को मानव मन पर लागू किया और वर्षो की साधना के बाद दुनिया के सामने सज्ञानात्मक विकास के अपने क्रातिकारी सिद्धान्त प्रस्तुत किए।

पियाज़े प्राणिविज्ञान व दर्शन के छात्र थे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद की उनकी मनोविज्ञान सबधी शोधा के लिए इन विषयो का ज्ञान उपयोगी रहा। साथ ही साथ उनकी अपनी सोचने की एक आदत भी निर्मित हुई कि वस्तु विशेष मे अपन परिवेश के प्रति अनुकूलन होता है कि अपनी भीतरी बनावट मे वह वस्तु स्व सचालन की क्षमता से सज्जित होती है।

प्राणिविज्ञान के साथ साथ पियाज़े की रुचि वस्तुपरक ज्ञान की समस्याओ का पता लगाने तथा ज्ञान मीमासा की ओर उन्मुख हुई और व बाल मन की गहराई मे क्रमश उतरते गए। बच्चो के बीच रोजाना घटो घटो बैठकर उन्होने उनकी गतिविधियो का अध्ययन किया। वे उनसे तरह-तरह के सवाल पूछते और भोले भोले प्यारे प्यारे जवाब धैर्य एव रुचि के साथ सुनते। उनकी बाल चेष्टाओ का अवलोकन करते। वर्षों तक बच्चो से आदान प्रदान का उनका सिलसिला अनथक भाव से चलता रहा। शुरु शुरु मे तो बच्चो के बौद्धिक विकास एव सोचने की प्रक्रिया जानने की उनकी विधि मौखिक रही लेकिन सन 1936 के आसपास अपने तीनो बच्चो की हरकतों व चित्तवृत्तियो का उन्हाने सुचिंतित विधि से अवलोकन किया और उसके आधार पर द ओरिजिन ऑव इटेलिजेस इन चिल्ड्रन द रिकस्ट्रक्शन ऑव रियलिटी इन द चाइल्ड तथा ड्रीम्स एण्ड इमीटेशन इन चाइल्डहुड नामक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ी लेख लिखे। इनम पियाज़े ने पहली बार बच्चो के इन्द्रिय बोध क आधार पर उनकी बुद्धि के स्वरूप एव सोचने की प्रणाली के बारे म अपने युगान्तरकारी विचार लिखे हैं।

इससे पहल कि पियाज़े के सज्ञानात्मक विकास के विचारो को जाने कतिपय दर्शनशास्त्रियो के उन विचारो का विहगावलोकन करना ज़रूरी होगा जिन्होने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से पियाज़े के लिए वैचारिक आधार भूमि निर्मित की है। प्रसिद्ध ब्रिटिश अनुभववादी विद्वान जॉन लॉक व ह्यूम की मान्यता थी कि मनुष्य का जगत का ज्ञान ईश्वर द्वारा या कि तर्क द्वारा प्राप्त नहीं होता अपितु अपनी सवेदनशील इन्द्रियो के माध्यम से वह स्वय उसे प्राप्त करता है। जन्म के समय मनुष्य एकदम कोरा कागद होता है। ज्यो ज्यो उस कागद मे अनुभूतियाँ उभरनी प्रारभ होती है त्यो-त्यो वह जगत का ज्ञान प्राप्त करने लगता है। यह प्रक्रिया पारस्परिक सम्पर्क से होती है। याने एक प्रकार के अनुभवो या उत्प्रेरकों का दूसरे प्रकार के अनुभवो उत्प्रेरको के सम्पर्क मे आना।

उक्त विचारा का प्रभाव जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान इमानुल काट ने ग्रहण किया जिनका पियाज़े पर प्रभाव पड़ा था। काट वैसे तो लॉक व ह्यूम के विचारो से पर्याप्त प्रभावित थे पर ज्ञान प्रक्रिया की उनकी अवधारणा मे उन्हे कुछ अपूर्णता प्रतीत हुई। काट के अनुसार यह सही है कि इन्द्रियो के बिना मनुष्य जगत का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता पर मात्र उन्हीं को ज्ञान प्राप्ति का स्रोत मानना गलत है। काल व स्थान के बारे में मनुष्या मे कुछ बुनियादी धारणाएँ (नोशस) होती है जिन्हे

वे मात्र इन्द्रिया द्वारा प्राप्त नहीं करते बल्कि जो उनके पास कुदरतन मौजूद रहती है और उनके द्वारा प्राप्त वस्तुओ का सचालन होता है। एक छोटा सा उदाहरण ल कि वस्तुआ मे स्थिरता का गुण होता है। इस तथ्य का अनुभूति स क्या लेना देना ! काट के अनुसार इस तथ्य को किसी अनुभूति द्वारा बुद्धि मे नहीं बिठाया जा सकता। यह क्षेत्र अनुभूति की पहुॅच स परे का है। इन्द्रिया द्वारा प्राप्त अनुभवा का कोई आशय होना ज़रूरी है। कोरा कागद तो कोरा रह सकता है आदमी का दिमाग कोरा नहीं रह सकता। जगत के बारे म जानना उसे ज़रूरी है।

पियाज़े ने जब बच्चा पर अपना अध्ययन शुरु किया तो उनके लेखन पर इसी बुनियादी दार्शनिक पृष्ठभूमि का असर स्पष्ट लक्षित था। काट की तरह पियाज़े का भी विचार था कि आदमी कोरा कागद नहीं– ऐसा कि जिसका चराचर जगत से कोई वास्ता भी न हो। इसके बनिस्बत आदमी इतना क्रियमाण है कि वह जगत को नया आकार प्रदान करता है। पियाज़े यह भी मानते थे कि मानवीय ज्ञान की निर्मिति के मूल मे कुछ सार्वभौमिक धारणाएँ काम करती है जिनके बारे मे उसे कभी बताया नहीं जाता। ये धारणाएॅ है काल स्थान कार्य कारण सबध वस्तु की स्थिरता आदि के बारे मे। पियाजे इन धारणाआ क जन्म और विकास को जानने की ओर प्रवृत्त हुए। जैसा कि उन्होंने स्वय लिखा है कि उत्पत्ति मूलक ज्ञानमीमासा (जेनेटिक एपिस्टॅमोलोजी) मे उनकी रुचि बढ़ती गई। कदाचित ये धारणाएॅ जिनमे पियाज़े रुचिशील थे इतने बुनियादी महत्व की तथा सर्वमान्य थीं कि इस दिशा म पियाज़े के शोध निष्कर्ष अचरज मे डालने वाले सिद्ध हुए।

पियाज़े मूलत विकासवादी मनोविश्लेषक माने जाते है। आयु स्तर के आधार पर उन्हाने बच्चा के सीखने सबधी विकासात्मक चरणो का विस्तृत ढॉचा तैयार किया। अल्फ्रेड बिने की प्रयोगशाला मे बुद्धिजॉच सम्बन्धी प्रश्न तैयार करते करते उनकी रुचि बच्चो के गलत या सही उत्तरो को जानने की बजाय इस ओर गई कि बच्चो के सोचने की वह कौन सी विधि है जो उनसे उत्तर दिलवाती है और विशेषतया गलत उत्तर दिलवाती है। पियाज़े की शोध म बुद्धि लब्धि को कोई स्थान नहीं। क्योंकि बुद्धि लब्धि तो बौद्धिक विकास को जॉचने की साख्यिकीय अवधारणा मात्र है। उसमे एक ही व्यक्ति के बौद्धिक अतर को अलग अलग आयु स्तर पर टेस्ट स्कोर द्वारा जॉंचा जाता है। इस विधि के द्वारा मानसिक विकास की सख्यात्मक अवधारणा जन्म लेती है अर्थात आदमी ज्यो-ज्या बड़ा

होता है त्यो-त्यो अधिक वृद्धि अर्जित करता है।

पियाज़े के यहाँ बौद्धिक विकास का आशय उन नवीन बौद्धिक क्षमताओ के अर्जन से है जो पहले वहाँ विद्यमान नहीं थीं। यहाँ बौद्धिक विकास सख्यात्मक नहीं परिमाणात्मक है जिसके अनुसार शिशु के सोचने म और किशोर के सोचने मे गज़ब की विषमता देखी जाती है बल्कि विद्यालय जाने की आयु वाले बालक मे और पूर्व विद्यालयी बच्चो मे यह अतर होता है।

जीवविज्ञान के विद्वान अभी सरचनागत उन स्थितियो के विकास का पता लगा रह है जिनक कारण प्राणिया क अग प्रत्यगा का अपने वातावरण से तादात्म्य स्थापित होता है। पियाज़े ने इसी समस्या को मानवीय अनुकूलन के परिप्रेक्ष्य मे उठाया और बौद्धिक या सज्ञानात्मक विकास के सिद्धात खोज निकाले। स्थूलतया उसे यो समझा जा सकता है कि ज्योही व्यक्ति अपने वातावरण के सान्निध्य मे आता है और उससे आदान प्रदान शुरू करता है त्योही बौद्धिक बिम्ब स्वत बनने शुरू हो जाते है। इन्हीं बिम्बो के द्वारा व्यक्ति क्रमश अपने परिवेश म व्यवहार करने लायक बनता है।

पियाज़े के सिद्धातो मे एक शब्द आता है स्कीम (Scheme) इसे स्ट्रक्चर या बिम्ब का समानार्थी माना जा सकता है। स्कीम अर्थात बार बार दोहराये जाने वाले व्यवहार। स्कीम का सबध शैशवकालीन सहज क्रियाआ स है जस स्तनपान किशोरकालीन मानसिक क्रियाआ से है जैसे किसी चीज का विश्लेषण करना उसके बारे मे सभावनाएँ ढूँढना या उसे स्वय सचालित करके देखना आदि। स्कीम का स्तर ग्रहण करने का आशय यह है कि बच्चे के मानसिक विकास मे बदलाव आना शुरु हो गया है।

हालाँकि पियाज़े का प्रमुख सम्बध बौद्धिक बिम्ब (स्ट्रक्चर) से है पर साथ ही साथ दिमाग के दो पहलुओ की ओर भी पियाज़े इगित करते ह, वे है वस्तु (कटेट) तथा कार्य (फक्शन)। वस्तु का सबध उन विशिष्ट बाल व्यवहारा स ह जा वे अपन सामने आइ परिस्थिति या समस्या से पार पाने के लिए प्रतिक्रिया स्वरूप करते है। सन 1920-30 के बीच पियाज़े का शोध कार्य इसी वस्तुपक्ष पर केन्द्रित रहा कि बच्चे जिन बातो पर सोचा करते है वह वस्तुपक्ष क्या है और कैसा है? और यह भी कि बचपन की शुरुआत से लेकर उसकी समाप्ति तक उसकी तार्किक क्षमता मे परिवर्तन कैसे आता है? उसका नैतिक व्यवहार व निर्णय क्या और

कैसे रूप ग्रहण करता है? अपने चारो ओर की दुनिया के बारे मे उसकी अवधारणा क्या और कैसी रहती है? खास तौर से वृक्षो की उत्पत्ति सपने सूरज चॉद सितारे बहती हुई नदियॉ और तैरते हुए बादल। मगर विगत 3 4 दशको मे पियाज़े की शोध दृष्टि मे अधिक पैनापन आया। वस्तुपक्ष के विवरण से आगे बढकर उन्होने उसका निर्धारण करने वाली बुनियादी प्रक्रिया के वर्गीकरण को अधिक घनीभूत बनाया।

बौद्धिक बिम्ब (स्ट्रक्चर) के दूसरे पहलू कार्य (फक्शन) का आशय उस विधि से है जिसमे जीव (ओर्गेनिज्म) बौद्धिक विकास करते हैं। प्रत्येक जीव मे दो जन्मजात प्रवृत्तियॉ देखी जाती है जिन्हे पियाज़े निश्चर-कार्य (इनवेरियट फक्शन) की सज्ञा देते है। वे है– व्यवस्था (ओर्गेनाइजेशन) तथा अनुकूलता (एडेप्टेशन)। व्यवस्था का अर्थ है जीव की वे आगिक क्षमताऍ जो समस्त कार्यों को व्यवस्थित करती है उनकी भौतिक एव मानसिक प्रक्रियाओ मे सामजस्य स्थापित करती है। उदाहरणार्थ मछली को ले। उसकी आगिक बनावट मे कई चीज़े देखने को मिलेगी जिनके द्वारा वह पानी मे अच्छी तरह से तैर सकती है उसके गलफड़े उसका सर्क्यूलेटरी सिस्टम उसका तापमापी रचनातत्र। ये सभी तत्व परस्पर मिलजुल कर इतनी कुशलता के साथ कार्य करते हैं कि जिसकी वजह से मछली अपने वातावरण मे जिन्दा रह पाती है। यह हुई भौतिक व्यवस्था मे सामजस्य की बात।

व्यवस्था (ओर्गेनाइजेशन) सबधी ठीक ऐसी प्रवृत्ति मन के स्तर पर चलती है। बच्चा टकटकी लगाकर किसी वस्तु को निरखता है और उसे समझने की कोशिश करता है। ये दो अलग-अलग व्यवहारतत्र हुए। कालातर मे बड़ा होने पर एक अवसर वह आता है जबकि वह ये दोनो व्यवहार एक अधिक व्यवस्थित तत्र द्वारा एक ही साथ करने लगता है याने वस्तु को देखने के साथ ही समझने का काम भी करने लगेगा। व्यवस्था का अर्थ हुआ भौतिक एव मानसिक सरचनाओ मे ऐक्य स्थापित होना।

कार्य (फक्शन) का दूसरा पहलू है अनुकूलता। पियाज़े के अनुसार जीव का जन्मजात धर्म है वातावरण के प्रति अपने आप को ढाल लेना। लेकिन ढालने का यह तरीका जीवो मे एक जैसा नहीं होता। अनुकूलता को बारीकी से समझाने के लिए पियाज़े ने दो और शब्द दिये हैं आत्मीयकरण (एसिमिलेशन) और समायोजन (एकोमोडेशन)। उस विधि को आत्मीयकरण कहते हैं जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी किसी क्षमता अथवा योग्यता का उपयोग अपनी परिवेशगत समस्या के समाधान हेतु करता

है। समायोजन वह प्रक्रिया कहलाती है जिसके द्वारा अपनी परिवेशगत ज़रुरत के मद्देनज़र व्यक्ति को अपने मे वदलाव लाना होता है। ये दोनो सिद्धात एक उदाहरण द्वारा यो समझे एक बच्चे ने दराज़ को खोलना सीख लिया। लेकिन दराज़ का हेडल अगर कमानीदार हुआ तो हत्था मोड़ने पर ही वह खुलेगा। बच्चे को यह नई तरकीव सीखनी पड़ेगी। याने उसे अपने को वातावरण से समायोजित करना होगा। एक बार जब बच्चा हडल का घुमाकर दराज़ खोलना सीख लेगा तो फिर उन बातो को सिलसिलेवार याद करेगा कि पहली बार उसने क्या तरीका अपनाया था और बाद मे कौनसा ! इस प्रकार वह नई तरकीब को आत्मसात कर लेगा। पियाज़े के अनुसार आत्मीयकरण व समायोजन के सुसतुलन का नाम अनुकूलन है। आत्मीयकरण की प्रक्रिया के दौरान अगर व्यक्ति वातावरण से अनुकूलित नहीं होता तो असतुलन (डिसइक्विलिब्रियम) की एक स्थिति जन्म लेती है। असतुलन की परिणति है समायोजन। वस्तुत देखा जाए तो बौद्धिक विकास सतुलन असतुलन की अनवरत चलने वाली एक प्रक्रिया ही है। सतुलन का आशय है व्यक्ति की बुद्धि का अपने उत्कृष्टतम रूप मे होना।

कक्षा शिक्षण मे अनुकूलता का सिद्धात लागू किया जा सकता है। सज्ञानात्मक प्रगति कुछ अशो मे समायोजन पर निर्भर करती है। विद्यार्थी अगर सीखने के इच्छुक है तो उन्हे अजाने क्षेत्र मे जाना होगा। अगर विद्यार्थी पहले से सब कुछ जानता है तो अध्ययन नहीं कर सकता क्योंकि वह आत्मीयकरण के मार्ग पर जाना नहीं चाहता।

इस प्रकार बौद्धिक विकास को पियाज़े ने विम्ब वस्तु कार्य– इन तीन पहलुओ द्वारा विवेचित किया है। बच्चा जब विकास करता है तो उसकी शारीरिक सरचना व वस्तु मे वदलाव आता है कार्य वही रहता है। पियाज़े द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था (ओर्गेनाइजेशन) व अनुकूलता (एडेप्टेशन) की वजह से बाल बौद्धिक विकास के सिलसिलेवार कई चरण बन जाते है। प्रत्येक चरण मे विशेष प्रकार की मनोवैज्ञानिक रचना देखने मे आती है जिसके आधार पर बच्चे की सोचने की योग्यता निर्धारित होती है।

आइए अब पियाज़े के बाल विकास सबधी चरणो पर दृष्टिपात करें। चार चरण ये है (1) सेसरी मोटर पीरियड (0-2 वर्ष) (2) प्रिओपरेशनल पीरियड (2 7 वर्ष) (3) काक्रीट ओपरेशनल पीरियड (7 11वर्ष) (4) फोरमल ओपरेशनल पीरियड (11 वर्ष और ऊपर)। यह आयु

वर्ग अनुमानित है। लेकिन प्रत्येक बालक इन चरणो को पार अवश्य करता है– कोई कभी तो कोई कभी। बहुत सभव है कि छ वर्ष का बालक कान्क्रीट ओपरेशनल चरण म पहुँच जाए और आठ वर्ष का बालक प्रिओपरेशनल चरण पर ही बना रहे। जो हो विकास का क्रम पियाज़े के अनुसार बच्चा के लिए यही रहेगा।

जन्म से दो वर्ष तक की अवधि जन्म के पहले दिन से ही बच्चा अपनी सहज स्वाभाविक हरकते दिखाने लगता है खासतौर से ज्योही उसके सामने कोई उत्प्रेरक आ जाता है। बच्चे के मुँह मे स्तन आया नहीं कि वह स्तनपान करने म व्यस्त हुआ नहीं। उसके हाथ मे कोई चीज़ दे फौरन पकड़ने की हरकत करने लगेगा। अगर कोई चीज़ उसकी नज़र के सामने आएगी तो टकटकी लगाकर उसे देखने लगेगा। अभी उसकी समझ मे कार्य-कारण सबध या वस्तुओ म स्थिरता का गुण जैसी बाते हम नहीं देख पाएँगे। ये जन्मजात नहीं हैं सहज क्रियाएँ अवश्य जन्मजात हैं। धारणाओ का विकास लगभग दो वर्ष की आयु म जाने पर होगा।

हम जानते हैं कि बच्चे की दृष्टि मे कोई चीज़ आई नहीं कि वह उसका पीछा करने लगता है। यदि वह उसकी दृष्टि से ओझल हो गई और पल भर मे फिर सामने आ गई तो उसे देखने के लिए इतज़ार नहीं करेगा और किधर ही देखने लगेगा। बच्चे के लिए समय का वह अर्थ नहीं जो प्रौढ़ के लिए है। जो चीज़ दृष्टि से परे होती है वह उसके लिए दिमाग से भी परे होती है।

थोड़ा बड़ा होने पर बच्चे की नज़रे वस्तु विशेष पर टिकने लगती है पर जो चीज़े उसकी दृष्टि मे नहीं होती उनका उसके लिए अस्तित्व भी नहीं होता । छ महिने के बच्चे को झुनझुना दिखाएँ और जब वह उसे लेने के लिए हाथ बढाए तो रूमाल से छिपा दे ताकि वह आसानी से उसे हटाकर उठा सके। मगर आप देखेगे कि रूमाल से छिपा देने पर झुनझुना पाने की उसकी ललक फौरन तिरोहित हो गई और उसने फिर से पाने की उत्कठा कत्तई नहीं दिखाई। खिलौना अगर रूमाल से आधा दिखाई दे रहा होगा तब भी वह रुचि नहीं दिखाएगा। इस तथ्य पर थोड़ा गौर करे तो समझ मे आएगा कि आधी ढकी चीज़ स्पष्टतया पूरी दिखाई देने वाली चीज़ जैसी नहीं होती। बच्चे की सवेदना मे उसका कोई बिम्ब नहीं बनता। इसी तरह से अगर बच्चे को स्तनपान की बजाय शीशी से दूध दिया जाय तो बच्चा कोई फर्क करने की स्थिति मे नहीं

होगा। वस्तुत सवेदन और इन्द्रिय वोध का वाल-जगत उसका अपना है। ज़रूरी नहीं कि प्रौढो के जगत जैसा हो। वह अपनी दुनिया स्वय रचता है।

अपनी दुनिया के इस रचाव मे बच्चा उन्हीं चरणा से गुज़रता है जिनसे हम सब गुज़रे है। छोटा बच्चा जब घुटनो के बल या ठुमक-ठुमक कर चलने लायक हो जाए तो आप उसका पसदीदा खिलौना लाल रग के रूमाल से ढक दे। आप देखेगे कि उसने रूमाल हटाकर खिलौना प्राप्त कर लिया है और विजय के उल्लास से घर को किलकारी मारकर गुजा दिया है। आप भी खुश होगे कि बच्चे ने इतना तो सीख लिया कि निर्जीव चीज़ जहाँ भी रखी जाती है वहीं पड़ी मिलती है। पर वस्तुत क्या बच्चा यह सब सीख जाता है? यही खेल अनेक बार खिलाने के बाद एक बार लाल के बजाय पीले रूमाल से खिलौने को ढक दीजिए और बच्चे की चेष्टाओ का अवलोकन करे। बच्चा सभ्रम म पड़ जाएगा। उसके लिए यह नई स्थिति है। पहले की स्थिति से उसने जो आशय अपने तई निकाला था वह यह कि जो चीज़े छिपाई जाती है वे लाल रग के रूमाल के नीचे ही मिलेगी।

पियाज़े ने ऐसी ट्रिक स्थितियाँ सकड़ो की तादाद मे ईजाद की है। उनका कहना है कि 18 माह या 2 वर्ष की उम्र से पहले बच्चा पूरी समझ नहीं पकड़ पाता कि उसे बेवकूफ बनाया जा रहा है। इस उम्र से पहले वस्तुओ की स्थिरता व कार्य कारण सबधी अत बोध की धारणाएँ भी विकसित नहीं होती। सवाल उठता है कि तब बच्चा यह ज्ञान कैसे अर्जित करेगा? शिशु की चेष्टाएँ यदि आप बराबर निहारें तो कहेगे कि अपने हाथो मुँह आँखो आदि के ज़रिये बच्चा चीजो के विषय मे निरतर ज्ञान प्राप्त कर रहा है। शुरू-शुरू मे चीज़ों की यह तलाश प्रत्येक इन्द्रिय द्वारा स्वतत्र रूप से होती है फिर उनमे समन्वय होने लगता है और आगे चलकर तो चीज़ो को उठाना पटकना हिलाना घिसना आदि अनेक क्रियाएँ शुरू हो जाती है।

पियाज़े के अनुसार ये क्रियाएँ कुजी का काम करती हैं। इन्हीं के माध्यम से बच्चे को अपनी दुनिया रचने की सुव्यवस्थित दृष्टि प्राप्त होती है। कोई भी क्रिया चाहे वह बच्चे की सहज क्रिया ही हो दिमाग मे एक योजना के रूप मे मौजूद रहती है। इसे चाहे तो 'प्रोग्राम कह दे या न्यूरल आवेग कह दे। पियाज़े ने इसी को स्कीम कहा है जिसका वर्णन ऊपर की पक्तियो मे किया जा चुका है।

दो से सात वर्ष की अवधि पहले चरण की उपलब्धियों का उपयोग बच्चा इस आयु वर्ग में आने पर करता देखा जाता है। चीज़ों का अब उसके लिए कोई अर्थ निकलने लगता है। इन्द्रिय बोध की सहज क्रियाएँ क्रमश एकीकृत व समन्वित रूप धारण करने लगती हैं। बच्चा उन्हें अब कोई नाम देने का प्रयास करता है। बहुत सी चीज़ों को एक ही नाम से पुकारता है। लेकिन यह सब रातो रात नहीं हो जाता। उसके शब्दों से ही पता लगेगा कि चीज़ों का मन पर कितना असर है। लेकिन जहाँ तक उसके नाम का प्रश्न है वह फर्क नहीं कर पायेगा। माँ को मामा भाई को मामा, बकरी को मामा चिड़िया को भी मामा। लेकिन धीमे-धीमे उसकी वर्गीकरण की क्षमता स्पष्ट होने लगेगी। खासतौर से 5-6 वर्ष की उम्र तक आते आते। हालाँकि तब भी जटिल मसलों पर वह उलझ जाएगा। जैसे कि हर लाल फूल उसके लिए गुलाब ही होगा।

वस्तुओं के नामकरण में पियाज़े के अनुसार प्रथम चरण वाला तरीका ही काम करता है। चीज़ों को वर्गों में बाँटना, वर्गों को उपवर्गों में बाँटना किसी एक चलती फिरती चीज़ को गाय की संज्ञा देना, लेकिन कुछ समय बाद सिर्फ चौपाया को ही गाय के नाम से पुकारना। वस्तुत अलग अलग वस्तुओं और समूहों का एक ही नाम से पुकारते हुए बच्चा अपनी मानसिक क्रिया शुरू करता है। 2 से 7 वर्ष की अवधि में वह वस्तुओं के बारे में कुछ समझ पकड़ लेता है। चीज़ों के वर्ग समूह व जाति से वह परिचित हो जाता है। इसके लिए उसे बार बार वर्गीकरण-पुनर्वर्गीकरण की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। इस कालावधि में बच्चों की भाषायी क्षमता में आश्चर्यजनक वृद्धि देखी जाती है। न सिर्फ शब्द सपदा में वृद्धि बल्कि शब्द प्रयोग में निखार आ जाता है। बच्चों की अपनी एक ख़याली दुनिया निर्मित हो जाती है। अपनी शब्द सपदा द्वारा वे अजाने व्यवहार करने लगते हैं। खिलौनों में वे प्राण फूँक देते हैं और मानवीय व्यवहारों में हिस्सेदार बनाकर उनसे बातचीत में खो जाते हैं। शुरू शुरू में फेंटेसी के मन लोक में बच्चा विभिन्न स्थितियों में निराले अतार्किक अर्थ व्यक्त करता है। जब वह सात आठ वर्ष का होता है तो उसका पर्यावलोकन विकसित होता है तथा उसके सोचने में तार्किकता शुरू होती है।

सात से ग्यारह वर्ष की अवधि विकास के द्वितीय चरण में जो बच्चा स्वप्नजीवी व जादुई जगत का जीव था इस आयु वर्ग में आते न आते तार्किक यथार्थवादी बनने लगता है। उसे सख्या एव वज़न आदि

का सही ज्ञान होने लगता है। अब उसे कोई बेवकूफ नहीं बना सकता जैसा कि पॉच छ वर्ष की उम्र तक समान गिनती की दो मालाओ मे से उसे एक छोटी व दूसरी बड़ी दिखती थी। कारण था एक मे दाना का करीब होना व दूसरी मे दूर-दूर होना। अब बच्चा किसी बहकावे मे नहीं आएगा। वह स्वप्न और यथार्थ का भेद समझ जाता है पर परिकल्पना और तथ्य को अभी नहीं अलगा सकता। उसमे अभिधा बोध की प्रचुरता रहती है और सिद्धातो की समझ कमजोर। द्वितीय चरण का बच्चा स्वप्न लोक मे रहता है तो इस आयु का बच्चा अभिधा बोध के लोक म रहता है। एक अनुसधाता ने किशोर वय के एक कुतर्क की कहानी लिखी है आठ वर्ष का एक बालक खाना खाने की टेबल पर गीले हाथ लिए आ गया। मॉ ने उससे हाथ न पोछने की वजह पूछी। साहबज़ादे ने तर्क दिया कि तुम्हीं ने तो साफ तौलिये से पोछने की मनाही की थी। इस पर मॉ ने हाथ नचाते हुए कहा ओफ्फो मैने तो गदे हाथ तौलिये से पोछने को मना किया था।' बच्चा क्रमश स्वकेन्द्रित से समाजोन्मुखी बनता जाता है तथा दूसरो के भावों को समझने का उसका माद्दा बढ़ने लगता है।

ग्यारह से सत्रह वर्ष की अवधि सयोगवश यह किशोर वय भी है। बच्चे के सोचने मे प्रचुर बदलाव आता है। उसका सोचना तर्क-युक्त एव सुसबद्ध हो जाता है। वार्तालाप या लेख आदि की बारीक बाते उसकी समझ मे आने लगती है। प्रतीको उपमाओ व अन्योक्तियो से अर्थ खुलने लगते है। कथा का सामान्यीकृत आशय स्वत सामने आ जाता है। छोटे बच्चों के लिए जो खेल महज़ खेल ही रहते है इनके लिए वह एक सार्थक आयोजन होता है। बच्चे अब समस्या के समाधान हेतु एक ही तरीके पर आश्रित नहीं रहते अनेक परिकल्पनाएँ करने लगते है।

पियाज़े के उक्त शोध सिद्धात इमानुल काट के दर्शन की बुनियाद पर निर्मित हैं तथापि हम देखते हैं कि पियाज़े ने काट के विचारो से अपनी अलग दिशा खोजने का प्रयास किया है। काट ने कहा था कि जगत का कुछ ज्ञान सार्वभौमिक है और वह मनुष्य को जन्म से प्राप्त होता है। पियाज़े ने दरसा दिया कि यद्यपि जगत का ज्ञान सार्वभौमिक है तथापि वह जन्म से मानव मस्तिष्क मे नहीं रहता बल्कि जन्म से 16-17 वर्ष की उम्र तक सिलसिलेवार चरणो म वह मानव मस्तिष्क मे निर्मित होता है। पियाज़े के इन सज्ञानात्मक विकास के सिद्धातो के प्रकाश मे विद्यालयी पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियो मे सशोधन परिवर्द्धन की अनत सभावनाएँ उजागर होती है। ❐

बात वहाँ से शुरू करें जहाँ विद्यार्थी है

सतीश टी.वी. पर क्विज की धारावाहिक प्रस्तुति से बहुत प्रभावित था। हर हफ्ते प्रोग्राम देखता और उसकी तारीफ के पुल बाँधता।

एक दिन बोला, भाई साहब! हमारे विद्यालयों में अब भी वही बोदी पुरानी शैक्षिक प्रवृत्तियाँ होती हैं। क्विज प्रोग्राम जैसे नवाचारों की तरफ तो संस्था प्रधानों और अध्यापकों का ध्यान ही नहीं जाता। महानगरों की पब्लिक स्कूलों या ऐसी ही कुछ प्राइवेट स्कूलों में यह प्रवृत्ति हो तो हो, अन्य स्कूलों में नई प्रवृत्तियों को आजमाने की न तो उत्कंठा है, न ही पहल।

यह कहे जा रहा था और मैं धैर्य से सुनते हुए अपने अनुज की रुचियों-प्रवृत्तियों को जानने का लाभ ले रहा था।

ये टी.वी. वाले शिक्षा की बारीकियों में दक्ष लोग नहीं हैं भाई साहब, फिर भी इनके प्रोग्राम शत प्रतिशत शैक्षिक मूल्यों के होते हैं। कितनी तैयारी के साथ रोचक प्रोग्राम देते हैं। आपने देखे हैं कभी?"

हाँ, देखे थे। मैंने छोटा सा उत्तर दिया।

सतीश मुझसे दस बारह साल छोटा है। पिछले वर्ष उसे प्रिंसिपल का प्रोमोशन मिला था और डाइट में लगाया था। कहने लगा, "कितनी रफ्तार से कितनी बढ़िया अंग्रेजी बोलता है क्विज मास्टर! ऐसे कार्यक्रम दिखा कर हमारे विद्यार्थियों की प्रेजेंस ऑव माइंड को, एक्यूरेसी के साथ उत्तर देने की क्षमता को, बुद्धि की विलक्षणता और अभिव्यक्ति की प्रखरता को बूस्ट किया जा सकता है। सोचता हूँ, कुछ स्कूलों में इस प्रवृत्ति को प्रयोग के बतौर इंट्रोड्यूस करके देखूँ। क्यों भाई साहब!

'ज़रूर करो!' मैंने अपनी सहमति व्यक्त की। अच्छी और उपयोगी प्रवृत्तियों से तो फायदा ही होता है और फिर टी.वी. की वजह से विद्यार्थियों में भी बहुत उत्साह रहता है, अतः अगर इसे ढंग से समझदारी के साथ शुरू करोगे तो बेशक फायदा होगा। वैसे कुल मिलाकर यह मामला अपेक्षाकृत तोता-रटंत जैसा ही है।

वह कैसे? सहज ही उसने प्रश्न जड़ दिया फिर बात का मर्म समझते हुए कहने लगा भई! बिना अध्ययन किए बिना सही निष्कर्ष पर पहुँचे और बिना ज्ञान बढाए तो कोई उत्तर देगा भी कैसे ? मेरे ख्याल से विद्यार्थियो की बौद्धिक क्षमताओ के विकास के लिए यह बहुत ही उपयोगी प्रवृत्ति है।" सतीश ने मानो अपना सारा सोच व्यक्त कर दिया।

देख सतीश! क्विज प्रोग्राम तो अपेक्षाकृत इकतरफा मामला है ही हमारा क्लासरूम टीचिंग भी इसी रोग से ग्रसित है। स्कूलो मे कुछ दिन जरा चक्कर लगाकर देखो। या तो तुमको कक्षाएँ खाली मिलेगी या शोर मचाती मिलेगी और मास्टर जी कुर्सी पर बैठे किसी सस्ती सी पत्रिका के पन्ने पलटते मिलेगे या अगर कहीं ईमानदारी से पढ़ाई होती दिखेगी तो टी.वी. के इन्हीं क्विज प्रोग्रामो की अनेकानेक आवृत्तियाँ मिलेगी।" मेरी बाते सुनकर सतीश सन्न रह गया।

हाँ मैने कहना जारी रखा अगर विश्वास न हो तो जाकर देख लो। ज्यादातर कक्षाओ मे तुमको रटत विद्या का यही खेल देखने को मिलेगा। छात्र छात्राओ के समक्ष खड़ा अध्यापक क्विज मास्टर की ही तरह उनसे दनादन पचास सैकड मे पॉच छह प्रश्न पूछता नज़र आएगा। हॉ तो बताओ बच्चो ! अकबर का राज्याभिषेक कब हुआ था? उस समय वह कितने बरस का होगा? हुमायूँ की मृत्यु के समय वह कहॉ था? पिता की मृत्यु का समाचार उसे कहॉ मिला था? आदि आदि।" बेचारे विद्यार्थी प्रश्न को सुनकर समझने और उत्तर देने की तैयारी करने लगते है कि फौरन तमाचे की तरह दूसरा सवाल चटाक से दिमाग मे गूँजता है।

मेरे कहने का मकसद यह है सतीश कि सैकड़ो वर्षों से कक्षा शिक्षण की परम्परा चल रही है और लगभग सौ वर्षो से शिक्षा मनोविज्ञान ने अध्यापको को अच्छा-खासा प्रशिक्षण दिया है फिर भी इस बात की बहुत कम लोग परवाह करते है कि कक्षा मे अध्यापको और विद्यार्थियो के बीच आदान प्रदान का बुनियादी आधार क्या होना चाहिए?

क्या तुमको विद्यार्थियो और अध्यापको के बीच का अतर्सम्बध यात्रिक नज़र नहीं आता? शिक्षा प्रक्रिया मे सर्वत्र घोटना और रटना ही शेष रह गया है चाहे पाठ्यपुस्तक से रटो या फिर शिक्षको द्वारा दी गई सामग्री से रटो। विद्यालयी पढाई मे विद्यार्थी की जिज्ञासा को कोई स्थान नहीं है। अगर खुदा-न-खास्ता कोई विद्यार्थी अपनी जिज्ञासा से प्रेरित होकर प्रश्न पूछ बैठे तो मास्टर जी उसे यह कह कर जबरन बिठा देते है कि 'इतनी छोटी सी बात भी तुम नहीं जानते?

'आप तो भाई साहब न जाने कहाँ के कहाँ निकल गए। बात तो क्विज की थी और आपने पचड़ा छेड़ दिया क्लासरूम टीचिंग का। लेकिन इस तरह की बाते प्राय विश्वसनीय नहीं होती क्योंकि आप जैस चद लोगो के ओव्जर्वेशन का महत्व ही क्या है? सतीश ने मेरे तर्क को मानो दरकिनार कर दिया। पर मेरे पास प्रमाण था अत मैंने कहा

तुम यूँ करो सतीश कभी युनिवर्सिटी की या टी टी कॉलेज की लाइब्रेरी म जाओ तो वहाँ से 'द क्वेश्चन एज ए मेजर ऑव एफिशियसी इन इन्सट्रक्शन नामक पुस्तक लाकर ज़रूर पढ़ना। लेखक है आर स्टीवेस। सन 1912 मे उसने कोलम्बिया युनिवर्सिटी मे वह शोध की थी। टेप रिकार्डर उन दिनो थे नहीं इसलिए उसने कक्षा शिक्षण के स्टेनोग्राफिक नोटस तैयार कराए और उन पर अध्ययन किया। महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह सामने आया कि 80 प्रतिशत से अधिक कक्षाओ मे अध्यापको के द्वारा छात्रो से प्रश्न पूछने और उत्तर माँगने का यही धधा चलता है। और प्रश्न भी कैसे? छोटे छोटे रटे रटाये उत्तरो वाले अथवा जो कुछ अध्यापक ने बताया लगभग उसी की पुनरावृति से सम्बधित। अध्यापक प्रति मिनट एक से चार प्रश्न पूछते हैं मानो विद्यार्थी प्रतियोगी हो। उत्तर उनकी जबान पर न हुआ तो उनकी बारी गई समझो। क्विज मास्टर रुके तो अध्यापक रुक।

यह तो थी सन 1912 की बात। पचास वर्षों के बाद सन् 1960 मे एक और शोध हुई थी। 'लैंग्विज ऑव द क्लासरूम नामक पुस्तक मे उसके शोधकर्त्ता ए बैलक ने लगभग पचास वर्ष पूर्व के निष्कर्षों से मिलते-जुलते निष्कर्ष ही प्राप्त किए थे कि

-अध्यापक अपने पीरियड के 70 प्रतिशत भाग मे सिर्फ बोलते ही रहते है।

बोलने का रूप अधिकाशत प्रश्न पूछना होता है।

- 80 से 88 प्रतिशत प्रश्नो मे स्मृति की जॉच पर बल रहता है।

अध्यापक प्रति मिनट दो प्रश्न पूछते है।

विद्यार्थी उ प्रश्नो के उत्तर अत्यत सक्षेप मे देते हैं।

विद्यार्थियो को पूछताछ और सुझावो के लिए कत्तई स्थान नहीं होता।

क्यो सतीश' इन दोनो प्रमाणो से क्या तुम्हारे भीतर अब भी कोई प्रश्न नहीं कौंधता कि विद्यालयो मे प्रचलित पढाई की यह क्विज प्रणाली कोई प्रभावशाली शिक्षण विधि नहीं है तब भला इसे क्यो बढाया

दिया जाए?

कुर्सी से उठता हुआ सतीश प्रतिक्रिया मे कहने लगा 'लेकिन भाई साहब इन रिसर्चेज से विद्यार्थियो के सीखने मे स्मृति तत्त्व का महत्त्व घट तो नहीं जाता। यदि इनसे स्मृति तीव्र होती है तो बुराई ही क्या है?

मैने महसूस किया कि सतीश मेरे विचार को पकड़ नहीं पा रहा। तब मैने उसे प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता विलियम जेम्स का एक तजुर्बा सुनाते हुआ कहा

एक बार जेम्स अपने एक शिक्षक मित्र के आग्रह पर उसकी कक्षा मे गया। मित्र चाहता था कि जेम्स उसके विद्यार्थियो से पूछताछ करे। भूगोल की कक्षा थी। जेम्स ने विद्यार्थियो की पाठ्यपुस्तक को सरसरी तौर पर देखने के बाद उनसे पूछा कि मान ले आप ज़मीन मे एक गड्ढा खोदते है–बहुत गहरा कोई सौ फीट गहरा। ज़मीन की ऊपरी सतह की तुलना मे क्या आपको गड्ढे के भीतर की सतह ठंडी मिलेगी या गरम?

प्रश्न सुनकर विद्यार्थी एक दूसरे का चेहरा देखने लगे। प्रश्न उनकी पाठ्यपुस्तक से सम्बधित था और वह पाठ उन्हे पढाया जा चुका था।

विद्यार्थियो को खामोश देखकर अध्यापक मित्र जेम्स के पास आया और बोला कि इस प्रश्न का उत्तर इनको पता है बस तुम्हारा प्रश्न पूछने का ढग जरा अटपटा था। जरा मै पूछता हूँ। अध्यापक ने किताब हाथ मे लेकर पूछा बताओ बच्चो' पृथ्वी के भीतर का आवरण कैसा है? और जेम्स के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि प्रश्न सुनते ही आधे से अधिक विद्यार्थी एक साथ बोल उठे 'सर गरम। जलती हुई आग की तरह का द्रवणशील।'

अब तुम ही बताओ सतीश क्या फर्क था दोनो स्थितियो मे? हमारे विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक की शब्दावली से अलग किसी अन्य मुहावरे का पकड़ क्या नहीं पाते? क्या अब भी इन्कार करोगे कि स्मृति की शिक्षा के नाम पर छात्रो के साथ बहुत बड़ा धोखा नहीं हो रहा हमारी कक्षाओ मे?

बात सुनकर सतीश उसी सहजता के साथ मानो शिक्षण के उस चलन से उसे कोई शिकायत ही न हो और सभी कुछ युगधर्म सा बन गया हो बोला दरअसल भाई साहब' सिखाने पढाने की प्रक्रिया इतनी पेचीदा है कि हर किसी के हाथ की बात नहीं है। फिर अध्यापको

वे पास इतना समय ही कहाँ रहता है कि वे पाठ्यपुस्तकों को पूरा कराने का दायित्व छोड़ कर और और तरीके आजमाने म अपनी शक्ति जाया करे? कक्षा के चालीस पैंतालीस विद्यार्थिया और एक प्रौढ़ के बीच आदान प्रदान की प्रक्रिया अपने आप मे एक विरोधाभासी स्थिति है जहाँ इतने सारे विविध आयाम होते हैं कि उनका वर्णन करना लगभग मुश्किल होता है।"

'शाबाश मेरे भाई' मैं बीच ही म बोल पड़ा आखिर तुम मूल प्रश्न पर आये तो सही हालाँकि मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ कि उम्र के फर्क की वजह से शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य आदान प्रदान की प्रक्रिया को जीवत नहीं बनाया जा सकता। क्या तुम यही धारणा लेकर अपनी संस्था म शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमो का सयोजन सचालन करोगे? सतीश क्या बोलता चुपचाप मेरी बात सुनता रहा। मेरा बोलना जारी था

काफी अर्से पहले मैंने विलियम जेम्स की एक पुस्तक पढ़ी थी 'टाक्स विद टीचर्स जिसमे उसने कक्षा मे घटित होने वाली टीचिंग-लर्निंग प्रक्रिया को बारीकी से समझने व जाँचने के प्रयासों पर बल दिया था। वह स्वय कक्षा शिक्षण को अत्यत बारीकी से देखता था और वहाँ से उदभूत होने वाली स्थितियो का सकारात्मक विकल्प सुझाया करता था। विलियम जेम्स ने शिक्षण का एक बहुमूल्य सूत्र हमें दिया है 'स्टार्ट व्हेयर द लर्नर इज एड प्रोसीड।" जाहिर है बात की शुरुआत करने मे केन्द्रीय महत्व का मुद्दा है विद्यार्थी की वर्तमान समझ को ज्ञात करना और वहाँ से उसे आगे बढ़ाना।

विलियम जेम्स ने ठीक सौ वर्ष पूर्व हार्वर्ड युनिवर्सिटी मे धारावाही व्याख्यान दिए थे और शिक्षा मनोविज्ञान की शाखा को दर्शनशास्त्र से अलग स्थापित किया था। उसका आग्रह था कि प्रयोगशाला मे शिक्षा मनोविज्ञान पर प्रयोग परीक्षण करने की बजाय जीवन और जगत की यथार्थ समस्याओं पर इसे प्रयुक्त करना अधिक उपादेय होता है।

उसके अनुसार कक्षा शिक्षण महज 'मैटर ऑव द फैक्ट नहीं होता और न ही विद्यार्थियों को उसके स्थूल रूप मे परोसा जाए। यदि अध्यापक को अपनी कक्षा मे पृथ्वी से सूर्य की दूरी के बारे में पढाना हो तो विद्यार्थियो की रुचि को बनाए रखने उनकी कल्पनाशील को तीव्र बनाने तथा अनेक तथ्यो को उनकी सगति मे बलाबल के साथ परखने के लिए एक व्यापक परिदृश्य देने की ज़रूरत है। उदाहरणार्थ अध्यापक अपने शिक्षण की शुरुआत कुछ इस तरह से कर सकता है 'मान लो बच्चो' सूर्य मे बैठा हुआ कोई तुम पर सीधा निशाना ताक कर तोप का

गोला दागे तो तुम क्या करोगे? एक उत्तर यह होगा कि मार्ग से हट जाना चाहिए। इस पर शिक्षक का स्पष्टीकरण यह होगा। 'जी नहीं उसकी क्या ज़रूरत? तुम बेखटके अपने कमरे मे आराम स जाकर लेट जाना फिर मस्ती से उठना डरने की कोई बात नहीं रोजाना की तरह पाठ पढ़ना नए नए काम सीखना और अपनी उम्र के वर्ष बिताते हुए बूढ़े होना शायद तब तक तोप का गोला तुम्हारे पास आए। तुम बहुत आसानी से छलाग लगाकर बच सकते हो। देखा कितनी दूर है सूर्य हमारी पृथ्वी से'

बड़े गोरे से सुन रहा था सतीश। मैंने अपनी बात कहनी जारी रखी विलियम जेम्स का उदाहरण देने के पीछे मेरा इतना ही प्रयोजन रहा है सतीश कि उसने बहुत ही ईमानदारी से कक्षा शिक्षण पर चिंतन किया था। बाद क शिक्षाविदा मे उसके जैसी सलग्नता बहुत कम देखने को मिली है। उसने शिक्षाविदो को यह बात समझा दी कि कक्षा मे विद्यार्थियो के साथ काम करते समय अध्यापको के मस्तिष्क मे जो विचार उदभूत होते है जो प्रश्न उठते है अथवा जैसा कुछ उनका अवलोकन बनता है वह सहज ही भुला देने की चीज़ नहीं है। प्रत्येक अध्यापक को उसे सहेज कर रखना चाहिए क्योकि वहीं से हमे शिक्षण को वैज्ञानिक बनाने के सूत्र हाथ लगते है। विलियम जेम्स ने एक जगह कहा था कि मानसशास्त्र एक विज्ञान है और शिक्षण एक कला। कोई भी विज्ञान अपने आप सीधे सीधे किसी कला को पैदा नहीं कर देता। यह काम तो अपनी मौलिकता को उपयोग मे लाकर कोई मध्यवर्ती खोजी मस्तिष्क (इन्वेंटिव माइंड) ही कर सकता है।'

ऐसा है भाई साहब' सतीश बीच ही मे कहने लगा 'विलियम जेम्स के हवाले से आप कक्षा शिक्षण को प्रभावी बनाने स्मृति के अलावा विद्यार्थियो की और फैकल्टीज को विकसित करने तथा पढ़ाने मे शिक्षा मनोविज्ञान का आश्रय लेने की जो सलाह दे रहे है वह अपनी जगह पर सही है। इसमे हर्गिज दो राय नहीं हो सकती। पर हमारी आज की पीड़ा थोड़ी अलग है जिसे आपने और आपकी पीढी ने नहीं भोगा।

आपके समय म टीचर्स को अधिक से अधिक ईक्विप करने की चेष्टा थी क्योंकि अध्यापको का शिक्षण लगभग एकरस और रूढ हो रहा था। वे कक्षाओ म नियमित जाते थे और नियमित रूप से कठोर परिश्रम करते थे। पर आज के अध्यापक तो कक्षाओ म जाते ही नहीं। कुछ तो शिक्षा अपनी अनुपयोगी विषयवस्तु को लेकर विश्वसनीयता खोती जा रही है और कुछ अध्यापकगण कक्षाओ मे अनुपस्थित रह कर अथवा वाछित

परिश्रम न करके उसकी उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगा रहे है। ऐसे मे मुझको यह नहीं लगता कि विलियम जेम्स का कोई शिक्षण सूत्र अथवा उसकी पुस्तक 'टाक्स विद टीचर्स' हमारी कोई मदद कर सकती है। अच्छा भाई साहब ! इस बात को फिर कभी छेड़ेंगे अभी तो मुझे तैयार होकर ऑफिस जाना है।

सतीश ऑफिस गया क्योंकि उसे जाना था। लेकिन मुझे कहाँ जाना था? अपने आपको खाली करके वक्त को भरने से अधिक बढ़िया कोई और काम भला रिटायर आदमी के लिए क्या हो सकता है?

सोचता हूँ नई पीढ़ी अपने भीतर नहीं कहीं बाहर टटोलने म लगी है। कक्षा के भीतर शिक्षण प्रक्रिया को जीना सम्पूर्ण जीवन जीने जैसा है जहाँ आपकी दृष्टि बालक के अथवा ज्ञान के किसी एक पक्ष अथवा खड पर नहीं होती अपितु आप समग्रता मे जीने की कोशिश करते है जबकि नवाचार के नाम पर आने वाली अनेक प्रवृत्तियाँ महज पैबद लगाने का काम करती है।

सतीश ने क्विज प्रोग्राम के शैक्षिक मूल्य की जो बात कही थी उससे मेरा सर्वथा अस्वीकार नहीं है लेकिन वहाँ भी वही सनातन प्रश्न खड़ा मिलेगा कि आखिरकार उसे सचालित सयोजित कौन करेगा? जो शिक्षक अध्ययन से विरत हो चुका है जिसका अपने अध्यापन विषय पर अधिकार ही नहीं रहा जिसका चितन बासी हो चुका है या जो ज्ञानार्जन से कतराता है ऐसा अध्यापक तो निश्चय ही क्विज कार्यक्रम का सचालन नहीं कर सकेगा।

मै सतीश की तरह हताश निराश नहीं हूँ, न ही शिक्षक समुदाय की तथाकथित उदासीनता से त्रस्त। वस्तुत यह बात हम पर निर्भर है कि सस्था प्रधान के नाते हम विद्यालयो के हितो को भी सर्वोपरि रखे और साथी अध्यापको की मानवीय व्यथा का निराकरण करते हुए उन्हे छात्रों के प्रति सतत सलग्न रहने की प्रेरणा देते रहे। समस्या अध्यापक नहीं है न छात्र हैं। आज की एक बड़ी समस्या है कक्षा की पढाई को प्रभावी बनाने की चिता न करना और जो कुछ चलता आ रहा है उसे चलने देना।



शिक्षण मे बालक के परिवेश की पकड़

आकाश मे उड़ते हुए हस बोल रहे थे रयि-क रयि-के रयि क रयि के ' और नीचे अपने महल की छत पर खड़ा राजा जानश्रुति सुन रहा था कि हस क्या कह रहे हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास अनामदास का पोथा' मे वर्णित राजा जानश्रुति के सम्बन्ध मे कही गई यह बात अगर सच है कि वह पशु पक्षियो की भाषा का गूढार्थ समझ लेता था तो सच मानिये ऐसी अदभुत क्षमता आस्ट्रियावासी प्रकृति विज्ञानी कोनरेड लॉरेज के पास भी थी।

लॉरेज अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का औषधविज्ञानी प्रकृति विज्ञानी और मनोविज्ञानी था। सन 1973 मे उसे मेडिसन मे नोबल पुरस्कार मिला था। 27 फरवरी 89 को 86 वर्ष की आयु मे वियेना के समीप अपने पैतृक गॉव म उसका देहान्त हुआ था।

लॉरेज ने मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एक नया विचार दिया था, जिसे इम्प्रिटिंग कहा जाता है। यही वह बिन्दु है जहाँ मनोविज्ञान की दोनो परस्पर विरोधी चिन्तन धाराये—आनुवाशिकी और व्यवहारवादी—आकर एक हो जाती हैं विशेषतया सीखने के सिद्धान्तों को लेकर। लॉरेज का जीवन और कथन दोनो हमारे लिए जानने पढने योग्य है।

लॉरेज के पिता अपने समय के यशस्वी अस्थि विज्ञानी सर्जन और प्रोफेसर थे। गर्मियो के दिनो मे उसका परिवार अपने एल्टनवर्ग गॉव चला जाता था। बाल्यावस्था में उन्ही दिनों लॉरेज का मन अपने क्षेत्र के पशु पक्षियो की तरफ आकर्षित हुआ। जब वह नौ वर्ष का था तभी उसने तालाबो और वनो की खाक छान ली थी और पानी के अन्दर की दुनिया का अवलोकन अध्ययन करने के लिए अपना सूक्ष्मदर्शक यत्र बना लिया था। एक स्थान पर लॉरेज ने लिखा भी है 'एक बार जिसने प्रकृति का आभ्यतरिक सौन्दर्य देख लिया वह अपने को फिर से उससे

अलग नहीं कर सकता। या तो वह कवि बनेगा या फिर प्रकृति वैज्ञानिक दोनो भी बन सकता है।"

स्पष्ट है लॉरेज प्रकृति विज्ञानी बना। वह अपने बचपन से ही वन्य जीवन के अध्ययन मे सलग्न हो गया था। वर्षो तक उसने कई तरह की जातियो के जानवरो की अनेक नस्लो को पहचाना उनके सिगनल कोड का अनुकरण किया और भाषा के रूप मे उनसे सवादो का आदान-प्रदान किया। जीव-जन्तुओ के स्वभाव क्रिया और बोली आदि को जानने की उसकी उत्कठा इतनी तीव्र थी कि वह खूख्वार और विषैले जानवरो तक को पालतू बना कर घर ले आता था। यह बात परिजनो के लिए असह्य थी।

पिता ने बालक की रुचि देखकर उसे आयुर्विज्ञान के अध्ययन की ओर लगा दिया। परिणामत वह औषध विज्ञान मे विशेष रुचि लेने लगा। सन 1928 म उसने वियेना विश्वविद्यालय से एम डी की उपाधि प्राप्त की पर जानवरो के प्रति उसका आकर्षण तब भी वैसा का वैसा बना रहा। सन 1933 म उसने प्राणिविज्ञान विषय म डाक्टरेट की। बाद के चार वर्ष उसने प्रकृति के परिवेश मे रहने वाले प्राणियो के व्यवहारगत अनुसधान-कार्य मे व्यतीत किये।

सन 1937 मे लॉरेज को वियेना विश्वविद्यालय म अध्यापन हेतु नियुक्ति मिली और उसने तुलनात्मक शरीर-रचना विज्ञान तथा प्राणि मनोविज्ञान विषय पढाया। उन्हीं दिनो उसका एक प्रसिद्ध निबन्ध प्रकाशित हुआ– द कम्पेनियन इन द वर्ड्स वर्ल्ड। इसी निबन्ध मे उसने इम्प्रिटिंग की पेचीदा जैविक-रचना विधि का विवेचन किया था। उसने लिखा था कि कुछ प्राणी ऐसे होते है कि जन्म लेने के प्रारम्भिक घटो मे ही वे अपनी नज़र के सामने चलने फिरने वाले किसी भी प्राणी का अनुसरण करने लगते हैं। इम्प्रिटिंग के द्वारा लॉरेज ने मनोविज्ञान के क्षेत्र मे वर्षों से प्रतिष्ठाहीन पड़े मूल प्रवृत्ति के सिद्धान्त को याने इस्टिक्ट थ्योरी को पुनर्जीवित किया और उस वैज्ञानिक आधार देकर सम्मानित किया।

सन 40 मे लॉरेज जर्मनी के कोनिग्जबर्ग विश्वविद्यालय मे मनोविज्ञान का प्रोफेसर बना पर कुछ अर्से बाद ही द्वितीय महायुद्ध शुरु हो गया और लगभग एक दशक तक वह उसम हिस्सा लने के कारण परेशान रहा। सन 50 में वह वियेना विश्वविद्यालय म नियुक्त किया गया पर इस बार 'मेक्सप्लेक व्यवहार मनोविज्ञान सस्थान के सहायक निदेशक के रूप मे। आगे चलकर वह इसी सस्थान का निदेशक बना। लॉरेज के प्रमुख पठनीय ग्रथ हैं सोलोमन्स रिंग मैन मीट्स डोग

ईवोल्युशन एंड मोडिफिकेशन ऑफ विहेवियर और एग्रेशन तथा स्टडीज इन एनिमल एंड ह्यूमन विहेवियर।

लॉरेंज का एक महत्वपूर्ण अनुभव यह है कि अगर आप जानवरों के व्यवहार का अवलोकन अध्ययन करना चाहते हैं तो उन्हें किसी प्रयोगशाला की बजाय नैसर्गिक परिवेश में देखा जाना चाहिए। इस बात को शिक्षा-मनोविज्ञान में ज्यों का त्यों घटित किया जा सकता है बल्कि किया जाना चाहिए। कक्षा के परिवेश में बालक की व्यवहारगत सम्प्राप्तियों अथवा न्यूनताओं को देखने की बजाय जब कोई अध्यापक संदर्भ के धागे को खींचकर बालक के माता पिता और परिजनों से जोड़ देता है तब बालक का शिक्षण तो बाधित होगा ही अध्यापक की दृष्टि भी प्रदूषित हो जाएगी।

लॉरेंज का मंतव्य यह है कि प्रत्येक बालक अपने परिवेश के संस्कारों को ग्रहण करने वाला एक नन्हा मानव प्राणी होता है। संस्कारों की गहरी छाप उसके बाल मन पर अंकित हो जाती है–ऐसी छाप कि जो उसके जीवन भर के व्यवहार पर प्रतिध्वनित होती है। छाप अच्छे संस्कारों की ही नहीं बुरे संस्कारों की भी हो सकती है। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में गृहीत ऐसे संस्कारों को ही लॉरेंज ने इम्प्रिंटिंग नाम दिया है।

मान लीजिए कि प्राणि विज्ञान में एम.एससी. पास कोई प्राध्यापक अपने छात्रों को मेंढकों का ही नहीं साँपों आदि का भी डिसेक्सन करना सिखाये लेकिन वही व्यक्ति अपने घर में किताबों के बीच बैठी छिपकली से भय खाये। एक तरफ उसका अर्जित व्यवहार है दूसरी तरफ जीवन के प्रारंभिक वर्षों में पड़े संस्कारों की छाप।

लॉरेंज ने बत्तखों के बच्चों पर अनेक प्रयोग किये थे और यह सिद्धांत साबित किया था कि बत्तखों के बच्चों के जीवन में एक ऐसा क्षण आता है कि जब उन्हें जो भी सिखा दें वे सीख जाते हैं और उनका वह सीखना स्थायी होता है। लॉरेंज ने देखा था कि बत्तखों के बच्चे किसी भी उद्दीपक का अनुसरण करने लग जाते हैं। जिस तरह वे अपनी माँ के पीछे पीछे चलते हैं उसी तरह लॉरेंज के पीछे पीछे परेड करते हुए चलते थे। जीवन के प्रारंभिक क्षणों का यह संस्कार बत्तखों में इतना स्थायी रूप से अंकित था कि बड़े हो जाने पर भी वे लॉरेंज के पीछे पीछे चलते रहे।

नन्हे बालकों की शिक्षा के लिए यह तथ्य अध्यापकों को तो स्मरण रखना ही चाहिए उनके माता पिताओं को भी अवगत करा देना चाहिए कि अल्प वय में अच्छे संस्कारों को स्थाई रूप से अंकित करने

क लिए उन्हे कितनी अधिक सावधानी रखनी चाहिए और कितनी अधिक तैयारी करनी चाहिए। नन्ह बालकों का जेसा कर्ममय वैविध्यपूर्ण चित्ताकर्षक परिवेश दिया जाएगा वे उतने ही अधिक तेजस्वी बनकर तैयार हागे। अपने स्तर पर लॉरेंज न पक्षिया की अनक प्रजातिया पर परीक्षण करके वह अवधि भी बताई है कि जब उन जातिया म इम्प्रिंटिंग शुरु हाने लगता है।

अनक सम्पन्न परिवारो म बच्चों को जन्म दने वाली माताएँ बच्चा का आयाआ के भरास छोड़ देती हे इससे व सस्कार तो बच्चा म आ ही नहीं सकते जो माता पिता स्वय डाल पाते। इसक बावजूद कुछक बच्च नौकरों आयाआ क सस्कारा स बच जात हे पर एसे बच्चे बहुत कम होते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर न अपनी आत्मकथा 'जीवन स्मृति म लिखा है कि बचपन मे किस तरह उन्ह नौकरा की निगरानी म रखा गया था। श्याम नामक एक नौकर का उन्हाने खास तौर पर जिक्र किया हे जो उनको फर्श पर खड़िया मिट्टी से एक घरा खींचकर उसके अदर पूर दिन भर बिठाय रखता था। उसकी आज्ञा का उल्लघन कर पाना कठिन था। ऐसे विकट भृत्यक-राजतत्र से रवीन्द्र जैसा कोई विरला ही बच ता बचे अधिकाश बच्चे कुसस्कारो से ग्रसित हा जाते हैं।

इम्प्रिंटिंग का सिद्धात हमारे बालको का अच्छे सस्कारा की ओर ले जाता है और गलत सस्कारा से उबारता है। काश हम उस क्षण पर नज़र रख जा बालक क जीवन भर क सुसस्कारा का बीजारापण करने की दृष्टि से अत्यत महत्त्व का ह। माता पिता या अध्यापक की लापरवाही स स्वत उदर जाने वाल बालक ता अपवाद-स्वरूप ही होंगे पर इम्प्रिंटिंग मे आस्था रखकर कुसस्कारो की ओर जाने वाले लाखा बच्चा को ता बचाया ही जा सकता है।

❐

शिक्षण मे सम्प्रेषणीयता

स्कूल से बाहर निकला ही था कि नसरुल्लाह खान ने आवाज़ दी। बोले तुम्हारे वाली बात पर मैं रात को काफी देर तक सोचता रहा। भई मै तो तुमसे इत्तिफाक नहीं करता।'

कौन सी बात? मैंने पूछा।

वही तुम्हारी सम्प्रेषण वाली बात। शिक्षा की इतनी ढेर सारी समस्याएँ है और तुम उनको सिर्फ सम्प्रेषण तक ही महदूद किये दे रहे हो? यह तो सरासर तंग नज़रिया है।'

तो आप क्या फ़रमायेंगे? मैंने पूछ लिया।

कहने लगे सम्प्रेषण नहीं सम्प्रेषक की कम्युनिकेटर की बात कहो। असली जड़ वह है। बल्कि मै तो उसको सम्प्रेषक के बजाय अन्वेषक कहना चाहूँगा। अध्यापक की भूमिका महज़ सम्प्रेषक की ही नहीं है वह अन्वेषक भी है। आज तो वह अपनी कुतुबनुमा ही खो बैठा।'

मैंने कहा खान साहब! क्या बेचारे अध्यापक पर दुनाली तानते हो? हर बार क्या आप उसी को कटघरे म खड़ा करेंगे?

सच पूछे तो उस वक्त मैं बात को बढाने के मूड मे नहीं था। अव्वल तो स्कूल की छुट्टी ही देर से हुई थी ऊपर से सूरज तप रहा था और भूख सता रही थी सो अलग। बहस को टालने के लिए मैंने इतना भर कह दिया देखिये खान साहब! आप सम्प्रेषण से इत्तिफ़ाक नहीं करते तो म आपके 'अन्वेषक' को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ! घर जाकर खाना वाना खाइए और आराम कीजिए। तब ठडे दिमाग से सोचना। कोई नया विचार ज़रूर सामने आएगा। शाम को हम मिलेंगे ही।' यूँ कह कर हम चल दिये।

हमारे स्टाफ मे खान साहब सोचने विचारने वाले जीव थे। बड़े ही अध्ययनशील। क्लास मे लड़को के साथ पूरी मेहनत करते और घर से तैयारी करके आते। पढे हुए पाठो को फिर से पढना उन्हे तैयारी के साथ समझाना और पढ़ाते वक्त ढेर सारे तुलनात्मक सदर्भ देते चलना

सिर्फ उन्हीं की ख़ासियत थी। उनके घर मे उर्दू अदब का माहौल था पर उन्हाने हिन्दी म एम ए किया था वैसे अग्रेजी भाषा और साहित्य म भी उनकी अच्छी गति थी। पूरा कद्दावर शरीर धीर गभीर आवाज़ और वदन मे एक ख़ास तरह की फुर्ती। कई बार दिल की बाते निकलवाने कि लिए उन्हे छेड़ना पड़ता था।

हमारे उस गॉव मे ले देकर हलचल की एक ही जगह थी– पीपल का एक छतनार पेड़ और उसके नीचे पक्का चबूतरा। गॉव भर की बाते वहीं होती थी और बस भी वहीं आकर रुकती थी। रोजाना हम शाम को घूमने के लिए टीलो के तरफ निकलते थे इसलिए वहीं इकटठे होते थे।

हस्बे मामूल खान साहब शाम को उसी पीपल के गट्टे पर मिले। पुरखा पटेल से चरभर की बाजी मँडी थी। गॉव मे वे लगभग हर जात के आदमी बच्चो से रले मिले थे। बाजी ख़तम हुई ओर जूतो की धूल झटकते हुए उठ खड़े हुए और हम लोग रेत के सुनहरे लहराते धोरो की तरफ घूमने चल दिये।

इधर उधर की चद बातो के बाद मैने हमारे बीच चितन के उस छूटे हुए धागे को पकड़ने के ख़याल से बात छेड़ी।

देखिये क़िब्ला[1] कल शाम मै आपसे कह रहा था कि स्कूले चाहे महानगरों-नगरो की हा या गाँवो की अगर आज की पढाई लड़को मे कोई असर पैदा नहीं कर रही है तो इसके अनेक कारण गिनाये जा सकते है। लेकिन किसी भी शख़्स को कटघरे मे खड़े किये बगैर जो समस्या मुझको सबसे ज्यादा जटिल लग रही है यह है सम्प्रेषण की।

पढाई मे कटेट का महत्त्व सब जानते है लेकिन जिस चीज़ की सबसे ज्यादा उपेक्षा हो रही है वह है कटेट को प्रस्तुत करने का लहज़ा। अगर वह नहीं है तो कटेट का क्या करेगे? सच मानिये मुझको तो आज की शैक्षिक प्रभावहीनता मे यही समस्या सघनतम प्रतीत होती है। अभी कल तक हमारे अध्यापको के पास वह कला थी ओर वे उसका बख़ूबी प्रयोग करते थे बल्कि आज भी अपवाद-स्वरूप उस नस्ल के अध्यापक मिल जाऐंगे। ज्यादातर तो यही सच है कि आप वाली वो कुतुबनुमा नहीं रही।

मैने खान साहब के कुतुबनुमा शब्द को दोहराते हुए एक तरह से उनके विचार की ताईद क्या कर दी उनको मज़ा आ गया। विनोदी मुद्रा मे कहने लगे क्यो मान गए न' क्या मार्के की बात कही थी

हमने' सवेरे ही हमारी बात क्या नहीं मान ली थी।

इसी बीच मेने उन्हे आगाह करते हुए कहा कृपा करके आप अध्यापक पर सुबह वाली वह दुनाली फिर से न तान बैठें' कल मैने आपको मार्शल मैक्लुहान का वह अमर सूत्र सुनाया नहीं था?

हॉं हॉं ' मीडियम इज द मैसेज' बहुत गहरी बात कही है। इसी पर सोचत सोचत ही तो मैं कल रात ठेठ अन्वेषक तक जा पहुँचा था '

रेत के टीलो पर हवा के द्वारा बनाई गई चित्रकारी पर अपने क़दमो के निशान छोड़ते हम एक के बाद एक कई टीले पार कर आए थे। खान साहब ने अपनी बात का सिलसिला आगे बढाया।

भई मेरा तो अब भी मन यही कहता है कि शिक्षा प्रणाली मे बुनियादी तब्दीली लाने के लिए अब कोई गिरि कदराओ से तो निकल कर ऋषि फकीर या तत्त्व-दृष्टा आने से रहे। यह काम तो अध्यापक को ही करना होगा। उसी पर उम्मीद टिकी है। मेरे लिए तो वही दृष्टा है वही अन्वेषक है वही मीडियम है वही मैसेज है। अगर उसके भीतर का कम्युनिकेटर जिंदा है तो तालीम का वांछित असर पड़ेगा ही पड़ेगा। क्या तुम इससे परे भी किसी 'मैसेज की बात सोच सकते हो? खान साहब ने जैसे गद मेरी तरफ लुढ़का दी।

वाह वाह' मने कहा आपके साथ दिक़्क़त यही है खान साहब कि जब सोचने की बात कहो तो लफ्जो की पच्चीकारी पर उतर आते हो। कभी तो अपने मीर अनीस रसखान धनानद को सिर से उतार कर आया कीजिए'

खान साहब पीछे रह गए थे। जूतो मे धँसी धूल को निकालने की कोशिश म व वही बैठ गए थे। मैने पलट कर देखा दूर उन धोरा की ओट मे सूरज अपनी सुनहली किरणो का जाल समेट रहा था। इधर रेत भी ठडी होने लगी थी।

क्षण भर में भी सुस्ताने क लिए खान साहब के पास बैठ गया।

क्या आपको ऐसा नहीं लगता खान साहब कि मैक्लुहान उस सूत्र के द्वारा हमे कुछ सोचने की ताक़ीद कर रहा है? मेरे ख्याल से वह इगित करना चाहता है कि अध्यापका क एटीट्यूडस उनकी सम्प्रेषणीयता को प्रभावित करते हे' मेने कहा।

वे मेरे चेहरे की तरफ देखने लगे। जैसे उन्हे सोच का कोई नया आयाम मिल गया हो। कहने लगे ओफ्फो' इस तरफ तो मेरा

ध्यान ही नहीं गया था वी सी! कहते हुए एकाएक वे जूता की धूल साफ करके उठ खड़े हुए।

उनकी इसी विशेषता का कायल था मैं। उम्र में दस साल बड़े थे, पर उतने ही विनीत गुणग्राही और आत्मीय। बड़े भैया के साथी होने के कारण वे कभी कभार मुझे घर वाले नाम से पुकार लेते थे–वी सी।

बोले 'एटिट्यूड्स की बात से ख्याल आया कि हमारे बहुत सारे अध्यापक खास तौर पर ट्रेंड अध्यापक एक विशेष मनोग्रंथि के शिकार रहते हैं। कक्षा में पढ़ाने जाने से पहले उनकी डायरी में दर्ज शिक्षण उद्देश्य कुछ और होते हैं लेकिन पढ़ाते पढ़ाते न जाने वे किन उद्देश्यों की तरफ बह जाते हैं। अब महसूस करता हूँ कि शायद अपने एटिट्यूड्स को न समझ पाने अथवा उन पर अपनी पकड़ खो देने की वजह से ही ऐसा होता होगा।'

मैंने देखा खान साहब का ध्यान कहीं गहरे पानी पैठा हुआ था। जैसे किसी बात को वे समग्रता में पकड़ने का प्रयास कर रहे हों। मैं उनको वहाँ से लौटा लाना नहीं चाहता था। वे अपनी उसी भाव भूमि पर रहें इस ख्याल से मैंने प्रशंसा के लहजे में कहा

'मान गए गुरु! बात ही बात में आपने तो एक महत्वपूर्ण तत्व का अनावरण कर डाला। याने हम अध्यापकों का असली पाठ्यक्रम तो धरा का धरा रह जाता है और बेहोशी में हम लोग एक प्रच्छन्न पाठ्यक्रम को पूरा कराने में लग जाते हैं। क्यों? जरा इस विचार को और साफ कीजिए न!'

खान साहब बोले भई हमारे एटिट्यूड्स का तो हम भी साफ-साफ पता कहाँ होता है? बहुत लम्बे समय के बाद धीरे धीरे तो ये बनते हैं। और फिर प्रायः उनको लेकर यह बता पाना भी कठिन होता है कि वे क्या हैं और कैसे हमारे व्यवहार को निर्देशित अथवा प्रभावित करते हैं। यही वजह है कि हमारे उद्देश्यों में और व्यवहार में फर्क पड़ जाता है। मैक्लुहान के उस सूत्र के अनुसार एक अध्यापक के लिए अपने मनोभावों (एटिट्यूड्स) को पहचानना उन्हें पकड़ना और पकड़ कर सही इस्तेमाल करना मुझे बहुत ज़रूरी लग रहा है। पहले मैंने तुम्हारी सम्प्रेषण की बात को समझा नहीं था लेकिन अब लगता है कि सारी की सारी परेशानी ही सम्प्रेषण के मसले को लेकर है।'

अँधेरा बढ़ने लगा था पर खान साहब के भीतर तो एक दीया जल रहा था।

बोले 'मैक्लुहान के अनुसार अगर 'मीडियम' सही है तो 'मैसेज' याने वांछित ज्ञान अपने गृहीता तक पहुँचेगा ही। और मीडियम की तलाश अध्यापक को करनी ही पड़ेगी। अगर वह महसूस करता है कि उसके शिक्षण मे अस्पष्टता न रहे विद्यार्थियो के सही उत्तर ही सामने आयें वे सही बाते सही परिप्रेक्ष्य मे समझे तो अध्यापक को क्लास का सम्पूर्ण वातावरण भी अपने जेहन मे लाना होगा। उसके एटिट्यूडस का असर क्लास की बैठक व्यवस्था पर शिक्षण उपकरणो की प्रस्तुति पर तथा जीवत वाद विवाद एव परिचर्चा पर भी पड़ता है। शब्दो से कहीं अधिक प्रभाव हमारी अपनी क्रिया का पड़ता है।'

क्या खूब बात कही आपने खान साहब' शब्दो से कहीं अधिक प्रभाव हमारी अपनी क्रिया का पड़ता है। मैने बीच म बोलकर खान साहब की अजस्र वाणी को विश्राम तो दिया ही उनके मुँह से अनायास व्यक्त हुए उस सूत्र को अपने स्मृति-कोश मे दर्ज भी किया।

अब तक हम पीपल के गट्टे के पास आ गए थे। प्याऊ वाला जा चुका था। दो एक मवेशी ज़रूर खड़े थे। बोले आओ जरा चबूतरे पर बैठते है थोड़ी देर। थक गए चलते चलते।'

मै जानता था कि यह सुस्ताना थकान की वजह से नहीं है। भीतर कुछ कुलबुला रहा था जिसे वे बाहर लाना चाहते थे। चबूतरे पर बैठते ही शुरू हो गए। बोले वी सी। जरा इस मुद्दे को उल्टे सिरे से भी तो सोचो। पढाने का एक गलत मीडियम आज हमारी पढाई को और लड़को की बुद्धि को किस क़दर गदला रहा है यह बात किसी से छिपी नहीं। और हम है कि चिता कर रहे है 'मैसेज' को सम्प्रेषित करने की' कितनी मामूली सी बात को हम नज़रअदाज किये दे रहे हैं कि असली 'मैसेज' तो पढाने वाले व्यक्ति की 'टोन' मे उसकी ध्वनि के उतार चढाव मे उसकी मुख मुद्रा हाव भावो और उसके व्यवहार मे निहित रहता है। बिना बोले भी तो हम लोग अपने को एटिट्यूडस के द्वारा निरतर सम्प्रेषित करते रहते है। मै नहीं जानता कि इन अशब्द या नि शब्द एटिट्यूडस तथा श्रव्य-दृश्य सस्थितियो को भी तुम सम्प्रेषण मे शामिल करोगे अथवा नहीं।'

क्यो नहीं ज़रूर' मैने कहा 'बगैर इनके तो सम्प्रेषण होगा भी कैसे' वस्तुत हमारे मनोभाव जितने साधक हैं उतने ही बाधक भी है। बल्कि मै तो एक और बात पर आपका ध्यान खींचना चाहता था। पर लगता है रात काफी हो रही है और घरो पर हमारा इतजार भी

हो रहा होगा। आइए चलते चलते मैं आपको उसका जिक्र कर दूँगा। और हम लौट चले।

अँधेरा गहरा था। पर आकाश मे तारो की महफिल भी उतनी ही सगीन थी। गॉव की जानी पहचानी धूल उड़ाती गलियॉ और बगल से गुज़रते हुए मवेशिया-औरता मर्दो के कुछ धुँधले कुछ पहचाने चेहरे'

मे बोला 'देखिये खान साहब' शिक्षण-कर्म को जिस तरह से लिया जा रहा है उसे देखकर हैरानी होती है कि क्या 'ज्ञान इतनी सीमित चीज़ है कि जिसे एक 'लिस्ट मे समेटा जा सके? शिक्षण का अर्थ क्या हमेशा यही है कि छात्रो के सही उत्तर निकलवाने पर ही बल दिया जाए अथवा क्या शिक्षण प्रक्रिया भी हमारे लिए कोई मायने रखती है? उस स्थिति मे तो छात्रो के गलत उत्तर भी हमारे लिए विचारणीय बिन्दु है' शिक्षण का अर्थ क्या विद्यार्थी को 'ट्रेनिंग देना है जो बोलने बताने भाषण झाड़ने का ही पक्ष पकड़े बैठे है हम लोग'

आप भले ही इत्तिफाक़ न करे खान साहब पर यह हमारी एक बहुत बड़ी मनोवृत्ति बन चली है कि ज्ञान सत्य का पर्याय होता है कि हर सवाल का एक ही सही जवाब होता है कि सत्य का ज्ञाता सिर्फ अध्यापक होता है। बच्चे तो बच्चे उनके माता पिता और अध्यापक समुदाय को ऐसी बद्धमूल धारणा से ग्रस्त देखकर बहुत पीड़ा होती है। स्विस शिक्षाविद ज्यॉ पियाज़े ने अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययन से बताया था कि छोटे बच्चे लिटरल माइंडेड होते है। वह तो ठीक है पर अध्यापक इस भ्राति मे कब तक पड़े रहेगे? जितने दिनो तक यह भ्राति चलती रहेगी मुझे भय है खान साहब कि टीचर सटर्ड एज्युकशन का 'मिथ कभी टूट भी सकेगा' क्यो आपका क्या ख्याल है? मैने उनकी राय जाननी ज़रूरी समझी ।

काली-काली बाड़ो की टेढ़ी मेढ़ी गलियॉं पार करते हुए अब हम उस मोड़ पर आ पहुँचे थे जहॉ से हमे अलग अलग जाना था। करमा भाबी के बाड़े के पास हम खड़े हो गए।

खान साहब कहने लगे बी सी' बहुत वर्ष पहले एक पुस्तक मर पढ़ने मे आई थी हाउ चिल्ड्रन फेल । उसके लेखक ने भी ऐसे ही एक खतरे की तरफ आगाह किया था। आगाह नहीं बल्कि छात्रो की असफलता के लिए अध्यापक को ब्लेम किया था। अध्यापक-केन्द्रित शिक्षण के छद्म को सामने लाते हुए उस लेखक ने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान खींचा था जिसे अक्सर मामूली बात समझ कर छोड़ दिया जाता है। वह यह है कि सीखने का काम सिर्फ विद्यार्थी का है।

अध्यापक को उससे क्या? वह तो सीखा सिखाया है।'

मेरा ध्यान खान साहब के चेहरे पर था। तभी उनके पीछे वाली गली से एक परिचित आकृति आती दिखी। खान साहब अपनी ही बात कहे जा रहे थे उस लेखक की बहुत सी बातों से मैं भी इत्तिफाक नहीं करता। अतिशयोक्ति-सी लगती है। पर ज्ञान को लेकर अध्यापकों के दकियानूसी नज़रिये का जो मुद्दा तुमने उठाया था वी.सी. उसका उस लेखक ने बहुत अच्छा विश्लेषण किया है।'

आकृति हमारे करीब आ चुकी थी। वे हेडमास्टरजी थे। आकर हमारे पास रुके। बोले किसकी चर्चा कर रहे थे खान साहब! लगता था हमारे शब्द उनके कानों में पड़ चुके थे।

खान साहब ने जॉन हॉल्ट का ओर हाऊ चिल्ड्रन फेल पुस्तक का नाम बताया। सुनकर व कहने लगे 'इसी लेखक की हाऊ चिल्ड्रन लर्न पुस्तक भी पढ़ने जैसी है। आपने न पढ़ी हो तो मुझसे ले लेना। पेंग्विन एज्युकेशनल सीरीज ने एक समय शिक्षा से सम्बन्धित बहुत अच्छी पुस्तकें निकाली थी। तब की दस बारह पुस्तकें मेरे पास हैं। ए.एस. नील ईवान ईलिच पावलो फेरे पॉल गुडमेन चार्ल्स सिल्वरमन ज्यां पियाज़े एरिक फ्रॉम वेगार्टनर आदि कुछ लेखकों ने शिक्षण की बुनियादी समस्याएँ उठाई हैं खान साहब! आप आइए घर और न पढ़ी हों तो ले जाइए जो पसन्द हो।'

ज़रूर श्रीमान! आपने तो अच्छा-खासा खजाना इकट्ठा कर रखा है। क्या आपके पास हिन्दोस्तानी शिक्षाविदों की भी पुस्तकें हैं? खान साहब ने अपनी सहज जिज्ञासा व्यक्त की।

उसकी तो मुझको भी तलाश है मि. खान! एज्युकेशनल राइटिंग का अभी हमारे यहाँ डेवलप करने पर किसी का ध्यान नहीं है। अकादमियों के लिए इसका कोई मतलब ही नहीं है। उनका क्षेत्र तो कविता कहानी उपन्यास नाटक निबन्ध आलोचना तक ही सीमित है। और कोई एजेन्सी है कहाँ जो शैक्षिक लेखन को बढ़ावा दे? बड़ा ही पीड़ादायी एरिया है यह! विदेशों से जो यहाँ आ जाएँ बस उसी से माथा मारते रहो। खैर इस पर कभी और बातचीत करेंगे। अभी तो चलता हूँ, घूम आऊँ ज़रा पीपल के गट्टे तक। राजाओं की आदत जो ठहरी।' यों कहते हुए हेडमास्टरजी चल दिये। वे उधर गए और हम अपने अपने घर।

❒

अनुशासन शिक्षण का परिणाम

अनेक विद्यालयो मे अध्यापको के सामन विद्यार्थियो के अनुशासन की एक शाश्वत समस्या रहती है-- खास तोर स जहॉ कक्षाएँ छात्रो से भरी रहती हा आर जहॉ अध्यापक नियमित रूप से पढाते हो।

अनुशासन को लेकर हमारे मन मे एक सामान्य मान्यता यह रही है कि जब विद्यार्थी खामोश रहते हे तभी अच्छी तरह से पढाई होती हे या हो सकती है। हमे अपने वचपन की पढाई के दिन अभी याद होगे। मास्टरजी की वार वार दुहराई जाने वाली झिड़कियॉ भी याद हागी जव व उकता कर कह उठते थे छोकरो शोर नहीं। काना से सुनो और ऑखा से इधर देखो। वकवक बन्द करो। इस तरह से वार वार दोहराने के पीछे मास्टरजी के अन्तर्मन की यही धारणा सामने आती है कि अगर बालक वातचीत करेगे शोर मचायेगे या हिलेगे डुलेगे तो वे कुछ नहीं सीख सकेग।

तो क्या जव कक्षा के सव वच्चे खामोश वैठे होते हे और तन्मयतापूर्वक मास्टरजी की वात सुनते है तव पढाई होती हे? कहीं व वाल मुद्राएँ हमे धोखा तो नहीं देतीं? यह एक विचारणीय प्रश्न हे जिसे सहज ही टाला नहीं जा सकता।

लगता है कि अनुशास‍ा की समस्या इसी मान्यता से पेदा होती है कि जब कक्षा का वातावरण शात होता हे तभी पढाई होती है। इसका आशय यह हुआ कि अगर कक्षा के शात वातावरण का कहीं कोई भग करेगा ता उसको वर्दाश्त नहीं किया जाएगा। ओर एक तरह से अध्यापको का यह नेतिक दायित्व वन जाता है कि वे अपनी कक्षा क छात्रो को शात रखे क्योकि ऐसा करने पर ही छात्रो के नेतिक चरित्र का भली भॉति विकास सम्भव है। इस प्रकार शाति बनाये रखना और आज्ञा मनवाना अध्यापको का एक प्रमुख शेक्षिक उद्देश्य वन गया हे। मानो अध्यापक इसके लिए विवश हैं कि यदि वे इस ओर ध्यान नहीं दगे तो उनकी

अध्यापकीय गरिमा आहत हो जाएगी !

मुझे यह सोच असगत प्रतीत होती है कि कक्षा म विद्यार्थियो को आज्ञा देकर तथा उनसे अपनी आज्ञा का पालन करवा कर कालातर मे उन्हे स्व निर्देशित स्व नियत्रित स्वतन्त्र प्रौढ बनाया जा सकता है। एक अजीब विरोधाभास नज़र आता है मुझे कि बच्चा पर नियन्त्रण और निर्भरता आयत करके उन्हे स्व नियन्त्रित स्वतन्त्र और जिम्मेदार बनना कैसे सिखाया जा सकना है। याने जब वे बालक हैं तब उनसे एक खास तरह के व्यवहार की मॉग करना और जब वे प्रौढ बन जाएँ तब उनसे सर्वथा विपरीत व्यवहार की अपेक्षा करना कोई सगत तर्क नही लगता।

शिक्षाविदो ने बार बार हमे आगाह किया है कि बालको के विकास काल मे अगर परावलम्बन एव आज्ञापालन के लिए उनको बाध्य किया जाता है तो फिर शिक्षा के द्वारा उनमे स्वतन्त्रता और स्वाधीन चेतना विकसित नहीं की जा सकती। जाहिर है प्रशिक्षण के दोरान सीखी सैद्धान्तिक बाता को हम कक्षा मे लागू करना नहीं चाहते। लेकिन क्यो? इस सवाल पर हमे गौर करने की आवश्यकता है।

प्रख्यात रूसी शिक्षाविद ए एस माकारेंको ने अपने एक भाषण मे कहा था कि कुछ शिक्षक और शिक्षाशास्त्रीय चितक शिक्षा के एक साधन के रूप मे अनुशासन को समझने के आदी है। मेरा विचार यह है कि अनुशासन शिक्षा का साधन नहीं बल्कि शिक्षा का नतीजा है । वे अनुशासन को सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया का परिणाम मानते हैं। इधर हम हैं कि इसे एक बाहरी चीज़ मान बैठे हे याने बच्चे अनुशासित रहेगे तो शैक्षिक प्रक्रिया पनपेगी पढाई होगी नहीं ता नहीं होगी।

प्रसिद्ध अमेरिकी शिक्षाविद जॉन डीवी ने कहा था कि सिखाना और सीखना एक परस्पर निर्भर क्रिया है तथा विद्यार्थी की भाँति अध्यापक भी शैक्षिक परिवेश का उतना ही महत्वपूर्ण हिस्सा है। जॉन डीवी ने अपने देश म विद्यार्थी के तथा सीखने के मध्य पैदा किये गए कृत्रिम विभाजन के विरुद्ध सतत सघर्ष किया था इसीलिए उन्हाने शिक्षका प्रबन्धको से कहा था कि कक्षा का कमरा इतना जीवत और प्रकृत होना चाहिए कि उसमे रहना और सीखना साथ-साथ चले।

इन विचारो के ठीक विपरीत हमारे यहाँ के अधिकाश विद्यालया मे चिता शिक्षण की नहीं समायोजन और शिक्षक शिक्षार्थी के अन्तर सम्बन्धो की है। कुछ सुलझे हुए विद्यालया ओर शिक्षको को छोड दे तो अधिकाश अपनी कक्षाओ मे छात्रो पर नियन्त्रण और आज्ञापालन को

प्रमुखता देते हैं। अध्यापकों की नियन्त्रण परक आज्ञाओं के परिणामस्वरूप व्यक्त होने वाले छात्र व्यवहारों में एक सीधा सम्बन्ध देखा जा सकता है।

विद्यालयों में नियन्त्रण की भावना को लेकर शिक्षकों के अनेक मॉडल देखने को मिल जाएंगे। लगता है कि उन 'टाइप' बने शिक्षकों के वैसे गुणावगुणों के रहते अनुशासन एक समस्या ही रहेगा।

बाँकेलालजी मास्टरजी कानून और व्यवस्था के कट्टर हिमायती हैं। उनका उसूल है कि कक्षा में छात्र तन कर बैठें न कोई किसी की तरफ देखे न कानाफूसी करे न हरकत करे। जरा-सा उल्लंघन होते ही वे नियन्त्रण की तमाम शक्तियाँ एक साथ लागू कर बैठते हैं। वे पश्चिमी नाटकों के मार्शल की तरह बदहवासी से कक्षा में चक्कर काटने लगते हैं और आज्ञा भंग करने वाले छात्र की ऐसी गत बनाते हैं कि जो अन्य बालकों के लिए एक सबक होती है। ज़ाहिर है ऐसे में शिक्षण के अलावा और सब कुछ हो सकता है। चीं चपड़ करने वाले विद्यार्थी को वे धमकियाँ देते हैं और अनुशासन का सख्ती से पालन करते हैं। पर रोजाना किसी न किसी बात पर किसी न किसी बालक से उनकी ठनती अवश्य है। हारना तो बालक को ही पड़ता है पर वह किसी अन्य मौक़े की तलाश में रहता है कि कब उनका विरोध करे बदला ले ले। ऐसे दृश्यों का कक्षा में अक्सर पुनरावर्तन होता है। न बाँकेलालजी आदमी की तरह व्यवहार करते हैं न विद्यार्थी। और नतीज़ा वही होता है जो हम जानते हैं।

इनके ठीक विपरीत हैं मुसद्दीलालजी। कक्षा में लड़कों का व्यवहार चाहे जैसा हो वे उस पर कत्तई गौर नहीं करते। अगर लड़के कक्षा में पढ़ाई के दौरान अपनी सीटों से उठकर इधर उधर आना-जाना करते हैं या बाहर चले जाते हैं या आपस में बातें करते हैं तो मुसद्दीलालजी के चेहरे पर कतई कोई भाव नहीं आता। न वे अपने पढ़ाने के काम को रोकते हैं न छात्रों को टोकते हैं। उन्होंने छात्रों को काम दिया है और लड़के नहीं लाए या सबक याद करके नहीं आए तो उन पर कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। यानी जिन जिन मुद्दों को लेकर छात्रों की खिंचाई की जा सकती है उनके प्रति वे नितान्त तटस्थ रहते हैं। मुसद्दीलालजी की मान्यता है कि अगर बालकों को चरित्रवान बनाना है तो उनकी दुर्व्यवहारपूर्ण हरक़तों की उपेक्षा करनी चाहिए न कि उन पर सख्ती की जाए।

हमें लगेगा कि मुसद्दीलालजी सहिष्णुता और धैर्य की प्रतिमूर्ति हैं। उनके विचार उग्र हैं। पर वस्तुत यह शुतुर्मुर्गी नीति है। ऐसा करके

व शिक्षक और शिक्षार्थी की पारस्परिक अन्तर्क्रिया की भी उपेक्षा कर बैठते है जो शिक्षण का प्राण है। मुसद्दीलाल जी का अपने शिक्षण दायित्व से क्रमश पीछे हटते जाना और तटस्थ बनते जाना अनुशासन की समस्या का जनक है। इससे बालको को प्रतिक्रिया करने का मौका मिलता है उनकी ढिठाई बढने लगती है। अगर बाकेलालजी की कानून और व्यवस्था सबधी बकिम दृष्टि गैरजरूरी है तो मुसद्दीलालजी की शुतुर्मुर्गी नीति भी अनुशासनहीनता को बढावा देने वाली है। इस तरह के निरपेक्ष शिक्षको का बालको की हरकत बढ जाने पर या तो ज्वालामुखी की तरह फटना पड़ता है या फिर कक्षा छोड़कर भाग जाना पड़ता है।

प्रवीणरायजी अलग माटी के बने है वे लड़को को हमेशा काम म व्यस्त रखते है। नानी से उन्होने बचपन मे भूतो की बहुत सारी कहानियाँ सुन रखी है और वे जानते है कि भूतो को कैसे वश म रखा जाए। उनके दिमाग मे आगे से आगे लड़को के लिए अनेक काम भरे है। हॉ अब श्रुतिलेख लिखो 'चलो चार चार के दल बनाओ और अन्त्याक्षरी करो फटाफट शाति स य मीनिग याद करो जो मुझे पॉच मिनट म आकर सुना देगा वह फर्स्ट समझा जाएगा इस तरह की बीसो विधियाँ इस्तेमाल करके प्रवीणरायजी छात्रो को व्यस्त रखते है। वे कम से कम निर्देश देते है और बालको को आपस मे बातचीत करने का मौका नहीं देते। लड़के उकता जाते हैं। एक प्रवृत्ति के बाद वे क्षण भर का विराम चाहते है पर मास्टरजी है कि नन्हे शैतानो को पल भर का मौका नहीं देना चाहते। धीमे धीमे लड़के मास्टरजी की आदत को समझ जाते है और काम को टरकाने के लिए शॉर्टकट निकाल लेते है।

छात्रो को वैविध्यपूर्ण प्रवृत्तियाँ देना और व्यस्त रखना तो शिक्षण का एक महत्वपूर्ण सूत्र है। अध्यापकगण इतनी भी तकलीफ कहाँ करते है। इस नाते प्रवीणरायजी प्रशसा के पात्र है। अगर वे बालको की मनो शारीरिक चेष्टाओ का ध्यान मे रखे और छात्रो को उनकी रुचि एव इच्छा के अनुसार साथ लिए चल तो वह एक श्रेष्ठ शिक्षण होगा। प्रवीणरायजी अपने भीतर अनुशासन के मिथ्या भय को पाले जिस यात्रिक गति से व्यवहार करते है वहीं से अनुशासनहीनता पैदा होती है।

कदमसिहजी की क्लास म अनुशासन का मुकम्मल इतजाम देखेगे आप। साठ सत्तर लड़को की क्लास को उन्होने चार मानीटरो के भरोसे सभाल रखा है। एक होशियार लड़का उन्हे शैक्षिक कामो म मदद देता है दूसरा कम होशियार पर ठीक-ठाक-सा समर्पित लड़का छात्रो का कक्षा कार्य इकट्ठा करता है तीसरा जरा बलवान-सा रोबीला लड़का क्लास

मे चक्कर लगाकर आपसी बातचीत पर पाबदी लगाता है और एक छात्र भीमसन बना द्वारपाल का फर्ज निभाता है। इतने सारे कदम उठाने के बाद ही कदमसिहजी क्लास को काबू मे रख पाते है। उनके लिए पूरी क्लास जैसे एक प्राण एक देह है। इसलिए उनके निर्देश समूह के लिए होते है। अगर एक लड़का काम करके नहीं लाता तो वे पूरी क्लास को सज़ा देते हैं एक लड़का खुस पुस करता है तो वे पूरी क्लास को कुर्सी पर खड़ा कर देते है एक लड़का बदमाशी करता है तो पूरी क्लास की कज़ा आ जाती है। उनके फरमान गौर करने लायक है

'तो फिर ठीक है जब तक एक भी लड़का काम करके नहीं देगा किसी को रिसस की छुट्टी नहीं मिलेगी मेरी टेबिल से जिसने चॉक उठाई है जब तक वह लड़का मेरे सामने नहीं आता चलो पूरी क्लास दोनो हाथ ऊपर उठा ले आज किसी को भी खेल मे जाने की इजाज़त नहीं है जब तक कि आदि आदि।

कदमसिहजी की यह ग्रुप प्रेशर पद्धति' कक्षा मे आरोपित अनुशासन अवश्य पैदा कर देती है पर क्या ऐसे माहौल म सार्थक शिक्षण हो सकता है?

सज्जनमलजी को भी मैने कक्षा मे काम करते देखा है। वे विद्यार्थियो के साथ एक खास तरह का रिश्ता बना लेते है। बच्चे चाहे जितना बोल उन्हे कोई एतराज़ नहीं। वे इसे बालक की सहजता मानेगे। सहजता शिक्षण की पूर्ण शर्त है। इससे बालक म अभिमुखता आती है। सज्जनमलजी अपने छात्रो को उनकी पसद के अनेक काम देते है और पढाने की अनेक विधियाँ अपनाते है। विद्यार्थी उनकी क्लास मे इतने व्यस्त हो जाते हैं कि अनुशासनहीनता जैसी कोई समस्या पैदा नहीं होती।

एक बार बातचीत के दौरान सज्जनमलजी ने 'बाल हृदय की गहराइयाँ के लेखक वसीली सुखोम्लीन्स्की के विचारो को अपना जीवन दीप मानते हुए कहा था कि अध्यापक और छात्रो के बीच अगर हृदय का रिश्ता नहीं जुड़ता स्थायी आत्मिक सम्पर्क नहीं बनता अगर वे एक-दूसरे के विचारो और भावनाओ की दुनिया मे नहीं पैठ सकते एक दूसरे के मन म होने वाली हलचल को अनुभव नहीं कर सकते तो इसके बिना वह भावनात्मकता आ ही नहीं सकती जो शिक्षक के उच्च आत्मिक स्तर का अभिन्न अग है। शिक्षक के लिए अपनी भावनाओ को साधने का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है— ऐसे मैत्रीपूर्ण बाल-समुदाय मे बहुमुखी भावनात्मक सबध जहाँ वह केवल छात्रो का अध्यापक ही नहीं बल्कि

उनका मित्र और साथी भी हो। अगर शिक्षक छात्रा से केवल पाठ के समय मिलता है और केवल कक्षा मे ही बच्चे अपने पर शिक्षक का प्रभाव महसूस करते है तो ऐसी परिस्थिति मे भावनात्मक सबध अकल्पनीय है।

सज्जनमलजी विद्यार्थियो के बीच इस क़दर रम जाते है कि उनके प्रत्यक आचरण प्रत्यक प्रवृत्ति प्रत्यक शब्द आर प्रत्यक इगित स बालका को शिक्षण मिलता रहता है। माहौल एकदम अनौपचारिक ओर ग्राह्य बन जाता है। उनके बालको को छुट्टी म भी उनके बिना चैन नहीं मिलता। कोई न कोई प्रवृत्ति चलती ही रहती है।

आज क भीड़ भर महानगरीय विद्यालया म भल ही सज्जनमलजी अग्राह्य ठहरे क्योकि न छात्रा को फुर्सत होती न शिक्षको को पर शिक्षण को प्रभावशाली व स्थायी बनाने के लिए तथा अनुशासनहीनता की समस्या से बचने के लिए उनके गुर अनुकरण योग्य जरुर हैं।



जैसी टहनी वैसा वृक्ष

शिक्षको से निरतर यह अपेक्षा की जाती रही है कि वे बालक को केन्द्र म रखे उसे जाने उसकी रुचिया और क्षमताआ को समझे उसकी गतिविधियो का सतत अवलोकन करे और उसके मन की भीतरी पर्तों मे विद्यमान सूक्ष्मताओ का पता लगाएँ। प्रशिक्षणालयो मे उन्ह मनाविज्ञान पढाया जाता है ताकि बालक को समझने मे उन्हे परेशानी पैदा न हो पर कहना न होगा कि कुछ अपवादो को छोड़कर ज्यादातर शिक्षक बालक को समझने पर ध्यान नहीं दते एक तरह की तटस्थता और दूरी बरतते है यही कारण है कि बालको के दिलो मे शिक्षको के प्रति वाछित आदर भाव समाप्त होने लगा है।

बालक को जानने का अर्थ है आयुवर्गानुसार उसके वैयक्तिक विकास की विशेषताओ अथवा न्यूनताओ से परिचित होना उसकी रुचियो-रुझानो को जानना उसकी सलग्नता और ग्राह्यता को परखना। प्रकृति ने बालक को शारीरिक मानसिक एव बौद्धिक विकास की स्व सचालित अदभुत क्षमता दी है। वह अपना विकास आप करता है स्वय वस्तुओ को पहचानता है भापा सीखता है और सवाद सभाषण करने लगता है। अगर प्रकृति ने यह काम अपने हाथ म न रखकर शिक्षको को सोपा होता तो उनके भरोसे वही हाता जो आज हो रहा है। कुल मिलाकर यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि स्वाध्याय ज्ञानार्जन अनुराग रचनात्मक जुड़ाव के अभाव मे अधिकाश विद्यालय अपनी सामाजिक प्रासगिकता खोते जा रहे है।

देश विदेश के महान मनोवैज्ञानिको ने शिक्षका को कितनी अनमोल सम्पदा दी है। जॉन ब्रोडस वाटसन विलियम जेम्स पावलोव फ्रॉयड स्कीनर गाल्टन कोनराड लारेज थोर्नडाइक पियाज़े आदि विभूतियो ने बालक को समझने की जो जादुई क्षमता दी है उससे शिक्षक 'खुल जा सिम सिम' की तरह आत्मविश्वास के साथ बालको के रहस्यमय मनोलोक में प्रविष्ट हो सकते हैं और तदनुसार अपनी प्रभावी एव रोचक

शिक्षण स्थितियॉ सॅजो सकते है। शिक्षको को उन लोगो का ऋणी होना चाहिए जिन्होने अपनी रुचि के अनेकानेक क्षत्रो को तिलाजलि देकर मनोविज्ञान की खाक छानने म ज़िदगी खपा दी। आज उनक गहन अनुसधान दश-देशातरो की सीमाओ से बाहर निकल कर सम्पूर्ण मानवता के लिए अपनी महक फैला रहे है।

क्या आपने उस चित्रकार का नाम सुना है जो अपनी पढाई पूरी करके यूरोप की यात्रा पर निकल पड़ा था और उसी दौरान जिसने चित्रकारी का पेशा अपना लिया था। बड़ा विख्यात नाम है। चित्रकारी से उस यूरोप म जगह-जगह खुलकर घूमने का मौका मिला और बेशक उसने कुछ पाया भी। प्रतिभाशाली तो वह था ही शीघ्र ही उसने होनहार युवा आर्टिस्ट की ख्याति अर्जित कर ली। खास तौर से वह छोटे बच्चो के पोर्ट्रेट बनाता था। उसकी ज़िदगी म बदलाव तब आया जब वह ऑस्ट्रिया मे था और उस एक मकान म एक बच्चे का पोर्ट्रेट बनाने के लिए बुलाया गया। मकान मे प्रवेश करने पर बालक के पिता सिगमड फ्रॉयड से उसका परिचय हुआ। अनौपचारिक सभाषण स क्रमश पुष्ट होने वाला वह परिचय इतना प्रगाढ हो गया कि पोर्ट्रेट बना लेने के कुछ सप्ताह बाद उस चित्रकार को सिगमड फ्रॉयड के द्वारा भेजा गया निमत्रण मिला। लिखा था कि अध्ययन के लिए वियेना स्थित उसके मनोविश्लेषण सस्थान पहुँचो। निमत्रण क्या था चित्रकार के लिए फैसले की एक महत्त्वपूर्ण घड़ी थी कि क्या वह पर्यटन और पेंटिंग छोड़ दे? मनोविज्ञान का सौभाग्य था कि बाल मन और बाल चेष्टाओ का गहन अध्ययन करने के लिए वह चित्रकार सिगमड फ्रॉयड के प्रभाव क्षेत्र म आया और आग चलकर उसने बालक के वैयक्तिक विकास के क्षेत्र मे आधारभूत काम किया। पोर्ट्रेट बनाने वाले चित्रकार का नाम गुमनामी के अँधेरे मे खो गया है और विख्यात मनोविश्लेषक के रूप मे प्रो एरिक एरिक्सन का नाम मशहूर हो गया है। 12 मई 94 को 91 वर्ष की उम्र म इस महान मनोविश्लेषक ने ससार स चिर विदा ली।

शिक्षको के लिए प्रो एरिक्सन के विचारो का अनुशीलन करना बहुत ज़रूरी है उससे उन्हे बालक का समझन की आधारभूत दृष्टि मिलेगी।

वियेना सस्थान से अपना प्रशिक्षण पूरा कर लेने के बाद एरिक्सन अमेरिका जाकर बस गए। सन 36 से 39 के मध्य उन्होने येल मे मनश्चिकित्सा म अनुसधान सहायक और हार्वर्ड मे टी ए टी (थीमेटिक अपरसेप्शन टेस्ट) वाले हेनरी मरे के साथ काम किया। सन 1939 से 51 के मध्य वे केलिफोर्निया विश्वविद्यालय म प्रोफेसर रहे। वहाँ से पीटसबर्ग

के ऑस्टिन रिग्ज क्लीनिक मे चले गए। प्रत्येक परिवर्तन के साथ उनकी प्रसिद्धि दिनोंदिन बढती गई।

सन 1950 मे वाइट हाउस मे बालक पर केन्द्रित एक कान्फ्रेस हुई थी जिसम प्रो एरिक्सन द्वारा प्रस्तुत फ्रेमवर्क को शब्दश स्वीकार लिया गया। उस कान्फ्रेस की रिपोर्ट अमेरिका मे बालको एव किशोरो के वैयक्तिक विकास का एक राष्ट्रीय घोषणापत्र मानी जाती है। एक तरह से वह रिपोर्ट प्रो एरिक्सन के विचारो की ही शाब्दिक पुनर्प्रस्तुति है। सन 1960 मे उन्हे मानव विकास के क्षेत्र म राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर लेने पर हार्वर्ड मे प्रोफेसर बनाया गया। इस प्रकार चित्रकार एरिक्सन का जा कैरियर उस दिन फ्रॉयड के घर मे अनौपचारिक रुप म शुरू हुआ था वह क्रमश अपूर्व श्रेष्ठता क साथ इस रुप मे अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुँचा कि उन्हे प्रोफेसर के रूप मे सेवा करने का अवसर मिला। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह कि एरिक्सन के पास एक भी अकादमिक डिग्री नहीं थी और उन्हे इतने बड़े पद तक महज़ योग्यता के आधार पर नियुक्ति मिली।

जहॉ तक वैयक्तिक विकास का प्रश्न है फ्रॉयड से पूर्व बालको क बारे मे एक सामान्य दृष्टिकोण यही प्रचलन मे था कि जब तक वे छह सात वर्ष के नहीं हो जाते तब तक मस्तिष्क विहीन प्राणी ही बने रहते है आदमी नहीं। इस तर्क के रहते इस बात की बहुत कम गुजाइश थी कि बालक के प्रारभिक वर्षो को विकास के महत्त्वपूर्ण घटक के रूप म देखा जाए। आज भी अनेक सस्कृतिया मे बालकों के बारे मे यही धारणा व्याप्त है। उन्हे मस्तिष्कविहीन कोरा ऐसा विचारहीन प्राणी माना जाता है जो सवेदना शून्य है। छह वर्ष की उम्र पार कर लेने के बाद कहीं जाकर व मस्तिष्क विहीनता की दशा से बाहर आते है। लॉरेंस के फ्रेंक पहला मनोविज्ञानवेत्ता था जिसने मानव विकास मे बाल्यावस्था की महत्ता को समझा। ओन द इपोर्टेन्स ऑव इन्फेंसी नामक अपनी पुस्तक मे फ्रेंक ने बाल मन ओर प्रौढ मन बाल आकाक्षाऍ और प्रौढ आकाक्षाऍ बाल चितन और प्रौढ चितन आदि पक्षो पर आजीवन शाध करके अपने गहन अनुभूत विचार व्यक्त किए थे।

फ्रेंक के बाद कदाचित फ्रॉयड ही एकमात्र एसा व्यक्ति था जिसने प्रौढ व्यक्ति के व्यक्तित्व की निर्मिति मे बाल्यावस्था के विचारो क्रियाकलापो और चितन को निर्णायक माना था। उसने यह खोज की कि प्रौढ व्यक्ति का व्यक्तित्व वही अनुभूतियॉ और रिश्ते बनाकर चलता है जो वह

बाल्यावस्था मे अर्जित करता है। प्रौढ को जानना है तो बालक को जानो। कहावत मशहूर है कि बालक ही आदमी का पिता है।

फ्रॉयड ने प्रोढो से कहा कि नन्हे बालको के बारे मे यह कहना छोड़ दे कि वे अभी इतने छोटे हैं कि कोई बात जान सके या अनुभव कर सके। बालको के पालन पोषण के ऐसे किसी भी तर्क को स्वीकार नहीं किया जाएगा जो बालको की आत्मा को बढने से रोके क्षति पहुँचाए तोड़े या विकृत करे। फ्रॉयड ने यह अनुसधान किया कि अपने जन्म के प्रारभिक वर्षों मे ही बालक ऐसे सवेगात्मक स्तरो से गुजरता है जो क्रमिक रूप से सिलसिलेवार जुड़े हुए होते हैं। जन्म से लेकर सात वर्षों तक के समय को फॉयड ने विकास के तीन स्तरो के रूप मे यो विभक्त किया है ओरल स्टेज (0 से 18 माह) एनल स्टेज (डेढ से तीन वर्ष) तथा फेलिक स्टेज (3 से 7 वर्ष)। लेटेसी स्टेज 7 से 12 वर्ष के समय को कहा गया है जिसम उक्त तीनो स्तर एकीकृत हो जाते है। 12 से 18 वर्ष का किशोरावस्था का काल पुनरावर्तन अथवा दोहराव का काल होता है जिसमे निर्भरता (ओरल स्टेज) स्वतत्रता (एनेल स्टेज) तथा अस्मिता (फेलिक स्टेज) की दिशा मे बालक वापिस मुड़ता है ताकि स्वय को एक पूर्ण प्रौढ के रूप मे तैयार कर सके। इस प्रकार कहना न होगा कि फ्रॉयड ने हमेशा हमेशा के लिए यह बात स्थापित कर दी कि हमारे विकास के परम महत्वपूर्ण वैयक्तिक एव सवेगात्मक दृष्टिकोण जीवन के प्रारभिक सात वर्षों मे तय हो जाते हैं। अतएव यह बात मानना कतई सभव नहीं कि नन्हा बालक मस्तिष्कहीन अथवा सवेगविहीन होता है। फ्रॉयड के विचारो को इस कहावत से यो समझा जा सकता है कि 'टहनी जैसा मोड़ लेगी वैसा ही वृक्ष का आकार निर्मित होगा।'

एरिक एरिक्सन ने फ्रॉयड के सिद्धात को परिष्कृत किया बल्कि कहना चाहिए कि उन्होने बालको और किशोर के विकास का एक 'सपूर्ण सिद्धात निर्मित किया। फ्रॉयड के साथ एक परेशानी यह रही कि उसका सिद्धात कुछ ज्यादा ही नियतिवादी हो गया। ए जनरल इट्रोडक्शन टु साइको एनेलेसिस नामक ग्रथ मे उसने लिखा है कि जब तक हम छह या सात वर्ष के होते है हमारा वैयक्तिक विकास मूलत पूरा हो चुका होता है। एरिक्सन ने फ्रॉयड द्वारा निर्धारित वैयक्तिक विकास के चरणो को अधिक व्यापक आधारपटल दिया है– एक सम्पूर्ण जीवन वृत्त– और प्रत्येक चरण को सकारात्मक और नकारात्मक आयाम देकर रुपायित किया है।

फ्रॉयड ने सवेगात्मक विकास को जहाँ नकारात्मक एव रोगविज्ञान (पैथोलोजी) की दृष्टि से देखा था वहीं एरिक्सन ने अपने सिद्धात को व्यापक सदर्भ दिया है। एरिक्सन के अनुसार विकास एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण जीवन को समेटती हुई चलती है। इसे मनोलैंगिक स्तरो मे देखने की बजाय मनोसामाजिक स्तरो मे देखा जाना चाहिए। एरिक्सन अत्यत अधिकारपूर्वक कहते है कि प्रत्येक व्यक्ति इन्हीं स्तरो से होकर बड़ा होता है। उन्होने बाल्यावस्था से लेकर प्रौढावस्था तक प्रत्येक चरण पर विकास का सूक्ष्म विवेचन किया है पर हम यहाँ प्री-स्कूल प्राइमरी तथा सेकडरी स्कूल मे पढने वाले बालको की तीन श्रेणियो तक ही सीमित रहेगे।

बाल्यावस्था (जन्म से छह वर्ष)

विश्वास बनाम अविश्वास एरिक्सन ने भी फ्रॉयड की भाँति बाल्यावस्था को तीन उपवर्गो मे विभाजित किया है। लेकिन प्रवृत्ति के आधार पर उनके अलग अलग नाम रखे है। जन्म से अठारह महीने की अवधि को उन्होने 'विश्वास बनाम अविश्वास नाम दिया है। वे कहते है इस काल मे बालक के लालन पालन का जैसा स्तर रहेगा तदनुरुप ही उसके भीतर बुनियादी विश्वास अथवा अविश्वास की भावनाएँ पनपेगी। माँ की आतरिक ऊष्मा व देखभाल बालक को इद्रियो के द्वारा यह बोध पाठ देती है कि वह उस पर और इस दुनिया पर भरोसा कर सकता है। माँ का अवलोकन करते-करते बालक यह जान जाता है कि भले ही उसकी माँ कुछ क्षणो के लिए अन्तर्धान हो जाए लेकिन वह बराबर प्रकट होती है। अनुभवो की ऐसी ही नियमितता और स्तरीयता से बालक जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण विकसित करता है। एरिक्सन कहते है कि यदि 18 माह की इस अवधि में नन्हे शिशु की बुनियादी निर्भरता परक ज़रूरते पूरी होती हैं तो वह विकास के अगले सोपान के योग्य हो जाता है। फ्रॉयड की भाँति एरिक्सन भी यह मानते है कि शैशवावस्था मे माँ के प्रति ऐसा विश्वास होना ज़रूरी है कि भले ही वह इधर उधर जाए पर वह उसे दूध पिलाएगी और उसकी देखभाल करेगी-- ऐसे विश्वास से ही आगे चलकर स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास होगा। दूसरो के प्रति स्वय के प्रति और दूसरो का अपने प्रति विश्वास सुनिश्चित करने की बुनियाद यहीं से पड़ती है।

स्वायत्तता बनाम शर्म इस स्तर पर शिशु के भीतर स्वतत्रता की भावना शुरु होनी चाहिए। एरिक्सन की मान्यता है कि डेढ से तीन

वर्ष की इस अवस्था मे टट्टी पेशाव की हाजता पर नियत्रण करके वालक स्वतत्रता प्राप्त कर सकता है। जो बालक टट्टी पेशाव के मामले म माता पिता की अपेक्षा के अनुसार उनकी सीख पर अमल नहीं कर पाते उनमे स्वय अपनी सक्षमता का लेकर शर्म आर सदह पैदा हा जात ह। इसी अवधि मे प्रेम व घृणा सहयोग व दुराग्रह आत्माभिव्यक्ति की स्वतत्रता और उसके दमन का अनुमान तय होता है। एक तरफ वालक मे आत्माभिमान विहीन स्व नियत्रण से लेकर सदभाव ओर गर्व की स्थाई भावना स्थिति हाती है ता दूसरी तरफ वालक म स्व नियत्रण क अभाव म दूसरो का अत्यधिक नियत्रण बढ जाने से सदेह एव शर्म का स्थाई भाव बन जाता है।

अगुवाई बनाम अपराध बोध तीन से छह वर्षों की अवधि का यह सोपान बालक की स्व चेतना को और व्यापक बनाता है। लड़के या लड़की के रूप मे उसकी अस्मिता अत्यत प्रभावित होती है। पिछले सोपान तक वालक इतना कुछ जान गया था कि वह स्वतत्र है स्व निर्देशित है। अब उसे यह पता लगाना शेष है कि पुरुषत्व या नारीत्व मे से यह कौन है क्या है? वह प्रौढ़ व्यवहार की नक़ल करके अपनी पहचान बनाता है। जिन घरा मे बच्चे का स्वतत्रता होती ह उन्हें ज्यादा डॉटा फटकारा नहीं जाता वहॉ बच्चे अपने विकासमान पुरुषत्व नारीत्व भाव को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त कर देते है। लड़के मॉ के पक्ष म ओर लड़कियॉ पिता के पक्ष मे अपने व्यवहार करते देखे जाते है। लगभग हर घर मे इस उम्र के बालक ऐसी मज़ेदार लीलाएँ करते है। इन लीलाओ के माध्यम से बच्चे अपनी लैंगिक अस्मिता का पहचानते है। अगर बालको की लीलाओ उनके प्रौढ व्यवहारो उनके सवादो और यथार्थ अभिनय को देखकर उन्हे डॉटा जाता है या उनकी खिल्ली उड़ाई जाती है तो सच माने उन पर बड़ा ही विपरीत असर पड़ता है। इससे व स्वय को तुच्छ और नगण्य समझ बैठते हैं। उनके भीतर यह अपराध बोध जाग जाता है कि उन्होंने अपने अन्तर्मन का प्रकट ही क्यो किया था कि वे क्या बनना चाहते है। अत इस उम्र के वालको को यह भरोसा दिलाना ज़रूरी है कि वे बड़े होकर जो भी बनना चाहते है वे ज़रूर बनेगे बल्कि उससे बेहतर बनेगे।

इस उम्र मे वालक-वालिकाओ के मन को समझते हुए विद्यालयो म अनेक प्रवृत्तियाँ रचाई जानी चाहिए। यदि वालको के मन और उनकी आवश्यकताओ को नहीं जाना गया तो ज़ाहिर है सम्पूर्ण आयोजन अशैक्षिक

हो जाएगा और निषेधात्मक भावनाएँ प्रबल हो उठेगी।

किशोरावस्था (छह से बारह वर्ष)

बालक के लिए यह अवस्था एक तरफ दक्षता और निपुणता अर्जित करने की है तो दूसरी तरफ हीनता-ग्रंथि पैदा होने की भी है। इस उम्र के ज्यादातर बच्चे प्राथमिक विद्यालयों में जाते हैं। एरिक्सन के अनुसार इन बालकों का वैयक्तिक एवं भावनात्मक विकास बहिर्गामी हो जाता है। वे एक नई दुनिया में-- कक्षा मलजाल टोली में प्रविष्ट होते हैं। घर में रहते हुए भी ये उनके विकास के नए क्षेत्र बन जाते हैं। अपने हम उम्र बाल-गोपालों की टोली में उनका अधिक समय बीतता है।

इस उम्र के बालक कई कई तरह के कौशल सीखना चाहते हैं उनमें अत्यधिक क्रियात्मकता आ जाती है। शब्दों को पहचानना लिखना सीखना जोड़ बाकी-गुणा भाग करना उनके लिए एक 'कौतुक' बन जाता है क्योंकि इन सभी कौशलों से उन्हें नये किस्म का अनुभव मिलता है ये किस्से-कहानियों की किताब पढ़ने लगते हैं, दोस्तों को कुछ लिखकर संवाद करते हैं जोड़ लगाकर कापी किताबों की कीमत जानते हैं। दौड़ में किसने कितने मिनट लिए और कौन कम समय में पहुँचा आदि बातों में गति से काम करने लगते हैं।

इस उम्र के बालकों को ये तमाम कौशल सीखने के लिए न भाषण देना पड़ता न उपदेश। इस उम्र में बच्चे स्कूल में भी कई तरह के खेलों और प्रवृत्तियों में संलग्न होकर नए-नए कौशल सीख जाते हैं-- फुटबाल हॉकी तैराकी सिलाई बुनाई वस्तुएँ संग्रहीत करना आदि। बच्चों की ऊर्जा बेमिसाल होती है लगता है जैसे उनमें कई-कई अश्वों का बाहुबल हो। एरिक्सन कहते हैं कि इस अपरिमेय ऊर्जा को वैयक्तिक सक्षमता एवं दक्षता बढ़ाने में लगाया जाना चाहिए। अगर इस उम्र के बालकों को उनके चारों ओर की दुनिया के साथ क्रियात्मकता से जुड़ने हेतु नहीं लगाया जाएगा तो उनकी वैयक्तिक उद्यमशीलता वैयक्तिक हीनग्रंथि में बदल जाएगी। छह से बारह वर्ष की उम्र के बालक सीखने के लिए अत्यधिक सक्रिय होते हैं। शिक्षकों का यह दायित्व है कि बालकों की प्राकृतिक मनोवृत्ति को समुचित दिशा दें अन्यथा उनका स्वस्थ वैयक्तिक विकास विकृत हो जाएगा। उन्हें बालकों को शांत निश्चेष्ट आदेशवाहक शिष्ट बनाने की विशेष चिंता नहीं करनी चाहिए। यह प्रयोजन बालकों की वैयक्तिक दक्षता एवं निपुणता प्राप्ति के प्रयासों के विरुद्ध जाता है।

तरुणावस्था (बारह से अठारह वर्ष)

वैयक्तिक विकास का यह सोपान एरिक्सन के वर्गीकरण मे अत्यत महत्वपूर्ण सोपान है। यद्यपि यह बात ठीक से नहीं बताई जा सकती कि कब तरुणावस्था समाप्त होती है, और प्रौढावस्था शुरू हो जाती है पर इसी अवधि मे वैयक्तिक विकास मे सर्वाधिक बदलाव आते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि हमारा सज्ञानात्मक शरीर क्रियात्मक तथा मनोवैज्ञानिक तत्र इस उम्र तक प्रौढ स्तर पर पहुँच जाता है। बदलाव तो प्रौढ होने पर भी निरतर होते रहते हैं लेकिन गुणात्मकता की बजाय परिमाणात्मक अधिक होते है। एरिक्सन इस काल को अस्मिता के सकट का काल कहते है। बालक अपने 'स्व को पहचानता है। हमारी 'स्व की परिभाषा कि कैसे हम स्वय को देखते है और कैसे अन्य लोग हमें देखते है, हमारे प्रौढ व्यक्तित्व की आधारशिला निर्मित करती है। आधारशिला दृढ होगी और यदि दृढ नहीं होगी तो अस्मिता का 'विसरण हो जाएगा। अस्मिता के 'विसरण को एरिक्सन उस बीमारी की तुलना देते हैं जिसमे रोगी की स्मृति लुप्त (एमनेशिया) हो जाती है। अपने मूल से उखड़े हुए अजनबी लोग इसी तरह के होते है।

शिक्षको और शिक्षाविदो का दायित्व है कि इस वय के तरुणो को उनकी धुरी पर बनाए रखने के लिए जीवन के खरे एव सच्चे अनुभव तो दिए ही जाएँ जिम्मेदारी के काम भी सौपे जाने ज़रूरी है। जिम्मेदारी के पाठ वाणी से नहीं सिखाए जाते। ये अनुभव हस्तातरित भी नहीं किए जा सकते। विद्यालयो मे इन किशोरो तरुणो को जिम्मेदारी के जीवत कार्य देकर ही उनकी अस्मिता से जोड़े रखा जा सकता है। उन्हे भरपूर प्यार विश्वास स्वतत्रता देकर ही तनावो से मुक्त रखा जा सकता है।

शिशुओ बालको किशोरो तथा तरुणो को समझने की यह दृष्टि हमें शिक्षक के रूप मे बेहतर तरीको से काम करने में मदद देगी अत एरिक्सन के विचारो का हमे गहनता से अनुशीलन करने की ज़रूरत है।



बालक को फेल क्यो करे?

कई बार सोच सोच कर मन म बहुत पीड़ा होती है कि अभी और कितनी दशाब्दियो तक हमारी शिक्षा पद्धति पास फेल के परिणामा को लेकर अभिशप्त रहेगी और यह भी विशेष रुप से विद्यार्थियो को फेल करने की अपनी विवशता को लेकर। कोई भी तो नहीं बता सकता कि अच्छे भले बालक-बालिकाआ को फेल करने की और उनमे निराशा हताशा पैदा करने की उसकी ऐसी क्या विकट मजबूरी है। आखिर शिक्षा पद्धति को हमने यह अधिकार क्या सोच समझ कर दिया कि वह बालको को बेरहमी से फेल करे और उनके भविष्य के साथ खिलवाड़ करे?

क्या हम यह मानते हे कि व्यक्ति व्यक्ति की बौद्धिक-क्षमता मे अतर होते है और हम उन्हे होने देना चाहते है? एक निश्चित अवधि तक कक्षा मे बैठकर निर्धारित पाठयक्रम को पढने-समझने के बाद बालको मे निपुणता य दक्षता हासिल करना क्या सिर्फ बौद्धिक क्षमता पर ही निर्भर करता है और क्या सीखने सिखाने की प्रक्रिया मे बुद्धि ही एकमात्र चीज़ है? क्या उन प्रभावको और परिस्थितियो को हम भुला दे जो शिक्षण प्रक्रिया की निर्मिति के समय अपना मायाजाल फैलाते हैं और क्षण भर को जिनमे बालको का हिरणा मन कहीं उलझ जाता है और निकल नहीं पाता।

सच मान तो जब तक कोई बालक अस्वस्थ नहीं है या किसी बड़ी मनो शारीरिक विकृति से ग्रस्त नहीं है तब तक सीखने की योग्यता को लेकर अन्य बालको से उसम फर्क़ नहीं किया जा सकता। जब हम यह मान कर चलेगे कि फर्क होते है तो दुनिया की कोई भी ताक़त हमारी इस धारणा को बदल नहीं सकती। औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति को तो सत्ता की आरती उतारने के लिए आदमिया का चयन करना था अत उनके सामने श्रेणीकरण की बाध्यता थी। पर हमारे सामने ऐसी क्या विवशता है कि हम विद्यार्थियो को प्रथम द्वितीय तृतीय या फेल आदि श्रेणिया मे विभाजित करे। क्या हमे ऐसा नहीं लगता कि इस सम्पूर्ण तत्र के

पीछे अब भी वैसा ही एक चालाक दिमाग मौजूद है जो शिक्षा प्रणाली के माध्यम से सदियो से पिछड़े हुए साधनविहीन साधारण जनो को वैसा का वैसा शापित दमित रखना चाहता है ताकि धनिको वणिको इजारेदारो का साम्राज्य पूर्ववत जारी रहे। अत लगता नहीं कि शिक्षा तत्र बदलेगा कि प्रतियोगिता की यह नीति बद होगी कि फेल घोषित करके लाखो छात्रो के मुकद्दर से खिलवाड़ करने की इस नीति मे कोई बदलाव आएगा। बदलाव आने का मतलब है एक पूरे वर्ग की बपौती का धराशायी होना एक पूरे साम्राज्य का छिन्न भिन्न होना।

अभी हमने बालको को फेल घोषित करने के काम को अमानुषिक नहीं गिना है। जिस दिन हममे इस समझदारी का उदय होगा कि यह एक विशाल अपव्यय स्वय हमारी मौन सहमति से हो रहा है और अकारण ही प्रतिभाओ को कुचलने के इस सामूहिक षडयत्र म हम भी शामिल है उस दिन पता चलेगा कि कितने जघन्य अमानवीय कृत्य मे गर्क थे हम। काश' हमने देश विदेश के शिक्षाविदो और मनोविज्ञानवेत्ताओ के विचारो को पढा होता उनसे पूछा होता कि बालको को फेल करने का कानून कहाँ तक उचित अनुचित है। न तो इसे गाँधी ने कभी मजूरी दी न गिजुभाई ने न माकारेको ने इसे माना न ए एस नील ने या प्रोफेसर बेंजामिन ब्लूम ने।

अमेरिका के विख्यात मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर ब्लूम के विचार इस दिशा मे बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होने बाल विकास और शिक्षण उद्देश्य निर्धारित (टेक्सोनोमी) करने का जितना गभीर काम किया था उतनी ही निष्ठा से इस प्रश्न पर भी सोचा था। बल्कि वे स्वय एक समय अमेरिकी शालाओ म छात्रो को अक्षम व अयोग्य घोषित करके फेल करने के इस अपव्यय स बहुत खिन्न थे। एक स्थान पर उन्होने लिखा था कि अमेरिकी शिक्षा पद्धति विद्यार्थियो की बहुत बड़ी सख्या की बलि लेती है। यहाँ की एक सामान्य कक्षा का अध्यापक यह मानकर चलता है कि एक तिहाई छात्र तो फेल होगे ही अथवा फिर डूबते मरते पास होगे अगले एक तिहाई छात्र कुछ ठीक ठाक निकलग और शेष एक तिहाई ही योग्य निकल सकेगे। शिक्षको की ऐसी अपेक्षाओ को ब्लूम वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली का एक नुकसानदायी और क्षयकारी पहलू मानते है। इससे छात्रो व अध्यापको दोनो की अपेक्षाएँ खडित होती हैं छात्रो की पढने की प्रेरणा विच्छिन्न होती ह और उनका आत्मविश्वास या स्वमान ध्वस्त होता है सो अलग'

ब्लूम की दो टूक मान्यता है कि ज्यादातर विद्यार्थी अपनी सम्पूर्ण

क्षमता के साथ वे सब बाते सीख सकते है जो उन्हे सिखाई जानी है। पर अगर वे कहीं न सीख पाएँ तो इसका कारण यह है कि हमने ऐसी कोई औपचारिक प्रक्रिया तय कहाँ की जो भरोसा बँधाए कि अध्यापको की अपेक्षाएँ विद्यार्थियो की ज़रूरता के अनुरूप सुसगत है। वस्तुत शालाओ मे विद्यार्थियो के प्रति अध्यापको मे एक सकारात्मक नज़रिया विकसित होना ज़रूरी है कि उनकी बौद्धिक क्षमताओ म फर्क नहीं होता अपितु फर्क हमारे दिमाग मे और हमारी कोशिशो मे होता है।

वस्तुत हमे ब्लूम के मास्टरी लर्निंग के विचार को अपनी शिक्षा-पद्धति का अभिन्न अग बनाकर छात्रो को फेल होने से बचाना चाहिए। वे छात्रो मे खोट नहीं देखते परिस्थितियो को दोष देते है इसलिए अगर छात्रो को पढाई मे उपलब्धि हासिल करानी है तो उनके मतानुसार शिक्षण स्थितियो को बदलना लाजिमी है। वे मानते है कि फल होना शिक्षण प्रक्रिया की अनिवार्य परिणति नहीं है। एकमात्र इसी मान्यता पर ब्लूम ने 'मास्टरी लर्निंग की अवधारणा विकसित की है। एक तरह से कक्षा शिक्षण को एक नए नज़रिये से देखने की अवधारणा है यह।

आप पूछेगे कि ऐसी क्या नायाबियत है इसम। मेरे ख्याल स ब्लूम की शिक्षण प्रणाली और एक परपरित कक्षा की शिक्षण प्रणाली मे बुनियादी फर्क बस इतना सा है कि इनक यहाँ पाठ्यवस्तु को क्रमिक रूप मे बाँट कर पढाया जाता है और फिर कई तरीको से निरतर मूल्याकन किये जाते है।

परपरागत कक्षाओ की पढाई मे मूल्याकन और जाँच छात्रो को ग्रेडिंग करने श्रेणीबद्ध करने के इरादे से किये जाते है जबकि ब्लूम के यहाँ छात्रो को एक अवधि तक विधिपूर्वक पढाये जाने के बाद उनकी प्रारभिक जाँच होती है–नितात नैदानिक आधार पर यह जानने के लिए कि अमुक पाठ्यवस्तु को भलीभाँति हृदयगम नहीं कर पाए तो उन्हे अपनी कमी पूरी करने के लिए फिर से मदद की जाती है। और जो छात्र उस पाठ्यवस्तु को समझ चुके उन्हे उसी पाठ्यवस्तु से सबधित एनरिचमेट सामग्री दी जाती है ताकि वे अपनी समझ के दायरे को अधिक गहरा व व्यापक बना सकें। कभी-कभी इन छात्रो को अपने सहपाठियो की मदद मे बिठा दिया जाता है। और अध्यापको को एक खास कार्य होता है कि कक्षा के सभी छात्रो की एक-सरीखी त्रुटियो व गलतियो पर नज़र रखे और जाँच के बाद उनको पूरी कक्षा के सामने खुले रूप मे स्पष्टीकरण करे। इसके बाद छात्रो को दो-दो तीन तीन के दलो मे बिठा कर अपनी विविध त्रुटियो और गलतियो पर बातचीत करने

व परस्पर समझने का मौका दिया जाता है। पिछड़ने वाले छात्रो को सशोधन हेतु काम देने का भी ब्लूम के यहाँ नियम है।

मास्टरी लर्निंग की प्रणाली अपनाने वाली कक्षाओ को अपने पिछड़ने वाले छात्रा की मदद हेतु 10-15/ समय और अधिक देना पड़ता है ओर कक्षा कार्य के अलावा गृहकार्य भी कराना पड़ता है। वस्तुत यह गृहकार्य परपरित कक्षाओ के गृहकार्य से भिन्न प्रयोजन रखता है। यह हमेशा नहीं दिया जाता। जब परिस्थिति की मॉग होती है तभी बालको को इस आशय से दिया जाता है कि यह काम करने से तुम्ह अमुक-अमुक सिद्धियॉ हासिल हो जाएँगी। ऐसे मे बालक गृहकार्य को बोझ भी नहीं मानेगे जेसी कि अमूमन हमारे विद्यालयो मे शिकायत देखने मे आती है। सशोधनो की प्रक्रिया के गुज़र चुकने के बाद उस पाठ्यवस्तु विशेष की आखिरी जॉच की जाती है और ब्लूम की ऐसी मान्यता है कि 80 से 90 प्रतिशत तक छात्रो को वाछित समझ और निपुणता हासिल हो जाती है-- इतनी निपुणता कि जिन्हे परपरित कक्षाआ मे ए ग्रेड के समकक्ष आसानी से माना जा सकता है।

ब्लूम की इस विधि मे शिक्षको को बहुत सक्रिय रहना पड़ता है क्योंकि इसके अभाव मे न वे छात्रा को सक्रिय रख सकते है न शिक्षण प्रक्रिया विकसित कर सकते है। पर इतना तय है कि मास्टरी लर्निंग से छात्रो को फेल करने और उनमे हताशा पैदा करने की दुर्वृत्ति से हमेशा हमेशा के लिए नजात मिल जाती है।

एक बार न्यूज़ीलैण्ड की यात्रा पर एक शैक्षिक पत्र के सपादक ने प्रो ब्लूम से एक सवाल पूछा था कि आपकी 'मास्टरी लर्निंग' के चारो ओर बहुत चर्चे है मेहरबानी करके यह बताइए कि इस प्रोग्राम की सफलता का प्राण तत्व आप किसे मानते है?

इसके उत्तर मे प्रो ब्लूम ने जो कहा था वह प्रत्येक शिक्षक और अभिभावक के लिए गॉठ बॉध लेने की चीज़ है

अव्वल तो यही कि अध्यापक को बालको की सीखने की योग्यता के प्रति अपना विश्वास व्यक्त करते रहना होगा। दूसरे बालको की पढने समझने की योग्यता का विश्लेषण कर लेने के बाद वही सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हुए आगे बढना होगा कि अमुक अमुक बाते तुम समझ चुके हो बालको। और अभी अमुक अमुक बाते तुम्हे और जाननी-समझनी है।

और तीसरे शिक्षको को छात्रो के सामने यह सिद्ध करना होगा कि वे वस्तुत बहुत अच्छी तरह से सीख रहे हे पढ रहे है समझ रहे

है। खास तौर से जाँच के बाद मे तो बार बार यही सिद्ध कर दिखाना होगा कि वे सीख रहे हैं अनवरत आगे बढ रहे हैं ताकि बालको मे सफलता की भावना जाग सके। जब भी बालको मे सफलता की भावना जागती है तो वे सीखने समझने मे और अधिक प्रवृत्त हो जाते है अधिक चेष्टावान बन जाते है । कहा भी गया है कि 'सफलता से बढकर प्रोत्साहन देने वाला तत्व कोई दूसरा नहीं है।' (नथिंग सक्सीडस लाइक सक्सेस) सीखने के प्रति उद्यतता का भाव उनके लिए बेशकीमती तत्त्व बन जाता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह मिलता है कि अपने पाठ्यविषय अपने विद्यालय और स्वय अपने प्रति उनकी रुचि नाटकीय रूप से बदल जाती है और उनका आत्मविश्वास बढ जाता है।

हमारे पढाने मे आज यही तो कमी है। बालको मे शिक्षा और सफलता का नया आत्मविश्वास जगाना तो दूर जो कुछ उनकी जन्मजात विशेषताएँ हैं उन्हे भी हम चकनाचूर कर डालते है। हमारे शिक्षालय कुछ और न करे छात्रो को फेल करना ही बद कर दे तो एक भयकर रोग से तो छात्रो को मुक्ति मिले।



शिक्षण का प्राण है सवाद

अब यह तथ्य बहुत स्पष्टता के साथ हमे समझ मे आने लगा है कि राजनीतिक स्वतत्रता ही पर्याप्त नहीं मानसिक आज़ादी भी उतनी ही ज़रूरी है। वर्षो तक गुलाम रहने के कारण मन भी गुलाम बन जाता है ओर शिक्षा व सस्कृति म बाहरी दबाव स आए परिवर्तना का असर तत्काल समाप्त नहीं होता। एशिया अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के देश भोगोलिक एव राजनीतिक स्वतत्रता पाने के बाद आज भी पूँजीवादी प्रभाव से मुक्त नही हो पाए। तीसरी दुनिया के गरीब देशा मे अब भी वही शिक्षा दी जा रही हे जो गुलामी के दौर म थी ओर वास्तविक शिक्षा का लाभ उन्हे नहीं मिल पाता। एसा क्यो है? इस क्या का उत्तर दिया है– उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र (पडागोजी ऑफ द ओप्रेस्ड) पुस्तक के लेखक पावला फ्रेरे ने।

लेटिन अमेरिकी देश ब्राजिल के निष्कासित प्रगतिशील चितक फैरे के शिक्षा सबधी विचार क्रातिकारी हैं। ब्राजिल के उत्तरपूर्वी पिछड़े ओर गरीब इलाक रेसीफ म जन्मे फ्रेर ने अनपढ व भूमिहीन मजदूरो की दशा सुधारने के लिए उनके साथ वर्षों तक काम किया। उस समय वहाँ निरक्षर जनता को शिक्षा देने के लिए एक सगठन कार्यरत था फ्रेरे उसके शिक्षा व सस्कृति विभाज के निदेशक बने। रेसीफ विश्वविद्यालय की ओर से भी उन्हाने कृपक वर्ग क लिए शिक्षा देने का कार्यक्रम चलाया। इस प्रकार उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार कार्य-क्षत्र मे अर्जित अनुभवो की बुनियाद पर निर्मित हुए है। आवश्यक नही कि फ्रैरे के विचारो को हम ग्रहण करें ही पर चूँकि हम भी अपनी शिक्षा प्रणाली को अपने देश की ज़रूरतो के मुताबिक ढालना चाहते हे तथा शिक्षण को वैज्ञानिक बनाने की आकाक्षा रखते हैं अत ये विचार हमारे लिए मार्गदर्शक हो सकते हैं।

फ्रैरे के अनुसार शोषक वर्ग शिक्षा को जन कल्याण की प्रवृत्ति के नाम पर चलाया करता है। जनता के प्रति उसकी उदारता सतही होती

है। उसका दया धर्म दिखावटी होता है। मानवता उसके तई महज़ एक चीज़ है जिसे वह उत्तराधिकार मे प्राप्त जायदाद की तरह अनन्य अधिकार के साथ अपने पास रखता है। हर चीज़ का वह पैसा से मापता है और लाभ कमाना उसका पहला उसूल होता है। फ्रेरे शिक्षा को मुक्ति के माध्यम के रूप मे परिभाषित करते हुए कहते है मुक्ति के कार्य म उत्पीड़ितो मे उनकी खुद की समझदारी और भागीदारी पैदा किए बगैर उन्हे मुक्त कराने का प्रयत्न करना ठीक वैसा ही है जैसे उन्ह कोई जड़ वस्तु समझ लिया जाए कि जिसे किसी जलते हुए घर म से बाहर निकाल देना ही काफी हो। यह उन्ह एक फदे मे से दूसरे गड्ढे म ले जाने जैसा और उन्हे एक भीड़ के रूप मे बदल देने जैसा है जिसे मनचाहे उपयोग म लिया जा सकता है।

वर्तमान शिक्षा पद्धति की आलोचना करते हुए फ्रेर कहते है कि यह कथन रोग से ग्रस्त है। अध्यापक छात्रो के सामने वास्तविकता के बारे मे यो भाषण झाड़ते है मानो वह कोई गतिहीन स्थिर हिस्सो मे बॉटी जाने वाली या कि भविष्यवाणी योग्य 'चीज़ हो अथवा वे किसी ऐसे विषय पर वक्तव्य देने लगते है जो बालको के अनुभव - जगत से परे का होता है। उनका काम ही यह है कि वे यथार्थ से कटी हुई विषयवस्तु से छात्रो को भरते रहे। शब्दावली इतनी थोथी और निरर्थक कि कोई भी तो आकार नही उभरता' शब्दनाद ज़रूर देख लो कुछ रूपातरित करने की शक्ति तो उनमे होती नहीं। मास्टरजी बोलते है पॉचे पॉचे पचीस छक्के छक्के छत्तीस तो बच्चे भी वही लिखते है घोटते है और वैसा का वैसा उगल देते है। वे कत्तई महसूस नहीं करते कि पॉचे पॉचे से वस्तुत अर्थ क्या निकलता है।

कथन का यह रोग छात्रा को रट्टूपीर बनाता है। तब वे विद्यार्थी नही रहते खाली डिब्बे बन जाते हैं जो कि अध्यापका द्वारा भरे जाने है। जो अध्यापक इस ढग से जितने ज्यादा डिब्बे भरता है वह उतना ही सम्मानित कहलाता है और जो विद्यार्थी जितनी नम्रता से विषयवस्तु ग्रहण करता है वह उतना ही होशियार छात्र कहलाता है।

फ्रेरे ज्ञानदान की इस पद्धति को 'बैंकिंग पद्धति नाम दते हैं। इसमे छात्रो को स्वकर्तृत्व का बस इतना ही अवसर मिलता है कि वे सुनें लिखे और घोटा मारे। इसम 1 अध्यापक पढाता है और विद्यार्थी पढता है 2 अध्यापक सब कुछ जानता है और विद्यार्थी कुछ नहीं जानता है 3 अध्यापक सोचता है और विद्यार्थी उस सोचने की विषयवस्तु है 4 शिक्षक बोलता है और विद्यार्थी नम्रतापूर्वक सुनते है 5 अध्यापक

अनुशासन लागू करता है और विद्यार्थी अनुशासित होता है। 6 अध्यापक अपनी पसन्दगी व्यक्त करता है और विद्यार्थी उसका अमल करते है 7 अध्यापक क्रिया करता है और विद्यार्थी अध्यापक की क्रिया द्वारा स्वय क्रिया करने का भ्रम पालते हे 8 अध्यापक विषयवस्तु का चयन करता है ओर विद्यार्थी (जिन्हे इस बाबत पूछा नहीं जाता)ग्रहण करते हे 9 अध्यापक अपने ज्ञान द्वारा प्राप्त अधिकार और अपने व्यवसाय के आधार पर प्राप्त अधिकार के बीच मे कोई अन्तर नहीं कर पाता और इस अधिकार के माध्यम से छात्रो क स्वतत्रता के अधिकार का हनन करता है 10 शिक्षण के कार्य मे अध्यापक पढता है और छात्र केवल विपयवस्तु है।

बैंकिंग की यह पद्धति बड़ी दोषपूर्ण है जिसमे विद्यार्थी चिन्तन मनन और सृजन के अवसरो से वचित रखे जाते है। वगैर अन्वेषण और वगैर अभ्यास के कोई सचे अर्थों मे इन्सान नहीं हो सकता। ज्ञान भी तब पैदा होता है जब आदमी जगत मे निरन्तर और खुद अन्वेषण करता है उसके लिए अनथक श्रम करता है। अपने अनुभवो को बार बार विवेचित और विश्लेपित करके देखता है कि उनमे सचाई है या नहीं। पर बैंकिंग पद्धति विद्यार्थियो को स्वक्रिया की छूट नही देती। उन्हे ऐसा बना दिया जाता है कि दूसरो के सहारे ही वे क्रिया कर सकते है। परतत्र बनाने वाली इस शिक्षा पद्धति के छदम की ओर सकेत करते हुए फ्रैरे कहते है कि शिक्षा कभी तटस्थ नहीं होती प्रवल वर्ग की अनुचारिणी होती है। शिक्षा को अगर विनियोग कहा जाता है तो विल्कुल सही है। बनिया पैसा लगायेगा तो उगाहेगा भी। ऐसे ही वह वर्ग जो शिक्षा नीति लागू करेगा उससे लाभ की भी वाछा रखेगा। फ्रैरे का यह सोचना बहुत ही सही है कि जो शिक्षा-दर्शन विद्यार्थियो को निष्क्रिय वस्तु अथवा विनियोग का साधन समझता हे वह विद्यार्थियो को भली भॉति उत्प्रेरित नहीं कर सकता। उससे तो बल्कि बच्चो की निर्भरता उदासीनता अपरिपक्वता और नम्रता अधिक स्थाई बनती है। ऐसे दोषपूर्ण बैंकिंग सिद्धान्त को समाप्त करते हुए फ्रैरे कहते हैं कि शिक्षक शिक्षार्थी के बीच के अन्तर्विरोधो को मिटाना अत्यावश्यक है। जब इन दोनो का अन्तर्विरोध सुलझेगा और यह समझ विकसित होगी कि दोनो एक साथ अध्यापक भी है और छात्र भी तभी शिक्षा का शुभारम्भ हो सकता है। जितने समय तक इन दोनो के बीच दूरी रहेगी पराधीनता बढ़ती ही जाएगी।

जिन दोषो का उल्लेख फ्रैरे ने किया है उनके बारे मे हम काफी समय से सुनते आ रहे हैं। शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धो के बारे मे भी हमने लगभग ऐसा ही सोचा है। पर फ्रैरे की मौलिकता वहाँ दिखाई देती है

जब वे कहते है कि शिक्षा क्रिया और अनुचिंतन (Action & Reflection) के प्रामाणिक मेल मिलाप का नाम है और ऐसे मेल का अभ्यास हर कोई कर सकता है। जिस क्षण से व्यक्ति अपनी स्थिति पर सोचना शुरु करता है अपने जीवन के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक पहलू पर चिन्तन करता है तभी से पढाई की शुरुआत समझनी चाहिए। शिक्षक अपनी स्थिति का चिन्तन करे। विद्यार्थी को भी अपने बारे मे सोचना चाहिए। शिक्षक की सही भूमिका यही है कि विद्यार्थी को क्रिया और अनुचिन्तन की प्रक्रिया से अवगत कराए।

फ्रेरे द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के नय सिद्धान्तो मे कोरी सैद्धातिकता ढूँढना जबरन आरोप लगाने जैसा होगा। दरअसल वर्तमान शिक्षा पद्धति ही सैद्धातिकता से ग्रसित है जो पहले 'सीखने और बाद म क्रिया करने का आग्रह रखती है। फ्रेरे इसके विपरीत यह मानकर चलते है कि क्रिया के बगैर सीखना सम्भव नहीं और अनुचिन्तन के बगैर सार्थक क्रिया सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से शिक्षा 'मुक्ति का अभ्यास है (सा विद्या या विमुक्तये) । अगर मुक्त करने वाली शिक्षा देने का इरादा हो तो ज्ञानात्मक क्रियाओ के आयोजन ज़रूरी हैं सूचनाएँ देने मात्र से मुक्ति की शिक्षा सम्भव नहीं। अपनी स्थिति पर गौर करने की आलोचनात्मक बुद्धि के विकास को फ्रेरे ने 'समस्या प्रस्तुति (Problem Posing) नाम दिया है। वे कहते हैं कि जो नवीनता के लिए कटिबद्ध है उन्हे चाहिए कि बैंकिंग पद्धति को सर्वथा छोड़ दे और उस सकल्पना को स्वीकार करे जो मनुष्य को एक चेतन प्राणी मानती है और चेतना का अर्थ जागतिक चेतना मानती है। उन्हे चाहिए कि वे ज्ञान का सकलन के शैक्षिक उद्देश्य का परित्याग कर द और उसके स्थान पर उन समस्याओ के समाधान की चेष्टा करे जो आदमी के सामने दुनिया के ससर्ग से पेश होती हैं।

अध्यापक "विधि के अनुसार सूचनाएँ देने के स्थान पर 'सवाद की स्थिति' पैदा करे उसे बढावा दे। इस विधि को काम म लाने के लिए छात्र अध्यापक अन्तर्विरोध मिटाना ज़रूरी है। 'बच्चो के मास्टरजी या मास्टरजी के बच्चे जैसे फिकरो के बजाय 'शिक्षक-शिक्षार्थी शिक्षार्थियो के साथ साथ शिक्षक जैसी शब्दावली व्यवहार मे लानी चाहिए। सवाद इस विधि का प्राण है। अध्यापक पढाता नहीं बल्कि स्वय भी छात्रो से सवाद के दौरान सीखता है। छात्र निरीह और निष्क्रिय श्रोता नहीं रहता बल्कि एक सह अन्वेषक बन जाता है।

फ्रेरे के शिक्षा सिद्धान्तो मे सवाद विधि को प्रमुख स्थान दिया गया है। इस विषय मे उन्होने अपने विचार बड़े विस्तार के साथ व्यक्त

किए है। सवाद का मूल है शब्द । इसी से सवाद सम्भव होता है पर शब्द इससे भी कहीं बढकर है। दो आयाम हे इसके—अनुचितन और क्रिया। दोनो के मध्य इतनी तीव्र गति से अन्तर्क्रिया होती है कि एक की अनुपस्थिति से दूसरा तत्काल प्रभावित होता है। सही शब्द दुनिया को बदल सकता है। शब्द सही नहीं है तो आचरण भी सही नहीं हो सकता। शब्द मे जिस क्षण क्रिया नहीं होगी अनुचितन भी स्वत नहीं रहेगा तव वकवास से ज्यादा उसकी कीमत नहीं होगी। इसके विपरीत अगर शब्द मे अनुचितन का आयाम नहीं ह तो वह सिर्फ क्रियावाद रह जाएगा। सही शब्द का ही वस्तुत सही असर होता है और सही शब्द से ही सवाद सम्भव है अगरचे दोना मे से कोई किसी के अधिकार का हनन न करे। सवाद के लिए गहरा प्रेम नम्रता और विश्वास अपेक्षित है।

जैसा कि ऊपर कह आया हूँ, फ्रेरे ने निरक्षर प्रौढो के बीच अपने देश म काम किया था। लोगा को सुनकर अचम्भा होता है कि फ्रेरे ने 45 दिनो के अन्दर अन्दर प्रौढो को न केवल लिखना पढना बल्कि उनकी पतली हालत के बारे मे जागरूक रहना कैसे सिखा दिया। वस्तुत यह आश्चर्य की बात है। निरक्षरो को पढाने के लिए फ्रेरे ने एक नई विधि ईजाद की थी जो तीन चरणो म है।

अपने साथियो की टोली लेकर जब वे रेसीफ से एगिको पहुँचे तो सर्वप्रथम उन्होने उप क्षेत्र की वुनियादी शब्दावली की सूची तैयार की। इस कार्य से उनका जनता से सम्पर्क बढा। उन्होने अपने सिद्धान्ता मे जनता स भावात्मक रिश्ता कायम करने पर काफी बल दिया है। साथिया से कह दिया गया था कि वे अपने आपको विशेषज्ञ के बजाय लर्नर ही समझे गाँवो की ज़िन्दगी को देखे और पता लगाये कि लोग क्या कुछ महसूस करत ह। उनकी ज़रूरत क्या ह। लोगो को कौन से तत्त्व निराश करते है और किन से उनमे आशा का सचार होता है। कई दिनो तक जनता के साथ रहकर उन्होने बातचीत से उनके सार विचार जान लिए और बोलचाल की शब्दावली भी एकत्रित कर ली। दूसरे चरण मे कुछ खास शब्दो का चुनाव किया। चयन म मुख्यत इन्हीं बातो का ध्यान रखा कि शब्द विशेष मे (1) ध्वनि की दृष्टि से समृद्धि हो (2) उच्चारण की दृष्टि से कहाँ-कहाँ कठिनाई पैदा होती है तथा (3) व्यावहारिक उपयोगिता की बात कितनी है। इस प्रकार उन्होने 17 शब्दा का चयन किया उसमे से कुछ ये हैं-गदी बस्ती (FAVELA) रोटी, छकड़ा जमीन वर्षा आदि। तीसरे चरण मे वे समस्याएँ साकेतिक ढग से पेश की गईं जो टोली के साथिया ने जनता से सम्पर्क के दौरान समझी थीं। स्लाइडस रेखाकनो

और चित्रा के माध्यम स इन समस्याओ को प्रस्तुत किया गया। जनता को व चित्र दिखाए गए और उन पर उनकी प्रतिक्रिया पूछी गई। जनता के विचार जानने की इस विधि को फ्रेरे ने डी कोडिंग नाम दिया है। समस्या विशेष के समस्त पहलुओ पर बातचीत करने से जनता को असलियत का ज्ञान हो जाता है। जिस बात को वे पहले सिर्फ महसूस करते रहे वही अब उनके लिए यथार्थ बन जाती है। इस स्थिति तक आने पर वे अपने हालात पर अनुचिंतन करने लगते है तब वे वस्तु नहीं रहते स्वय सचेतन बन जाते है। डी कोडिंग की स्थिति के बीच मुख्य शब्दा की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है। गदी बस्ती की बातचीत करते समय यह शब्द जनता की ज़बान पर रहता है। बोर्ड पर भी यह शब्द चित्र के साथ लिखा रहता है। इस प्रकार इस शब्द से उनके जीवन की हकीकत का रागात्मक तालमेल स्थापित हो जाता है। चित्र उनके लिए गौण हो जाता है और शब्द प्रमुख बन जाता है। चित्र क बगैर भी शब्द उनके मानस मे स्थिर रहता है।

यहाँ से अक्षर ज्ञान की प्रणाली शुरु होती है। शब्द को हिज्ञो मे विभक्त किया जाता है। फ्रेरे ने FAVELA शब्द चुना था ध्वनि के अनुसार इसे विभक्त किया गया FA/VE/LA और फिर FA FE FI FO FU/VA VE VI VO VU/LA LE LI LO LU ध्वनिया से नए शब्द गढने के लिए प्रौढो को प्ररित किया गया। फ्रेरे के साथियो ने अनुभव किया कि कुछ समय म ही लोगो ने सार्थक शब्द बनाने सीख लिये थे।

□

प्रकृति और शिक्षण

यह जानते हुए भी कि बच्चे अवलोकन से सीखते हैं खुले मैत्रीपूर्ण अकृत्रिम वातावरण में सीखते हैं संवाद इनके ज्ञान को अधिक पुष्ट बनाता है और स्वयं करके देखने से इन्हें अनुभव की अथाह सम्पदा हाथ लगती है अब भी हमारे यहाँ नब्बे प्रतिशत ऐसी स्कूल मिल जाएँगी कि जहाँ पढाई का अर्थ है कक्षा के दमघोटू वातावरण मे छात्रो को जबरन बिठाये रखना और एकमात्र अध्यापक की वाणी को ज्ञान का पर्याय परम सत्य मानना।

वर्षों से यही सब चल रहा है शिक्षा के नाम पर। तभी तो हमारे छात्रो मे वह स्फूर्ति वह चपलता और वह तजस्विता नहीं दिखाई देती जो स्वभावत उनमे होनी ही चाहिए। नियत्रित वातावरण मे बच्चो का अपना सोच कुठित हो जाता है जिज्ञासा मर जाती है और अवलोकन का एक बँधा बँधाया दायरा बन जाता है।

कक्षा की दीवारों मे क़ैद शिक्षण के इस युगो पुराने माहौल से अपने विद्यार्थियो को बाहर लाकर जीवन के सहज स्पदन को अपनी साँसो मे अनुभव करने का वातावरण देने वाली स्कूले चाहे गिनती की ही हो पर हमारे यहाँ है अवश्य। साथ ही ऐसे प्रयोगवीर अध्यापक भी हमने देखे है जो शिक्षण को अधिक स्थायी बनाने के लिए स्वय कम बोलकर भी अपने विद्यार्थियो को अधिक गतिशील होने का अवलोकन करने और स्वक्रिया का अवसर देते है।

ऐसे ही एक अध्यापक से 10-12 वर्ष पूर्व चूरू मे मुलाकात हुई। उनका लगभग पूरा समय बालको के साथ बीतता। बालक उनसे ऐसे घुले मिले थे कि दुनिया भर की बाते बेरोक टोक आपस मे करते और उनसे कतई खौफ नहीं खाते। कक्षा मे हालाँकि उनका विषय अंग्रेजी था पर विज्ञान सामाजिक ज्ञान इतिहास भूगोल गणित और हिन्दी मे भी उनकी समान रूप से रुचि थी। शाम को घूमने जाते तो कई

कई कक्षाओ के बालक उनके साथ साथ घूमने चलते। वे कोई खेल खेलते तो बच्चे भी लगन के साथ खेलते या उन्हे खेलते हुए देखते।

कई महीनो से हम दोनो साथ साथ रहते थे अत हमारे क्रियाकलाप भी साथ साथ चलते। एक शाम स्कूल से लौटते हुए वे कहने लगे कि अमुक कक्षा के बच्चो की पढाई मे वाष्पीकरण विधि से खारे पानी को मीठा बनाने सबधी एक पाठ आया है सोचता हूँ रविवार को उन बालको को पास के भालेरी गॉव ले चले जहॉ सौर ऊर्जा से एक कुएँ के खारे पानी को वाष्पीकरण पद्धति से मीठा बनाने का सयत्र लगाया गया है। ओर रविवार को बहुत सारे बच्चे मस्ती की तरग मे हाथो मे टिफिन लिए बस अड्डे पर तैयार थे। मै भी साथ था।

अलग अलग घरो से निकल कर आने वाले इन बालको ने बस मे एक जीवत वातावरण बना डाला। ढेर सारे किस्से तरह तरह के अनुभव मार्ग के खेतो पेड़ो और पक्षियो का अवलोकन रेत के टीलो का सौदर्य मुँह से निकले गीतो के स्वर और मस्ती से सब का मिलजुल कर एक साथ गाना–सचमुच पता ही नहीं लगा कि कब भालेरी आ गया। बस अड्डे पर रुकते ही सामने कुऑ था जिस पर हवा से चलने वाला पम्प लगा था काफी ऊँचा। पनचक्की की किस्म का वह सयत्र बालको के लिए एक आकर्षण था। हो हो करते चट से भागते हुए वे लोग कुएँ पर जा पहुँचे। वहॉ के मिस्त्री ने उन्हे सारी प्रक्रिया समझाई कि किस तरह हवा म घूमती चक्की से अपने आप धीरे-धीरे कुएँ से पानी निकलता रहता है ओर सीमेट की बनी उन कुडियो मे पहुँचता रहता हे जिन पर शीशे क मोटे मोटे कॉच लगे हैं और तेज धूप की वजह से जिनके भीतर का पानी गरम होता रहता है और भाप उठकर शीशो से टकराती हुई अलग नालियो से होती हुई मीठे पानी के रूप मे बाहर एक हौज म जमा होती रहती है।

बात बहुत छोटी थी पर देखने के साथ ही छात्रो को विज्ञान के एक सिद्धात का साधारणीकरण हो गया। बच्चो ने वहॉ के मिस्त्री जी से खोद खोद कर अनेकानेक प्रश्न पूछे अनेक जानकारियॉ बटोरीं। उन्होने कुएँ का खारा पानी पीया हौज मे गिरने वाले मीठे पानी को चखा। एक ने पूछा कि कितने घटो मे कितने गैलन पानी कुडियो मे जमा होता है और उसम से कितनी मात्रा मे मीठा पानी प्राप्त होता है? दूसरे ने पूछा कि खारे पानी से दॉत पीले होते है या मीठे पानी से? तीसरे की जिज्ञासा थी कि तब तो आप यहॉ सब्जियो की फसल भी ले सकते है?

तीस जोड़ी आँख और तीस जोड़ी उनके सवाल। दिन भर बच्चे वहाँ के बाग म फूलो और पौधो को निरखते रहे तितलियो को पकड़ते रहे आपस मे दल बनाकर सामूहिक खेल खेलते रहे। जब तक बस के आने का समय नहीं हो गया बच्चो की अपनी गतिविधियाँ चलती रहीं।

सन 1951 मे रूस के जाने माने शिक्षक एव शिक्षाविद वसीली सुखाम्लीन्स्की ने वालकों को पढ़ाने का एक नायाब तरीका निकाला। कक्षा के बद कमरा म बालका का बिठाकर पढ़ाने की बजाय उन्होंने उन्हें प्रकृति के खुले प्रागण म ले जाकर उनके अवलोकन को विकसित होने देना अधिक उपयोगी समझा।

चलो बच्चो स्कूल चले कहते हुए सुखोम्लीन्स्की बालको को बाग मे ले गए। बोले— हाँ हाँ बच्चो हम स्कूल ही जा रहे है। हमारा स्कूल नीले आसमान तले हरी हरी घास पर नाशपाती क छायादार पेड़ क बीच अगूर के बगीचे म हरे भरे मैदान म होगा।

बालको का लेकर वे अगूरवाटिका में गए। पेड़ो के पीछे एक शात कोने मे अगूर की बेले उगी थी। लोहे की सलाखो के ढाँचे पर चढी हुई बेलो से हरी झोपड़ी बनी हुई थी। झोपड़ी के अदर ज़मीन पर घास उगी थी जहाँ पूर्ण शाति थी।

वे बोले— यही हमारा स्कूल है। यहाँ से हम नीले आकाश को अपने बाग और गाँव को सूरज को देखेगे निहारेगे।'

प्रकृति की सुदरता पर मत्रमुग्ध बच्चे शात हो गए। वे अगूर के स्वादिष्ट फल खाना चाहते थे पर उन्हे पहले सौदर्य का रस पीने के लिए चारो ओर देखने को कहा गया।

सुखोम्लीन्स्की की मान्यता थी कि बच्चा क स्कूल का माहौल घरा क माहाल स ज्यादा भिन्न नहीं होना चाहिए। इससे पहले कि बच्चे किताब खालकर एक एक अक्षर करके शब्दो को पढ़ने लगे उनको ससार की सबसे अनुपम पुस्तक— प्रकृति के पृष्ठ अपने आप पढने दिए जाने चाहिए।

बालको की अवलोकन क्षमता बढाने के लिए उन्होने अपने विद्यालय मे प्रकृति भ्रमण को एक शैक्षिक आयोजन के रूप मे स्वीकार किया। एक शिक्षक के नाते वे स्वय बालको की प्रकृति से सीधे परिचित होना भी ज़रूरी समझते है क्योंकि बच्चो के बौद्धिक विकास उनके सोचने के ढग उनकी रुचियो शौक रुझानो, क्षमताओ और प्रवृत्तियो को जाने समझे बिना उनके अनुसार कोई शैक्षिक कार्य सभव नहीं है।

सुखोम्लीन्स्की के अनुसार कक्षा के कमरो मे बालको को एक

घटी से दूसरी घटी तक बिठाये रखना आसान है जबकि उन्ह खेतो मे ले जाना उनके साथ पार्क म जगल म घूमना कक्षा म पढाने से कहीं अधिक कठिन है। चारो आर की दुनिया को जानने समझने की प्रक्रिया मे ही बालको को चिंतन की भावनात्मक प्रेरणा मिलती है। शैक्षिक भ्रमण से बालकों के नैसर्गिक एव सतुलित विकास म मदद मिलती हे, साथ ही उनकी अभिव्यक्ति मे अद्भुत निखार आता हे।

उनके अनुसार मनुष्य प्रकृति के साथ जिन सूत्रा स बँधा है, उन्हीं की सहायता से उसे मानव सभ्यता की सपदा--मानवजाति द्वारा सचित ज्ञान से परिचित कराया जाना चाहिए। बच्चे के चारा ओर जो ससार है वह सर्वप्रथम प्रकृति का ही ससार है जिसम परिघटनाओ की असीम विविधता है जिसका सोदर्य अथाह है। यहॉ प्रकृति म ही बाल बुद्धि के विकास का शाश्वत स्रात निहित हाता है।

वे कहते हे "मैं बच्चो को इस तरह उनके चारा ओर की दुनिया से परिचित कराऊँगा कि वे हर दिन उसमे कोई नई बात खोजे कि हमारा हर कदम विचारो और शब्दा के स्रोत– प्रकृति के अनुपम सौंदर्य की यात्रा हो।" उनकी मान्यता है कि बालक अपनी प्रकृति से ही जिज्ञासु अन्वेषक होता है अत मेरा प्रयत्न यही है कि बच्च अपने चारो ओर वे ससार को उसके सजीव रगो म देखे मन के तारा का झनझनाने वाली उसकी ध्वनिया को सुने।

उनके अनुसार प्रकृति की हर यात्रा चिंतन का बौद्धिक पाठ होती है। प्रकृति के सक्रिय सज्ञान से सबधित बच्चा की जितनी अधिक गतिविधियॉ हागी उतनी ही अधिक गहराई स अधिक समझ के साथ वे अपने चारा और के ससार को देखेगे।

बालका को नियमित रूप से प्रकृति के अचल मे ले जाने तथा अवलाकन का उन्मुक्त वातावरण देने का परिणाम यह निकला कि पवलीश के विद्यालय मे प्रकृति पुस्तक के 300 पृष्ठ तैयार हो गए। सप्ताह म दो बार व प्रकृति के अचल मे जाते थे-- सोचना सीखने के लिए। यह महज्ञ सेर सपाटा नहीं था अपितु चिंतन के पाठ थे। रोचकता, ज्ञान एव आत्मिक समृद्धि का एक सुदर आयोजन बन गया वह। वहाँ से नए-नए वैविध्यपूर्ण विचार मिलते हैं। बालका ने वनस्पति जगत और जीव जगत पानी की बूँद की यात्रा 'मनुष्य प्राकृतिक शक्तिया का उपयोग करता है वसत मे प्रकृति का जागरण 'गर्मिया के फूल 'तालाब मे जीवन नदी के ऊपर इन्द्रधनुष 'सारस आ गए आकाश पर तारे हरी पत्ती सूरज का भडारघर 'खुंबियॉ और काई आदि अनेक

पुस्तक पढते हुए बच्चो मे एक विशेष गुण का विकास हुआ अमूर्त अवधारणाओ से काम लेते हुए बच्चे मन ही मन उन बिम्बो और चित्रो का खयाल करते थ जिनके आधार पर य अवधारणाएँ निरूपित हुई।

प्रकृति के अवलोकन ने बालको को नव-नवोन्मेषशालिनी कल्पना तथा अभिव्यक्ति की ताजगी दी। सुखोम्लीन्स्की ने अपनी बाल पुस्तक "सिगिग फीदर मे ऐसा ही एक अनुभव लिपिबद्ध किया है।

एक अध्यापिका एक बार पहली कक्षा के कुछ बच्चा को अपने साथ खेत मे ले गई। शरद की शात सुबह थी। दूर आकाश मे प्रवासी पक्षिया का झुड कतार बाँधे उड़ा जा रहा था।

अध्यापिका ने बच्चो से कहा आज हम शरद के आकाश और प्रवासी पक्षियो की जानकारी प्राप्त करेगे। तुम मे से हरेक यह बताएगा कि इस समय आकाश कसा ह? बच्चो' जरा ध्यान स दखा। सुदर और सही शब्द चुनकर जवाब दो।

बच्चे शात हो गए। वे आकाश को देखते हुए सोचने लगे। एक मिनट के बाद ही नन्हे नन्हे उत्तर मिलने शुरु हो गए

'आकाश नीला है

आसमानी है

'स्वच्छ है

नीला हरा है

बच्चे बार बार य शब्द दोहरा रहे थे।

एक बालिका एक तरफ खामोश खड़ी आकाश को और पक्षियो के झुड को देख रही थी। अध्यापिका ने पूछा तुम क्या चुप हो बेटे'

धीरे से वह बोली आकाश स्नेहमय है और एक विषाद भरी मुस्कान उसके चेहरे पर उभर आई।

बच्चे चुप हो गए। अब वे ऐसी बाते देखने लगे थे जो पहले नहीं देख पा रहे थे।

आकाश उदास है

आकाश चितित है

'आकाश दुखी है

आकाश निष्ठुर है

बच्चो के सामने आकाश खेल रहा था सुबक रहा था साँस ले रहा था मानो सजीव हो।

हमारे लिए सोचने की बात है कि क्या बालकों की दृष्टि का ऐसा प्रसार और बदलाव कक्षा की चहारदीवारी मे कभी सभव है? काश

हम विद्यालयी शिक्षा को प्रकृति के विस्तीर्ण अचल मे ले जाएँ ताकि बालको म उल्लास रहे उनकी कल्पना को नए पख मिलें अभिव्यक्ति म वैविध्य और कलात्मकता आए। पाठ्यक्रम की जकड़न को कम करके जिन निजी विद्यालयो ने अपनी दिनचर्या मे प्रकृति और शिक्षण के दोनो छोरो को जोड़ने की चेष्टा की है वहाँ के विद्यार्थिया मे चिन्तन की नूतनता देखते ही बनती है। सुखोम्लीन्स्की के इन विचारा को अपने विद्यालया की पौधशाला मे विकसित किया जाना चाहिए।



बालको की स्वतत्रता

गिजुभाई का नाम लेत ही मेरे सामने एक ऐसा व्यक्ति आ खड़ा होता ह जिसकी शिक्षा मे अनत आस्था थी जो शिक्षा की असली ताकत से परिचित था कि इसके माध्यम से परिवर्तन लाया जा सकता है कि विद्यार्थिया के व्यक्तित्व को वाछित आकार दिया जा सकता है कि रुढ सामाजिक मान्यताआ को बदला जा सकता है।

गिजुभाई का नाम आते ही मेरे सामने एक साधारण सा लेकिन असाधारण शिक्षक आ खड़ा होता है जिसने अधविश्वासा रुढियो और बँधे बँधाए शक्षिक प्रबध के बावजूद विद्यार्थियो को विद्यालयी व्यवस्था के कड़े शिकजे स बाहर निकाला था जिसने पाठ्यक्रम की सत्ता को खुली चुनौती दी थी और बालका के लिए सधी जीवन निर्मात्री एव विमुक्तकारी शिक्षा का प्रबध किया था।

मर लिए गिजुभाई का नाम एक ऐसे विचारशील प्रयोगनिष्ठ आर साहसी शिक्षक का पर्याय है जा पूरी तरह से बालको के लिए समर्पित हे जा गुलाम मानसिकता को तोड़कर स्वतत्रता और सृजनशीलता की बात करता है जा सिद्धान्त नहीं बघारता अपितु अनुभूतिविहीन आयातित सिद्धान्ता की धज्जियाँ बिखेरता है जो स्वय अपन अवलाकन और प्रयोग म भरोसा रखता है ओर अपने व्यावहारिक सिद्धान्तो का कड़ाई से पालन करता है। याने जो सिद्धातवादी नहीं व्यवहारवादी है और पक्का मानववादी है।

गिजुभाई की साधारणता म ही उनकी असाधारणता थी क्योंकि उनकी नज़र जीवन क बुनियादी प्रश्नो और समस्याआ पर थी। उनका शिक्षण शिक्षण के लिए नहीं था—रग रूप विहीन एकरस और उबाऊ अपितु वह जीवन के लिए था—सोद्देश्य सप्रयोजन सरस और ताज़गीपूर्ण।

गिजुभाई ने एक ऐसा पेचीदा काम कर दिखाया था कि जिसे देखकर अगर कोई यह कह दे तो क्या आश्चर्य कि यह कौनसी बड़ी

बात है यह तो मै भी कर सकता हूँ। पर उसकी खूबी यही है कि कहने से तो वह काम हर्गिज नहीं हा सकता। करके भी अगर कोई सफल हो जाए तो क्या कहने' वह काम है—बालको को डराये धमकाये बिना प्यार से पढाना और अनुशासित रखना। इस सिद्धात को गिजुभाई की शिक्षा जगत को देन कहना समीचीन होगा।

बहरहाल शायद पाठकगण इस कथन का समर्थन अवश्य करेगे कि जब तक किसी का कलेजा भीतर से नहीं जलता तब तक वह निष्ठा और वह सलग्नता चितन की वह दीप्ति और कर्म की वह गतिशीलता आ ही नहीं सकती जो बुद्ध ओर मुहम्मद म या महात्मा गाँधी ओर मॉटेसरी जैसी विभूतिया मे थी। गिजुभाई को मे इन विभूतियो की काटि म रखने का दुस्साहस नहीं करूँगा पर उनके हृदय की दग्धता उनकी सलग्नता उनकी वैचारिकता ओर परिवर्तन लाने की क्षमता वेशक विशिष्ट थी।

भला एक वकील को क्या पड़ी थी कि अपनी अच्छी भली वकालत का छोड़ कर स्कूल के जरा-जरा से घीं छोकरो से माथा मारे? आज की तरह स्कूले खोलना उन दिनो आर्थिक लाभ का सौदा ता था नहीं। यह स्थिति ध्यान देने योग्य है कि गिजुभाई के पिता भगवानजी बघेका ता मास्टरी छोड़कर वकालत की तरफ गए थे ओर वे थे कि प्रतिष्ठा और पैसे के उस व्यवसाय को तज कर उल्टी गगा वहा लाए। आप भी हैरान हागे कि भला शिक्षण मे ऐसे क्या सुर्खाब के पर लगे थे कि गिजुभाई किसी मशीन क गरम पुर्जे की तरह वकालत से छिटके और ढडे होकर शिक्षण से आ जुड़े। वस्तुत इसके पीछे दो कारण है एक तो यह कि अपने बचपन की यातनापूर्ण स्कूली शिक्षा का उनके मन पर भारी दबाव था। एक एक बात जेस उनके जेहन म ताज़ा थी कि किस बेरहमी से बालको को पीटा जाता था केसा अमानवीय सलूक उनके साथ किया जाता था स्कूल तो स्कूल घर म भी आतक और मारपीट का राज था बच्चा की रुचि ओर इच्छा की कहीं कद्र नहीं थी नसीहते और फरमान हर वक्त उन पर आयत रहते थे आदि आदि। दूसरा बड़ा कारण था उनके घर मे पुत्र का जन्म और उसकी सुशिक्षा की चिता।

इस सम्बध म गिजुभाई ने अपनी पुस्तको मे स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है कि बचपन म कैसी शिक्षा प्रक्रिया के दौर से गुज़रे हैं वे। आइए जरा उन्हीं के अतर्साक्ष्य से उनके मन पर पड़ने वाले दबावा का हम अनुमान लगाएँ और सोचने का प्रयास कर कि उन परिस्थितिया

से बचने के लिए उन्होंने स्वयं अपने क्या-क्या शिक्षण सिद्धांत निर्मित किये थे। एक बार अभिभावकों की सभा को सम्बोधित करते हुए गिजुभाई ने कहा था

मैं आपको सच्चे मन से व गंभीरता से पूछना चाहता हूँ कि अपने हाथ में डंडा लेकर घूमने वाले और मुहारनी रटाने वाले धूल भरी पाठशाला के वे मास्टरजी आपको याद आए कि नहीं' साथ ही साथ आपकी स्मृति में वह गंदी पाठशाला और उसमें किसी गाड़ी में खचाखच भरे बकरों और कुत्तों की मानिंद बैठे लड़के और उन सब के बीच हाथ में पाटी बरता थामे मैले कुचैले कपड़े पहने थूक से पाटी साफ करते और मास्टरजी की तरफ बार बार तिरछी नज़रों से यह देखते कि अब वे किसकी मरम्मत करने वाले हैं स्वयं आपकी अपनी याद आएगी।

मुझे भी बड़ी शर्मिन्दगी के साथ उसे याद करना पड़ता है। शाला जीवन के मधुर संस्मरणों में सम्मिलित इन कटु अनुभवों को भुलाने के लिए मैं मधुर संस्मरणों को अधिक याद करता हूँ, पर कक्षा में जर्दा खाने वाला वह अध्यापक-हम गालियाँ देने वाला और हमारे माता पिता की मज़ाक उड़ाने वाला वह अध्यापक भुलाये नहीं भूलता। अपना रौब जमाने के लिए ही वह लड़कों को पीटता था। जब उसे पढ़ाना न होता तो नक्शा देखो गिनती लिख कर लाओ -ऐसा काम सौंप देता था। तड़ातड़ तमाचे खाते लड़कों को मैंने अपनी आँखों से देखा है और कभी-कभार मेरा अपना गाल भी तमतमाया है। मैं विश्वासपूर्वक बता रहा हूँ कि शिक्षकों को हमसे कोई लेना देना नहीं था। हम गृहकार्य करके ले आते और वे भौंहें चढ़ाए हमसे ले लेते। घंटी बजते ही हम शाला से ऐसे छूटते थे जैसे पिंजर से कुत्ता। जब कभी मास्टरजी बीमार होते थे तो हम बहुत खुश होते कि आहा आज पढ़ना नहीं है।' किसी की मृत्यु पर शाला में जब छुट्टी होती थी तो हमारे मज़े ही मज़े थे।

हमें मास्टरों की नक़ल उतारना खूब आता था। पढ़ाने में सबसे अधिक होशियार अध्यापक हमें सबसे अधिक नापसंद था इसके विपरीत पढ़ने से छुट्टी देने वाला और गृहकार्य देने वाला शिक्षक हमें बहुत पसंद आता था। परीक्षा में नक़ल कराने वाले अध्यापक हमें बहुत पसंद आते थे। उन दिनों हमें यह ज्ञान कहाँ था कि नक़ल करवा कर अध्यापक परीक्षक के साथ धोखा करता है।'

हमारे साथ विट्ठल नाम का एक लड़का था। उसको कुछ आता जाता नहीं था। हमारे मास्टरजी उस पर बहुत क्रुद्ध होते। उसका हाथ

मरोड़ कर ऐसा घूँसा जमाते थे कि बेचारे की जान निकल जाती थी। यही नहीं ऊँचे स्वर मे ताने अलग मारते– क्या श्रीमान' आता नहीं? कब आएगा?

पीटने के अनेक तरीके शाला मे प्रचलित थे। घूँसा मारना तमाचा जड़ना चूँठिए भरना स्केल से पीटना–ये सब सामान्य तरीके थे। ओर भी कई तरक़ीबे मास्टरो ने ईजाद कर ली थीं। कभी व टेबिल पर हाथ रखा कर स्केल से पीटते। घूँसा जमाना होता तो चालू तरीके स नहीं विधि विधान से मारते। पहले लड़के को उल्टा घुमाते तब नाक तक अपना मुक्का ले जाकर धम्म से उसकी पीठ पर जड़ देते।

हमारी शिक्षा याने जानकारी जानकारी जानकारी' ज्ञान ज्ञान ज्ञान' इतिहास की घटनाएँ वर्षवार हमे याद थीं। महाजनी हिसाब और पाठ तो फर्राटे से याद थे। कविता और उसके अर्थ भी याद थे। भौतिकशास्त्र और शरीरविज्ञान के विवरण भी कठस्थ थे। ये सब चीज़ें याद थीं पर इनसे यह पता लगाना मुश्किल है कि इल्म विकास कहाँ था किस चरण पर? लेकिन हमारी पढ़ाई का स्तर यही था।

हमारी शाला शिक्षण की प्रयागभूमि नहीं थी वह क्रीणागण नहीं थी यह नाट्यशाला नहीं थी सग्रहालय भी नहीं थी। न कला-मन्दिर थी। वह बगीचा भी नहीं थी। टूटी-फूटी चार दीवारे मैला कुचैला उखड़े तले वाला ऑगन, दागों से भरी हुई बेच टूटी हुई पाटी और फटी हुई किताबों वाले हम और डडा हाथ म लेकर घूमते हमारे मास्टरजी' बस यही हमारी शाला थी।

यहाँ हम बहुत-सारे अपराध करते थे। हम आपस मे बात करत स्कूल का काम नहीं करते कबूतर उड़ात मास्टरजी की कोई चीज़ टेबिल से उठा लेते उनकी नक़ल उतारते किसी विद्यार्थी को जवाब नहीं आता तो उसे मार से बचाने के लिए उतर हम लिख देते हम खेल याद आते थे तो जाहिर है पढ़ने में हमारा ध्यान नहीं रहता था हम इधर उधर देखने लग जाते थे अध्यापकजी बार्ड पर हम सवाल हल करना सिखाते थे और हमे उसमे मज़ा नहीं आता था हम कक्षा मे झाके खाते घर से काम करके लाने को दिया जाता और किया न होता तो डर के मारे हम बहाना बनाते कि सिरदर्द था। हम मास्टरजी का डडा छुपा देते या उसे तोड़ देते। ये सब हमारे अपराध समझे जाते थे और हम थे अपराधी। फिर शिक्षाशास्त्र के अनुसार हमे सज़ाएँ दी जाती थीं कि खड़े रहो अगूठा पकड़ो उठ-बैठ करो तमाचे खाओ आदि आदि। अगर कोई सज़ा दने के विविध तरीको की सूची तैयार करे तो शालाओ का अच्छा-खासा पीनल

कोड तैयार हो सकता है।

ये तो हुए गिजुभाई के स्कूली जीवन के कुछ अनुभव। अब जरा घरो में मिलने वाले व्यवहार को भी जान ले

क्या आपको अपनी बाल्यावस्था याद है? वर्षो पीछे अतीत मे दृष्टिपात करके जरा उस अवस्था को तो आप याद कीजिए क्या वह आपको याद आती है? हम छोटे थे और घर मे हम छोकरे समझे जाते थे। वहाँ हमारा स्थान कहीं नहीं था। घर बड़ो का था और हम लोग उनमे समाए हुए थे। बड़ो की बड़ी बड़ी और उनकी रुचि की जीवन सामग्री से हम जीना पड़ता था। बड़ो के धर्म और उनके आचार व्यवहार के अनुसार हम भी अपनी दृष्टि अपना धर्म और अपना आचार व्यवहार तय करना पड़ता था। बड़ो के बोलते समय हमे खामोश होकर बैठना पड़ता था। जब बड़े लोग खाना खा रहे होते तो हमें भी उनके साथ साथ खाकर उठने के लिए ग्रास झटपट गले उतारने पड़ते थे। बड़े लोगो के मेहमानो के पास हम 'जी हाँ जी नहीं' कहते हुए अदब से खड़े रहते थे और उनको सुनाने के लिए उनकी पसद की कविता हमे सीखनी पड़ती थी।

क्या हम लोगो ने अपने बचपन मे कदम कदम पर यह महसूस नही किया कि हम बच्चे है अत माता पिता स्वय खुश होने के लिए अपनी पसन्द के कपड़े हमें पहनाते है। अपनी मौज मस्ती के लिए ही वे अपनी इच्छानुसार हमे खिलाते पिलाते घुमाते खेलाते है। मेहमानो के आने पर वे हमे इगित करके हमारे प्रदर्शन द्वारा अपना मान बढाते है। समाज मे घुमाने फिराने ले जाते समय भी बस इसी कारण से हमे सजाते सॅवारते है कि कहीं उन्हे शरमाना न पड़े। घर मे भी अच्छी अच्छी चीज़े बस इसीलिए जुटायी जाती है कि एक धनवान माता पिता से दूसरा धनवान माता पिता हमारे लिए याने बच्चो के लिए अधिक खिलौने रखता है यह अभिमान जताया जा सके।

अगर हम अपने बचपन को याद करे तो याद आएगा कि आटा साते समय हम लोग माँ से पूड़ी बेलने के लिए आटा मॉगते थे और पूड़ी के बजाय उसका चूहा या मछली बनाने लगते कि माँ से बेलन की मार खाते। हमे याद आएगा कि पिता ने जब से हम नाटक दिखाया था हम भी नाटक खेलने का शौक चर्राने लगा और राजा बनने के लिए हमने पिताजी की स्याही की दवात से अपनी मूँछे बनाई नहीं, कि मार खाई। हमे यह भी याद आएगा कि हमें कागज पेंसिल आदि कुछ भी नहीं मिला और यह गदी हो जाएगी खराब हो जाएगा की नसीहते

क बावजूद हमने रसोईघर की दीवार पर कोयले स चित्र बना डाले और उसके लिए छोटी चाची ने हमारा हाथ पकड़ कर अच्छी खासी धुलाई की होगी।

अब ये बात किसे याद नही कि घर के ऑगन मे बैठे बैठ हम गट्टे खाद रहे थे तो वहाँ से दालान म पड़ जूता को हम एक कतार मे सजा रहे थ तो वहाँ से पालने या झूले की लोहे की छड़ा पर हम लटक रहे थे तो वहाँ स ज़ीने वाली कटहरी से हम फिसल रहे थे ता वहाँ से लीपने के लिए लाए गए गोबर स हम माँ की तरह उपले बना रहे थे तो वहाँ स यूँ न जाने कहाँ-कहाँ से हम नहीं खदेड़ा गया और यह नहीं कहा गया कि 'जाओ अपना पाठ याद करो हटो एक तरफ बैठ जाओ।'

इस प्रकार गिजुभाई ने बाल मन की अनेक बाता उनकी जिज्ञासाओ उनके उलाहना को हमारे सामने रखा है और इनक द्वारा शिक्षा सिद्धान्त शिक्षण विधि एव मनोविज्ञान की अनेक बारीकियो पर प्रकाश पड़ता है।

तो इन साक्ष्यो स स्पष्ट है कि गिजुभाई का मन बालका की सुशिक्षा के लिए कितना दग्ध था। वे रात दिन बालको का ही चितन करते रहते थे। उनका अवलोकन उनकी क्रियाएँ उनकी लेखनी और वाणी सभी कुछ बालक के निमित्त थी बालान्मुखी थी। अगर मै यह कहूँ कि बाल शिक्षण को आराधना क स्तर पर ग्रहण करने वाले वे एक उपासक शिक्षक थे तो अतिशयोक्ति नहीं हागी। उन्ह निरन्तर अपने काना म जैसे बालका का मूक क्रदन सुनाई देता था कि श्रीमान जी! हम भी इन्सान है। हमारी तरफ देखो हमारी बात सुनो हमारे साथ इन्साफ करो हम सम्मान दो माता पिता के अज्ञान और झूठे प्रेम से हम बचाओ हमारी आज़ादी के लिए सघर्ष करा।' और कहना न होगा कि गिजुभाई बालका के वकील हो गए।

उनकी सम्पूर्ण बाल शिक्षण योजना का केन्द्रीय भाव था बाल स्वातत्र्य। उन्हाने एक ऐसे विद्यालय का सपना सँजोया था जा बालको का स्वतत्र राज्य हो जहाँ बच्चे ही एक मात्र वी आई पी हा जहाँ भय और तनाव से मुक्त स्वच्छन्द वातावरण मे उन्ह खेलने ओर काम करने का प्रेरक माहौल मिले। जबरदस्ती पढाना शिक्षण नहीं सज़ा है। बालकों को स्वय शिक्षण के लिए अभिमुख होने दिया जाए। अत उनके शिक्षण की पहली शर्त है स्वतन्त्र और मुक्त वातावरण। इसके बिना सृजनशीलता नहीं आ सकती।

गिजुभाई के शिक्षा सिद्धान्त स्वतन्त्रता स्वनिर्भरता स्वानुशासन और सृजन की बुनियाद पर निर्मित हुए है। उनकी इच्छा थी कि परम्परागत त्रासवादी बाल विरोधी अध्यापक-केन्द्रित शिक्षण पद्धति के विपरीत प्रेम प्यार पर आधारित नए शिक्षण का सूत्रपात किया जाए जिसमे केन्द्रीय स्थान बालक का हो। सौभाग्यवश उन्हीं दिनो गिजुभाई ने मेरिया मोंटेसरी की 'मोंटेसरी मदर नामक पुस्तक पढी और उनके जीवन मे एक नयी रोशनी का सचार हुआ। मोंटेसरी के सम्पूर्ण साहित्य का उन्होंने गहन स्वाध्याय किया और उनके सिद्धान्तो के आधार पर 'दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर भावनगर मे शिक्षण का सूत्रपात किया।

मोंटेसरी की भाँति गिजुभाई भी शिक्षा का अर्थ विकास ही मानते थे। याने मनुष्य स्वय मे एक विकासशील प्राणी है। कोई कुछ नहीं करेगा तब भी वह विकास तो करेगा ही। अगर शिक्षण के द्वारा उसके विकास को दिशा दे दी जाए तो वह विकास सकारात्मक होगा समाज के अनुकूल होगा।

गिजुभाई ने बाल शिक्षण मे सर्वाधिक महत्व उन्हीं कार्यों और प्रवृत्तियो को दिया था जो बालकों के विकास को गति देने वाली थीं। बालको के सतत अध्ययन अवलोकन तथा उनसे बातचीत करके उनकी आवश्यकताओ को पहचानने पर उन्होने बल दिया। अन्य विद्यालयो की कार्य प्रक्रियाओ का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उन्होने जो व्यवहार सूत्र तय किये थे उनमे बहुत बडी बात थी बालको को पाठ्यक्रम और समय विभाग चक्र की बेडी से मुक्त करना। बच्चो को न उन्हे शहरी बनाना इष्ट था न राजभक्त वफादार नागरिक न धनवान न सत्ताधीश मात्र मनुष्य बनाना इष्ट था। अत शिक्षा और परीक्षा सबो का लक्ष्य उन्होने मनुष्य का विकास होना रखा।

उन्होने कहा कि विकास का आधार अनुभव होना चाहिए और अनुभव स्वतन्त्र क्रिया करने मे निहित रहता है अत बालको के लिए वैविध्यपूर्ण प्रवृत्तियाँ ही अधिकाधिक सँजोनी चाहिए। शिक्षण क्या सिर्फ कक्षा कक्षा मे ही होता है घर परिवार प्रकृति का प्रागण और चारो ओर का परिवेश शिक्षण का जीवत स्थल है। गिजुभाई ने इन सबो का शिक्षण मे भरपूर उपयोग किया था।

उनका विश्वास था कि मनुष्य की शिक्षा इस बात मे है कि वह साधर्म्य वैधर्म्य एव क्रम को समझे बुद्धि के विवेक को समझे दूसरो के अनुभवो को तीव्रता के साथ अनुभव करे और अदृष्ट या अमूर्त की कल्पना न करे। विशाल प्रकृति से या सृष्टि से प्रत्यक्षतया यह सीख प्राप्त

करना कठिन है। कारण यह है कि इस सृष्टि मे विद्यमान अनेक तत्व सीधी तरह से हमारे सामने प्रत्यक्ष नहीं होते साथ ही मनुष्य के लिए वे अत्यन्त विशाल होते है अतएव मनुष्य सफलता एव सरलता से तभी शिक्षा ग्रहण कर सकता है जब शिक्षण के उपकरण प्राकृतिक तत्वों के प्रतिनिधि रूप हो याने प्रत्यक्ष रीति से शिक्षा देने वाले हो। गिजुभाई ने इसी विचार से बाल शिक्षण म मांटेसरी के शिक्षण उपकरणो को शामिल किया था।

बुनियादी रूप में जिस चीज़ को गिजुभाई ने बाल मन्दिर मे सर्वाधिक महत्व प्रदान किया था वह थी विविध शैक्षिक प्रवृत्तियाँ। उनकी उपस्थिति मे एक ओर सगीत की विविध प्रवृत्तियाँ चलतीं तो दूसरी ओर बच्चे कला एव कारीगरी के बीसो काम रुचिपूर्वक करने मे जुटे रहते। अपने लोकगीतो लोकनृत्यों से उन्होने शिक्षण को रोचक बनाया। स्वय वे भी सैकड़ो तुकबदियाँ करके बालको को आह्लादित करते थे। खेलो म उन्होने एक ऐसा खेल जोड़ा था जो सामान्यतया अन्यत्र देखने म नहीं आता— याने शाति की क्रीड़ा। इसका मुख्य प्रयोजन था मन की शान्ति क्रियाकलापो मे शान्ति एव अनुशासन लाना तथा बालको म नियत्रण की गति पैदा करना। कर्णेन्द्रियो की शिक्षा म यह प्रवृत्ति विशेष रूप से सहयोगी थी। खेल की यह प्रवृत्ति इतनी विराट और व्यवस्थित बन गई कि गिजुभाई ने इसका एक शास्त्र लिख डाला। जीवन-व्यवहार के विविध कार्यों को उन्होने बाल मदिर मे लगभग स्थाई बना डाला जैसे नाश्ता करना परोसना बर्तन साफ करना आँगन व कमरा बुहारना कपड़े धोना कघी करना आदि। इनसे बालको मे स्वावलबन और आत्मविश्वास पुष्ट होता है। भाषा शिक्षण और गणित शिक्षण को गिजुभाई ने इतना रोचक बना दिया कि घनमूल और वर्गमूल की बाते बच्चे अत्यन्त सहजता से हृदयगम कर लेते।

गिजुभाई की शिक्षण विधियो मे सर्वाधिक क्रातिकारी और प्रभावी विधि थी— कहानी कहना। वे इतने कुशल कथाकार थे कि इस विशेषता के कारण उनका दक्षिणामूर्ति बाल मदिर दूर दूर तक विख्यात हो गया था। यहाँ यह बताना अप्रासगिक नहीं होगा कि वे गुजराती 'बाल साहित्य के ब्रह्मा' कहे जाते हैं। उन्होने 200 के आस पास बाल साहित्य की पुस्तके लिखी थी और कहानी-कहने की कला पर 287 पेज का एक पूरा ग्रन्थ लिख डाला था। अपने साथी अध्यापको से उन्होने कहा था 'लो ये कहानियाँ सभालो। इन्हे बालको को सुनाना। वे उमग के साथ इन्हे बार बार सुनना चाहेगे। देखो कहानी सुन्दर ढग से कहना कहानी कहने की भगिमा

को स्मरण रखना उसी लहजे के साथ कहना रुचिपूर्वक कहना। कभी कभार कहानी को पढकर भी सुना देना। जैसे बालक हो वैसी कहानी चुन लेना। पर दोस्तो एक काम मत करना। परीक्षा के लिए इन्हे हरगिज मत पढाना। तुम स्वय अनुभव कराओगे कि कहानी कैसी अदभुत जादू की छडी है। अगर तुम बालको से स्नेह सम्बन्ध जोडना चाहो तो कहानी से शुरुआत करना। अगर तुम बालको को अभिमुखी बनाना चाहते हो ता कहानी जबर्दस्त साधन है। पर प्रकाण्ड पडित बनकर कहानी मत कहना ज्ञान बघारने मत बैठ जाना बिल्कुल तटस्थ रह कर कहना। तुम खुद कहानी मे नहाना और बालको को भी नहलाना।

कहानी से जुडी हुई प्रवृति है बाल-नाट्य। बाल मदिर मे उन्होने विशेष रूप से बाल रगमच बनवाया था और नियमित रूप से नाटको के आयोजन करते थे। आश्चर्य की बात यह कि किसी भी बालक को सवाद याद कराने की या मचन के समय नेपथ्य से सकेत देने की ज़रूरत नहीं पडती थी। कथानक बच्चों के जेहन मे इस प्रकार से छाया रहता था कि वे स्वत उसके सवाद बनाकर बोलते जाते। गिजुभाई स्वय बच्चो के साथ नाटक म भूमिकाएँ किया करते। इससे बालको का अभिव्यक्ति प॰। निखरता था।

बाल मन्दिर की अनेकानेक शैक्षिक प्रवृत्तिया का मुख्य प्रयोजन यही था कि बालका की अभिव्यक्ति निखरे ■ अनुशासित बन वे स्वनिर्भर तथा स्वतन्त्र चेता हो। स्थान स्थान पर गिजुभाई ने इस पक्ष पर बल दिया है कि बालको को गुलाम वृति का न बनाने दे। घर और शाला मे अगर हम यही नियम स्थिर रखेगे कि बालक प्रत्येक काम हमसे पूछ कर करे तो जाहिर है हम उनकी स्वतत्र बुद्धि को नष्ट कर देगे। पूछ पूछ कर काम कराने स बालक म यही वृत्ति पैदा होगी। स्वतन्त्र वृत्ति स रहित बालक गुलाम होता है और गुलाम का अपना दिमाग नहीं होता। अपने मस्तिष्क को उपयोग म न लाने से बालक म अविश्वास भरता है अविश्वास से पराधीनता पैदा होती है। गिजुभाई ने अपनी शाला म इस बात पर बल दिया कि बालक को स्व निर्णय की छूट रहे, बल्कि उन्होने तो साथी शिक्षको तक को इस बात की ताकीद कर दी कि बालकों को उनका अपना दिमाग लगाकर स्वय काम करने दिया जाए।

उनकी मान्यता यह भी थी कि शिक्षा देने का काम शाला का ही नहीं अभिभावको का भी है और बाल शिक्षण की जो विचारधारा शाला तय करती है वही अभिभावको को स्वीकार करनी चाहिए। याने शाला समय के उपरान्त जब बच्चे घर लौटें तो घर परिवार म माता पिता द्वारा

बालको को वही व्यवहार मिलना चाहिए। यह दृष्टि पनपाने वालो मे गिजुभाई कदाचित पहले शिक्षाविद थे। उन्होने माता पिता एव अभिभावका के लिए शिक्षा शिक्षण बाल मनोविज्ञान और शिक्षण विधि सबधी काफी साहित्य लिखा था। इस नाते उनकी 'माता पिता से 'माता पिता के प्रश्न माँ बाप बनना कठिन है 'माता पिता की माथापच्ची आदि पुस्तक अत्यन्त रोचक व उपादेय है।

गिजुभाई के बाल मन्दिर मे एक और अदभुत प्रवृत्ति चलती थी– माता पिता की सभाएँ। यह विशेषता गिजुभाई की ही थी कि उन्होने बालका का भी विश्वास अर्जित किया था और उनके माता पिता का भी।

निरन्तर जन सम्पर्क और पत्राचार से ये सबा को समझाते रहते थे। बैठको मे माता पिता उनसे मुक्त भाव से अपनी जिज्ञासाएँ और चिंताएँ पूछत और उनका समाधान लेकर लौटते। गिजुभाई उनको बराबर समझाते रहते कि बच्चो के साथ मार पीट या डॉट फटकार न करे उन्हे साफ सुथरा रखे उनके मन को समझे और उनकी रुचि के रचनात्मक काम करने दे। कई बार उनके पास माता पिता के पत्र आते थे और वे पूरी तरह से समझा कर उनका समाधान करते थे।

एक बार एक माँ ने गिजुभाई को एक लबा पत्र लिखा आप बालकों की स्वतन्त्रता के हिमायती है। समय समय पर अपने भाषणो व लेखो मे आप बच्चा को मुक्त करने की बाते करते हैं। पर मै तो अपने बच्चे से बहुत ही परेशान हो गई हूँ। आपने जो रास्ता सुझाया था उसे दो माह तक आजमा कर देख लिया। उसे किसी भी बात के लिए मैंने मना नहीं किया। कोई भी काम करने से नहीं रोका। जो जो कहता गया करती गई पर उससे वह कोई विशेष सुखी हुआ हो ऐसा नहीं लगा। मात्र जो कुछ हुआ है वह मेरी सहन शक्ति स बाहर की चीज़ है। पत्र म आगे उसने बच्चा द्वारा तोड़ फोड़ एव अव्यवस्था फैलाने वाली घटनाओ का जिक्र करते हुए मार्गदर्शन मॉगा था।

पत्र क उत्तर म गिजुभाई ने लिखा मैं इस विश्वास के साथ पत्र का जवाब लिख रहा हूँ कि आपको बुरा नहीं लगेगा कि स्वातत्र्य के सिद्धान्त को आप अभी अच्छी तरह से नहीं समझीं। स्वातत्र्य का अर्थ आपने यही लिया प्रतीत होता है कि बालक को किसी भी बात के लिए मना नहीं करना चाहिए वह जो भी कहे करते रहना चाहिए। जहाँ स्वातत्र्य का यह अर्थ लिया जाता है वहाँ माता पिता तो परेशान होते ही हैं बच्चा भी सुख से नहीं रह पाता। अलबत्ता बालक जो कुछ काम कर रहा है उसमे बाधा नहीं देनी चाहिए लेकिन हमे बालक को

'नकार' से भी उबारना होगा। बाधा न देने और मना न करने की भी मर्यादा होनी चाहिए। बालक को आज़ादी देने का हमारा प्रयोजन यह है कि वह अपने शरीर मन एवं आत्मा का विकास पूरी तरह बिना बाधा के कर सके। यह प्राणी मात्र का प्राकृतिक अधिकार है पर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी ठहरा। अत अगर वह सामाजिक परिवेश की उपेक्षा करके विकास करने का प्रयत्न करता है तो स्वय समाज उसके विकास मे बाधा डालने लगता है। जो काम असामाजिक लगें वे बालक को करने नहीं देने चाहिए। जैसे बालक कीचड़ सने पैर लेकर कालीन पर चला आए तो उसे टोका जाना चाहिए। अगर आप बालक के कहे मुताबिक करने लगेंगी तो बालक को पूरी तरह से परतन्त्र बना डालेगी। आइंदा आप अपने पुत्र को उचित काम करने की छूट अवश्य दे पर भूल कर भी प्रेम जताते हुए सारे काम आप खुद करने न बैठ जाएँ।

इसी प्रकार बालको को स्वावलम्बी बनाने के लिए भी उन्होने बाल मन्दिर मे अनेक प्रवृत्तियाँ सँजो रखी थीं। बहुधा माता पिताओ और साथी अध्यापको से वे बालको के स्वावलबन के बारे मे चर्चा करते थे। इस सबध मे उनके अलग अलग स्थानो पर बिखरे हुए विचार यो हैं

बच्चा जन्म से ही अपने कार्यों मे स्वाधीन बनने का प्रयत्न करता है। शुरू मे यह माता पर आश्रित रहता है बाद मे क्रमश उसकी आश्रितता न्यूनातिन्यून हो जाती है सभी काम वह अपने आप करने लग जाता है। शक्तिविहीन हाथ जैसे शिशु को बिठाना चलाना बोलाना हाथ पैर हिलाकर मोटे मोटे काम करना सिखाना साथ ही साथ माँ के स्तनपान से धीरे धीरे खुराक पर लाना पढ़ना लिखना सिखाना आदि समस्त कार्यों के पीछे बच्चे की स्वाधीन वृत्ति विद्यमान रहती है।

आगे गिजुभाई लिखते है कि हमारे घरो मे बालको की इस सहज स्वाधीन अभिवृत्ति को कदम कदम पर निर्ममता से कुचला जाता है हमे बच्चो को अपने आप चलने दौड़ने सीढ़ियाँ पर चढ़ने उतरने पड़ी हुई चीज़ो को उठाने कपड़े निकालने नहाने पहनने सच बोलने अपनी ज़रूरत स्पष्टतया बताने आदि कार्य सिखाने मे मदद देनी चाहिए– यह नहीं कि हम ही उनका सारा काम पूरा करने की चाकरी करने लग जाएँ। उनकी उतनी ही मदद करनी चाहिए कि वे व्यक्तिगत ज़रूरते पूरी करने तथा इच्छाओ को पूरा होते देखकर सतुष्ट हो सके। यही है स्वाधीनता याने स्वावलबन की शिक्षा। इसलिए जो शिक्षा स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ने मे बच्चो की मदद करे वही प्राणवान शिक्षा है।

ज़ाहिर है गिजुभाई ने इन विचारो के अनुसार अपने बाल मंदिर

मे वालको के लिए अनेक प्रवृत्तियो का सँजोया था। अल्प वय के वद्या म ये सरकार डालने की दृष्टि स वाल मदिर मे ऐसी सैकड़ो प्रवृत्तियाँ थीं जिन्हे वद्य अपने आप चुन लेते और उनमे खो जाते। उनकी इन प्रवृत्तिया के मूल म निहित भावनाओं को न समझ पाने वाले माता-पिताओ को वहुत कोफ्त होती थी कि भला यह भी कोई पढाई हुई। साल भर रा वद्ये पढने जाते है पर उन्हे न अ आ लिखना आया न गिनती। ओर वीसो माता पिताआ ने अपने वद्यो को वाल मदिर से उठा लिया। एक वार गिजुभाई ने अपने मन के भावो को अपने एक पत्र म लिखकर सभी माता पिताओ के पास भेजा था उन्हे वस्तुस्थिति से अवगत कराया था। यह पत्र हमारे लिए भी उपयोगी हो सकता हे

वाल मदिर मे यालक के भरती होने के वाद हम तुरन्त ही उसकी दखरेख शुरु कर देते है। सवसे पहले यालक की गदी वढगी ओर असामाजिक आदता को सुधारने का काम हाथ म लिया जाता है। कुछ ही समय मे वालक खुद यह समझने लगता है कि वह कितना गदा रहता था और उसके कपड़ों का क्या हाल था। धीरे धीरे वह अच्छी तरह चलने उठने वैठने धीमी आवाज़ म वात करने जाजम विछाने झाड़ू लगाने परोसने चीज़ो को अच्छी तरह से रखने अपने कपड़ो के वटन लगाने खालन चूटो के फीते वॉधने खालने और पानी पीने जैसे काम करने लगता है। वाल मदिर मे नए भरती हुए वालक को देखने स साफ पता लग जाता है कि दोना के वीच कितना फर्क है। वाल मदिर मे भर्ती हुआ नया वालक कुछ समय वीतने पर वाल मदिर के वातावरण मे रहकर दूसरे वालको के साथ धुलना मिलना इकट्ठा होकर साथ मे काम करना और अपने कारण दूसरो को कष्ट न पहुँचाते हुए अपना काम करना सीख जाता है। कुछ ही समय म उसका मिजाज़ी स्वभाव वदल जाता है। वह मिलनसार वन जाता है लड़ना झगड़ना भूलकर प्रेम करने लग जाता है। चीखने चिल्लने और ऊधम मचाने के वदले वह वहुत कुछ शान्त और स्वस्थ वन जाता है। जो अपने आपको जानता ही नहीं था वह अपने को जानने पहचानने लगता हे। जो दूसरा के भरोसे वैठा रहता था या रोया करता था वह अपना काम खुद कर लता है और मस्त रहता है।

यहाँ के मुक्त वातावरण म विशाल मेदाना में रहकर वालक अपने शरीर को खूब कसता रहता है वह सरपट मैदान मे दौड़ता है धूल और हवा म लम्वे समय तक मस्त होकर वद्ये घूम सकते है निडर होकर दूर-दूर तक अपने लकड़ी के घोड़े दौड़ा सकते है

उनके लिए तो यह सब एक नया शिक्षण ही है। उनका यह सारा समय कभी बरबाद होता ही नहीं।

इस विकास के साथ ही हम अपनी पद्धति के अनुसार बालकों को इन्द्रिय शिक्षण भी देते हैं इन्द्रियों का शिक्षण मन अथवा आत्मा के शिक्षण के लिए नींव रूप है। अब तक इस प्रकार के शिक्षण की हमने कोई परवाह नहीं की थी। इसके कारण हम जीवन भर अपंग की तरह रहते हैं। बाद में इस कमी को पूरा किया ही नहीं जा सकता। आरम्भ में इन्द्रिय शिक्षण न लेने के कारण आगे की सारी पढ़ाई बेकार जाती है। नया भरती होने वाला बालक बड़े और छोटे पदार्थों के भेद को पहचान नहीं पाता। उस समय उसको लम्बाई चौड़ाई छोटाई मोटाई का शायद ही कोई ख्याल रहता हो। उसकी स्पर्शेन्द्रिया को चिकने और खुरदरे के बीच का फर्क समझ [redacted] नहीं आता। रंगों की पहचान तो उसे होती ही नहीं। आकारों के बारे में वह बहुत कम जानता-समझता है। उसके कानों के लिए शोरगुल और सुन्दर-मधुर स्वर दोनों लगभग एक समान ही होते हैं। उसके चारों ओर रंग रूप से भरी दुनिया फैली है लेकिन उसको उसमें कुछ दीखता नहीं। किन्तु जब उसकी इन्द्रियों का विकास हो जाता है तो वह अपनी सधी हुई आँखों से सृष्टि की सुन्दरता को सधे हुए कानों से संगीत की मधुरता को और सधे हुए स्पर्श से भाँति भाँति की वस्तुओं के लालित्य को अनुभव कर सकता है। वह अपने उस आनन्द में डूबा रहता है। बालक के जीवन की जो दिशा अब तक बंद पड़ी थी वह खुल जाती है और उसका जीवन सुख आकाश से लेकर पाताल तक विशाल बन जाता है। यहाँ बालक खेल ही खेल में अपनी इन्द्रियों का विकास इस तरह कर लेता है कि उसको उसका पता ही नहीं चलता। यह उसकी दूसरी और सधी पढ़ाई है।

इस दूसरी पढ़ाई के समाप्त होने पर ही हम आज की अपनी पाठशाला में अपनी पढ़ाई पढ़ाना शुरू करते हैं। कारण कि शुरू की दो प्रकार की पढ़ाई को हम बुनियादी पढ़ाई मानते हैं इसलिए जब बालक हमारे बाल मंदिर में भरती होता है तो हम न तो उसको गिनती सिखाते न बारहखड़ी। लेकिन जो माता पिता अपने बालक को बड़ी उमर का बालक बनाने के लिए हमारे यहाँ भेजते हैं वे जब हमारे मन्दिर में बालक की पढ़ाई का सधा समय आता है कि तभी अपने बालक को हमारे यहाँ से हटाकर ले जाते हैं। उनका यह व्यवहार हमारे लिए बहुत ही दुखदाई बन जाता है।'

इतनी लम्बी कैफियत देने के बाद गिजुभाई ने उन बालकों के

शब्द चित्र दिये हैं कि उन्होंने कितनी कितनी प्रगति कर ली थी और जब तक उनकी आधारिक शिक्षण की बुनियाद बनी तब तक माता पिता उन्हें उठा कर वापिस ले गए। इस बात 'माता पिता से' शीर्षक गिजुभाई की पुस्तक अवश्य पढ़ी जाए और उसमें भी विशेष रूप से वह पत्र जिसमें उन्होंने अपनी आन्तरिक व्यथा को माता पिताओं के सामने उड़ेला है कि बाल शिक्षण के शुभ असर को बालकों तक पहुँचाने में वे उनको सहयोग दें। यही नहीं बालकों को सज़ा न देने लालच पुरस्कार न देने उन्हें स्पर्धा में न धकेलने और धार्मिक शिक्षा न देने की भी ताकीद की है। उनका अपमान न करने उन्हें सम्मान देने उनके मन को समझने उन्हें हठी और ऊधमी न मानने और स्वतंत्र बनाने के लिए वे अनेक लेख लिखकर माता पिता के पास भेजते रहे हैं।

उनके बाल मंदिर में शिक्षण के मुख्य अंग थे संगीत इन्द्रिय शिक्षण शान्ति की क्रीड़ा जीवन व्यवहार और मुक्त व्यवसाय के काम भाषा शिक्षण गणित शिक्षण प्रकृति परिचय कहानी-कथन चित्रकारी बाल नाट्य बाल-क्रीड़ा बाल प्रवास और भ्रमण आदि।

कहना न होगा कि गिजुभाई के व्यक्तित्व पर मरिया मांटेसरी का जितना प्रभाव था उससे कहीं अधिक तत्कालीन राष्ट्रीय हालात का और महात्मा गाँधी के विचारों का था। गाँधी ने जिस स्वतन्त्रता स्वानुशासन अहिंसात्मक जीवन-दृष्टि आत्म निर्भरता और स्वदेशी सत्यनिष्ठा और सहयोग का आह्वान किया था गिजुभाई ने उन्हीं तत्वों को बालशिक्षण में शामिल किया था। एक ओर जीवन और जगत की बुनियादी शिक्षा दूसरी ओर राष्ट्रीय और सामाजिक तकाज़े। गिजुभाई ने दोनों पर बराबर ध्यान दिया। शिक्षा अगर समाज को आन्दोलित नहीं कर सकती तो उसकी क्या आवश्यकता? और जब भी अवसर आया उन्होंने बाल शिक्षा को तत्कालीन घटना चक्र से जोड़ दिया। बहुधा यह निर्णय ले पाना कठिन हो जाता है कि सामयिक घटना चक्र में किस पक्ष को सत्य मानें और किसका साथ देना नीति का साथ देना है। गिजुभाई में यह साहसिक दृष्टि थी। सन् 1930 का स्वतंत्रता संग्राम पूरी जवानी पर था। उसमें देश के अनेक नेता जूझ रहे थे। गिजुभाई हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठ गए। अपने बालकों और अपनी शाला को उठाकर वे बारडोली सत्याग्रह के उन शरणार्थी किसानों के बीच ले गए जो ब्रितानी हुकूमत द्वारा त्रस्त थे। तम्बुओं में जीवन-यापन करने वाले उन किसानों के बच्चों को इकट्ठा करके उन्होंने अपना शिक्षण कार्य शुरू कर दिया। वह सवेरे उठकर वे छोटे छोटे बच्चों को इकट्ठा करते नहला धुलाकर उन्हें साफ करते उन्हें

खेलाते गीत गवाते कहानी सुनाते लिखना पढ़ना सिखाते। बड़े बुजुर्गों को भजन सुनाते और गाँधी और पटेल क विचारो को सर्वसाधारण तक पहुँचाते। इसी अवधि मे गिजुभाइ न धीरे धीरे गॉव-गाँव जाकर बालका की 'वानर सेना तैयार की छोटे बच्चा की 'मॉजर सेना भी बनाई। ये सेनाएँ प्रभात फेरियाँ निकालतीं सभा की सूचनाएँ देतीं जुलूस म सबसे आग रहतीं शराब के ठेको ओर विदेशी कपड़ो की दुकाना पर पिकेटिंग करतीं।

कहने का आशय यह है कि गिजुभाई एस अवसरा का हाथ से नहीं जाने देते थे जो बालको की जीवन शिक्षा के माध्यम बन सकते है बल्कि कहना चाहिए कि वे शिक्षा के माध्यम स सामाजिक रूपातरण लाने वाले 'सोशल एक्टिविस्ट थे। उन प्रवृत्तिया के माध्यम स स्वय का प्रकाश म लान की उनकी नीयत रत्ती भर भी नहीं थी—कदाचित वे बालको म 'चेतना जगाने के लिए ही ऐसे अवसरा का उपयाग करते थे।

गिजुभाई के दो महत्त्वपूर्ण काम और थे—एक तो थी उनकी बाल क्रीड़ागण की योजना जो अब भी क्रियान्वयन की प्रतीक्षा म है और दूसरी थी शैक्षिक लेखन का एक मुहावरा तैयार करना।

सन 1927 28 म दश म समाजवादी दृष्टि का प्रसार होने लगा था। गाँधीजी ने दरिद्रनारायण के दर्शन करने के बाद घुटना तक की धाती पहन ली थी। गिजुभाइ का ध्यान गॉवा और गलिया म भटकने वाले बालको की ओर गया जो अभावग्रस्त ओर साधन विहीन है ओर माता पिता भी जिनकी शि ा के लिए विवश है। उनके लिए गिजुभाई की बाल क्रीड़ागण योजना को हमे गभीरता से देखना और समझना ह। जो तीन काम उनके जीवन म अधूरे रह गए थे उनमे स एक था बाल विश्वविद्यालय खोलना दूसरा था गॉव-गाँव ओर गली गली म बाल क्रीड़ागण स्थापित करना।

अत म गिजुभाई के इस अभूतपूर्व योगदान की चर्चा। पूरे देश म शैक्षिक लेखन और शैक्षिक पत्रकारिता के कदाचित वे आद्य पुरुष थ। शिक्षा सबधी लेख अव्वल तो लिखे ही नहीं जाते ओर जो लिखे जाते है वे अधिकाशत विदेशी विचारा की नक़ल होते हे। उनमे भारी भरकम शब्दावली ॲटी रहती है। ऐसा अननुभूत लेखन ही आज शक्षिक लखन क नाम पर प्रकाशित होता है। सचाई यह है कि उसे बहुत कम पढा जाता है। गिजुभाई ने शैक्षिक लेखन का एक सरस मुहावरा हमे दिया है कि अपनी बात को हम सवाद बनाकर पेश करे कथानक मे लपेट

कर कह सैद्धांतिकता की बात न करके अपने दिल को सचाई के साथ खाली कर दे। और सचमुच गिजुभाई की लिखी हुई शिक्षा संबंधी पंद्रह पुस्तक बड़ी ही रोचक हे उद्वेलनकारी और अनुकरणीय हे। उनकी पुस्तक दिवास्वप्न का तो कहना ही क्या? विश्व साहित्य म रखने की चीज़ हे वह प्रत्येक शिक्षक और प्रशिक्षणालयों म चर्चा परिचर्चा की चीज़ ह वह। भले ही एक पूरी गोष्ठी उसे आधार बनाकर रचाई जाए—इतने बहुआयामी पक्ष उसमे समाहित हे कि अनेक शैक्षिक विचारों का अनावरण होगा।

बेशक गिजुभाई न अध्यापक शिक्षा और प्रौढ शिक्षा की दिशा म भी काफी काम किया था अध्यापकों क बीच मिल बैठकर शिक्षाशास्त्र और मनोविज्ञान के शाश्वत और तात्कालिक महत्त्व के प्रश्नों पर वे नियमित रूप से चर्चा परिचर्चा करते थे। गुजरात म उन्होंने अनेक स्थानों पर बाल मंदिर ही नहीं अध्यापक मंदिर भी स्थापित किये थे।

शिक्षण को लेकर उनके दो टूक विचार थे कि अच्छे प्रशिक्षण क बिना शिक्षण नहीं हो सकता ह। उन्होंने लिखा है 'लोग बाग और अध्यापक दोनों यह मानते हे कि पढाना या सिखाना कोनसी कठिन बात ह? अपनी इस मान्यता के कारण ही हर आदमी अपने बालकों को घर म सिखाने बैठ जाता हे और मानता हे कि यह काम वह खुद कर सकता ह। इसी कारण विद्यालयों म हर किसी आदमी को शिक्षक का काम सहज ही मिल जाता है। अगर शिक्षकों का सर्वेक्षण किया जाए तो पता चलेगा कि अधिकाश शिक्षकों ने शिक्षाशास्त्र का (वास्तविक) ज्ञान प्राप्त नहीं किया ह।

लोगो की आम धारणा हे कि जो पढा लिखा ह वह दूसरों को क्यो नहीं पढा सकता? पर सोचने की बात ह कि जिसने खुद दवा पी हो या ऑपरेशन कराया हो क्या वह डॉक्टर बन सकता है? जिसने रेलगाड़ी मे यात्रा की हो क्या वह इंजन का चालक बन सकता है? जो बिजली के प्रकाश म पढता हे क्या वह उसके बल पर विद्युत उत्पादन का विशेषज्ञ बन जाएगा? वस्तुत भाषा भूगोल इतिहास गणित आदि विषयों का ज्ञान एक अलग चीज़ ह। खुद अच्छी तरह गा लेना एक बात ह और दूसरों को गाना सिखा देना दूसरी बात। ज्ञाता बनने म और उस्ताद बनने मे बड़ा अंतर ह। ये दोनों अलग अलग चीज़े हे। उस्ताद को अपने विषय के ज्ञान के साथ सिखाने की कला भी हस्तगत होनी चाहिए। जो जानता नहीं हे कि अलग अलग विषय किस प्रकार अलग अलग ढंग से सिखाए जा सकते हैं वह सिखाने का काम तो नहीं कर सकता। हाँ वह दूसरों के दिमागों म जानकारी ठूँस सकता है। और जब

जानकारी ठूँसने का काम उसको मुश्किल मालूम होता है तो वह डडे से पीटता है। पढ़ाने की पद्धति न जानने वाला आज का शिक्षक सज़ा या इनाम की मदद से ज्ञान को विद्यार्थी के दिमाग मे ठूँसता रहता है और विद्यार्थी को ज्ञान के बोझ तले कुचल देता है।

वस्तुत सिखाना एक कला है और पद्धतियाँ इस कला के औज़ार है। जिसके पास औज़ारो के उपयोग का ठीक ज्ञान होता है वह शिक्षक धीरे धीरे ही क्यो न हो सिखाने की कला मे कुशल हो जाता है। सिखाने की कला के साथ ही मनोविज्ञान का ज्ञान शरीर विज्ञान का ज्ञान और विषयो के महत्त्व का आकलन आदि भी अपेक्षित है।"

और आपको जानकर खुशी होगी कि अपनी एक पुस्तक म गिजुभाई ने कसंट्रिक प्लैन यानि उन्मेष पद्धति क्रोनोलोजिकल मैथड सेगुइन मैथड थीकन मैथड इडक्टिव मैथड ड्रामेटिक मैथड डारेक्ट मैथड आदि बीसो शिक्षण पद्धति का न सिर्फ परिचय दिया है अपितु निरूपण किया है।

गिजुभाई के बाल मनोविज्ञान सबधी सूत्र भी 'शिक्षक हो तो बाल शिक्षण जैसा मैंने जाना और 'मोटेसरी पद्धति नामक उनकी पुस्तको मे समाहित है। परीक्षा और मूल्याकन पर भी उन्होने लिखा है और शालाओ के निरीक्षण एव पर्यवेक्षण पर भी। जैसे जैसे ये पुस्तक हमारे सामने आती जाएँगी गिजुभाई के शैक्षिक अवदान का सम्पूर्ण चित्र प्रकाशमान होता जाएगा।

❑

बालक के मनोभावो की समझ

वर्जीनिया एक्सेलाइन की एक पुस्तक डिब्स इन सर्च ऑव सेल्फ शिक्षको और अभिभावको के लिए समान रूप से पठनीय है। माता पिता की नासमझी से गलत अपेक्षाएँ लादने से अथवा उपेक्षा से कई बार बालक असामान्य हरकते करने लगते हैं। डिब्स के साथ भी यही हुआ। अध्यापको ने भी उसे नहीं समझा।

भला हो वर्जीनिया एक्सेलाइन का जिसने अपनी निराली खेल विधि से सवेगो की दुनिया में खोये हुए उस बच्चे के मन को समझा और धैर्य के साथ उसे अपने ऊर्जस्वी व्यक्तित्व की पहचान कराई। डिब्स की यह सघर्ष गाथा पढनी इसलिए जरूरी है कि कहीं अध्यापको अभिभावको की लापरवाही से डिब्स जैसा कोई मेधावी बालक विकृत मस्तिष्क वाला न समझा जाए।

उक्त पुस्तक पर उत्तम पुरुष शैली अर्थात वर्जीनिया एक्सेलाइन के शब्दों मे यह आलेख तैयार किया है। —लेखक

शहर का किनारा। पहाड़ी पर सम्पन्न वर्ग के बच्चो का स्कूल। छुट्टी की घण्टी बजी। अपने अपने कोट हेट पहन कर बच्चे घर की तरफ दौड़ पड़े। स्कूल का वातावरण शोरगुल भागमभाग उल्लासपूर्ण आवाज़ा और कोलाहल से भर गया। पर डिब्स इन सबसे अलिप्त था। वह अपनी क्लास की बच पर बैठा रहा। उसे जाने की जैसे कोई जल्दी अथवा रुचि नहीं थी। अध्यापिका मिस हेडा ने देखा सोचा— डिब्स को कोट हेट पहना दे। उसे पास आते देख कर डिब्स ने जोर जोर से चीखना शुरू किया घर नही' घर नहीं' और मुट्ठियाँ बाँध कर हेडा से लड़ने को तैयार हो गया।

अध्यापिका के लिए यह नई बात नहीं थी। डिब्स को लेने कभी माँ आती तो रोते झींकते कोट हेट पहन कर नीचा मुँह किये धीमे धीमे आ खड़ा होता। कभी ड्राइवर लेते आता तो उसे वह नाचता काट खाता ज़मीन पर पसर जाता।

डिब्स दो साल से था इस स्कूल मे। क्लास म अकेला रहता

अपनी दुनिया मे खोया हुआ। किसी सहपाठी से बात तक न करता। सभी बच्चे आपस मे बातें करते खेलते और वह क्लास की दीवार से घिसटता घिसटता सब से दूर रहता या टेबिल के नीचे छिप जाता। अगर कोई बच्चा उसके पास आकर बात करने की कोशिश करता तो आँखें निकालता या मार बैठता।

न वह अध्यापिका के सवालों का जवाब देता न क्लास की किसी प्रवृत्ति म शामिल होता। उदासीनता उसका स्थायी भाव था। कोई किताब या खिलौना दिया जाता तो नीचा मुँह किये बैठा रहता। किसी से आँख न मिलाता। किताब या खिलौना रखकर अध्यापिका चली जाती तो वह नजर उठा कर देखता भी जाता कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा। किसी के देखते ही सब कुछ छोड़ छाड़ कर बेंच के नीचे छिप जाता।

स्टाफ रूम में डिक्स को लेकर शिक्षकों म चर्चा चलती। उसे सबकी मन्दबुद्धि या दिमागी खराबी वाला बालक समझा जाता। सिर्फ मिस हडा का विचार भिन्न था। उसका तर्क था कि डिक्स का व्यवहार हमेशा एक सा नहीं रहता। हर बार उसके मन पर पड़ने वाले प्रत्याघात एक समान नहीं होते। उसका खयाल था कि इस बालक के हृदय पर कुछ गम्भीर प्रभाव होने चाहिए कि जिनकी वजह से उसका व्यवहार विचित्र रहता है।

माता पिता भी डिक्स को कदाचित मन्दबुद्धि अथवा दिमाग से बीमार समझते हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

स्कूल ने डिक्स की व्यथा को समझने के लिए बहुत प्रयास किये। स्कूल के मनश्चिकित्सक ने उसकी जाँच के द्वारा बुद्धिलब्धि (आई क्यू) निकालने की कोशिश की पर डिक्स बराबर तूफान मचाता रहा। स्कूल के डॉक्टर ने भी तीन चार बार जाँच का प्रयास किया पर हर बार या तो वह नाचता या लातें पटकता। अन्त म डॉक्टर ने फैसला सुना दिया कि इस बालक को जन्म से ही कोई दिमागी खराबी दिखती है।

स्कूल की ओर से एक आखिरी प्रयास हुआ। खेल चिकित्सा को आजमाया जाए इसलिए एक रोज मुझे बुलाया गया। स्टाफ-मीटिंग हुई। विषय था 'डिक्स'। अध्यापिकाओं ने अपने अवलोकन तजुर्बे घटनाएँ बताईं। उनसे कुछ सूत्र मिले। मैंने अनुमान लगाया कि डिक्स के विकास म कुछ अवरोध होने चाहिए। यह ज्ञात करने के लिए मनोविज्ञान खेल चिकित्सा का सहारा लेता है। इस चिकित्सा द्वारा खेल ही खेल में बच्चा अपना क्रोध अपनी कुढ़न अपनी अकुलाहट नफरत अथवा प्रेम व्यक्त कर देता है।

डिब्स को मैने अपने केन्द्र पर सीधे नहीं बुलाया। एक दिन उसकी हरकत स्कूल म जाकर देखी ओर अगले दिन उसकी माँ से मिलने उसके घर गई। घर क्या था विशाल बगला था पुराने ज़माने का। विशाल लाहे का दरवाज़ा फिर बगीचा। भीतर गई। मुख्य दरवाज़ा बन्द। घण्टी बजाई। नाकरानी आई। उसक सख्त चेहरे ओर दो टूक बात से ही मैने समझ लिया कि घर मे हँसने की या खुल कर बालन की मनाही होगी।

माँ आई। एकदम डिब्स की बड़ी अनुकृति। उनसे बाते हुई। उन्ह भरासा नहीं था कि मरी चिकित्सा स डिब्स को कोई लाभ पहुँचेगा क्योंकि उनकी नज़रा म डिब्स मन्दबुद्धि है ओर यदि डिब्स का अध्ययन करने से मनोविज्ञान की नयी शोधा को कुछ लाभ होता हो ता उन्हे काई एतराज़ नहीं था। अपन पुत्र की व्यथा और अकुलाहट के प्रति सवेदनशील माँ हाने की बजाय व मुझे एक तटस्थ माँ लगी।

मैन उनस साफ-साफ कह दिया कि उन्हे पुत्र की चिकित्सा म रुचि है तो प्रति गुरुवार उसे लेकर मेर केन्द्र पर आना पड़गा ओर वापिस लकर जाना भी पड़ेगा।

कुछ दिना क अन्तराल क बाद एक दिन उनकी स्वीकृति का फान आया। गुरुवार को व स्वय बच्चे को लेकर आई। प्रतीक्षा कक्ष मे मैने जाकर दोना का अभिवादन किया। आ डिब्स ! बच्चे ने मेरी तरफ देखा बोला नहीं 'आ हम खेल क कमर म चले मने कहा ओर अगुली पकड़ कर उसे खल क कमरे म ले गइ। बहुत बड़ा कमरा था। तरह-तरह के खिलान आर खेल उपकरण पड़े थे। मने डिब्स को उन्ह छू छूकर उनके नाम जोर जोर से बोलने का कहा। उसन वही किया पर मुझस रुख नहीं मिलाया। एकाएक रगा की शीशिया पर उसकी नज़र गई। शीशियाँ उठाई नाम पढे और गोलाकार उन्हे सजाने लगा। मुझ उसकी रगा की समझ उचित लगी। इसे देखते हुए मुझे वह मन्दबुद्धि नहीं लगा। तब वह रेत की ढेरी की आर गया। हाथ स रत को हटा कर छाटा सा गड्ढा बनाया। सेनिकों की कतार सजाइ ओर मकान बनाने लगा। अगली बार वह आया तो गुड़िया क घर स खेला मकान भी बनाया और रगा से चित्र भी बनाय। मकान का एक चित्र बना कर वह कुछ कुछ मुस्कराया। एक बार जब वह लकड़ी क टुकड़ा से मकान बना रहा था तो मुझे उसकी समझ और कल्पना अच्छी लगी विशेषतया उसकी उम्र के सदर्भ म। मेरे मन मे सवाल उठा कि सामान्य बालको की तुलना म इतना बेहतर होने पर भी वह अपनी जानकारी को छिपाता

क्यो है?

एक रोज उसने खिलौना का प्राणीघर उठाया। एक एक करके प्राणिया का सुन्दर ढग से जमाने लगा। खेलते-खेलते मुझ से बोला 'ये तीन बतख़े है। तीना रेत म धॅस गई। मैं इन्हे बाहर निकालूँगा।' और यह अपनी पूरी कल्पना मुझे समझाता रहा। मुझे उसकी गतिविधि को देखकर लगा कि बालक तीव्र बुद्धि है। अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व निर्मित करेगा।

अगले गुरुवार का डिब्स आया तो मेरी तरफ देखकर मुस्कुरात हुए बोला हम खेल के कमरे म चल। कमरे म आकर वह प्राणीघर मे खो गया। गत्ते के टुकड़े रेत म धॅसाते हुए बोला 'यहाँ कोई दरवाज़ा नहीं होगा कोई ताला नहीं होगा। एक सैनिक को उसने रेत म धॅसा दिया और बोला ये पापा है। और तब उस खिलौन को पिस्तौल का निशाना बनाने लगा। एक दिन उसे लेने को पिता आए। उसने उनसे पूछा क्यो पापा ! स्वतन्त्रता दिवस 4 जुलाई को आता है न? उस दिन गुरुवार की छुट्टी है। उसका वाक्य पूरा होते न होते पापा ने कड़क कर कहा बकवास बन्द कर। अभी मुझ वक्त नहीं। और वे बाहर निकल गए। म आश्चर्यचकित देखती रही कि माँ बाप दोना अपनी धुन मे बालक के मनोभावा को समझने की बजाय उसे कैसे डॉटते डपटते है !

एक दिन डिब्स की माँ आई। रोते रोते सारा अहवाल सुनाया कि कैसे वह और उसक वैज्ञानिक पति डिब्स के जन्म के लिए मानसिक रूप स तैयार नहीं थे। हृदय विशषज्ञ क रूप म वह भी यश अजित कर चुकी थी। दोनो ही आग तरक्की करना चाहते थे कि तभी पॉवो म बेड़ी बन कर डिब्स आ गया और वह भी कैसा?— बेडोल कुरूप मदबुद्धि। उनम उपेक्षा भाव घिर आये। कभी न्यूरोलोजिस्ट को दिखाया कभी साइकेट्रिस्ट को। उन लोगा ने बालक मे कहीं कोई कमी नहीं बताई।

इस मुलाकात स मुझ बालक क विकास के अवरोधक कारका का पता चला।

प्रति गुरुवार डिब्स कन्द्र पर आता और तरह-तरह क खिलौना से खेलता। वह खेलने के लिए ही नहीं चीज़ो का तोड़ने गिराने और बालने या शोर मचाने के लिए भी स्वतन्त्र था। उसका प्रत्येक शब्द रेकार्ड होता रहता था। मैंने टेप लगा रखे थे। कभी बतख कभी खरगोश पेड़ पहाड़ मकान हवा के माध्यम से वह अपनी दिल की बात व्यक्त करता जाता साथ ही साथ अपनी काल्पनिक कविताएँ बोलता जाता।

उसकी बाता से मुझे पता चला कि वह अपने माली जेक को

तथा दादी माँ को पसंद करता था। कक्षा व सहपाठियों के प्रति जो तटस्थता का भाव था वह तात्कालिक होना चाहिए यानि डिब्स असामाजिक या एकलखोर नहीं होना चाहिए ऐसा मैंने अनुमान लगाया।

इस प्रकार लम्बे समय तक खेल में लगने से उसकी भावनाओं को राह मिली। क्षणिक आवेग दूर होने लगे। तैश घटने लगा। आत्मीय भाव बढ़ने लगा। धीरे धीरे उसने माँ से बात करनी शुरू कर दी और एक दिन पिता को अप्रत्याशित रूप से सवेरे सवेरे जाकर "सुप्रभातम" कहा और पिता का मन जीत लिया। पिता ने भी वात्सल्य भाव से डिब्स को प्यार-दुलार और सम्मान देना शुरू किया।

यों करते करते आखिरी गुरुवार आया क्योंकि उसके बाद उसे अपने माता पिता के साथ छुट्टियाँ बिताने समुद्र तट पर जाना था। डिब्स ने खेल के कमरे में जाने से पहले मेरे कमरे में बैठने की इच्छा व्यक्त की। टेप रकार्डर पर अपनी कहानी रेकार्ड की। तभी एक नई बात उसने बताई कि स्कूल के वार्षिक बुलेटिन में उसका फोटो और एक कहानी छपी है। मैंने पूछा कौन सी कहानी? तो उसने पेड़ के पत्ते की कहानी कह दी। वस्तुतः उसकी कहानियों और कविता में प्रतीकों के माध्यम से स्वयं उसी की मनःस्थिति अभिव्यक्त होती रही थी।

कहानी समाप्त करके वह खेल के कमरे में गया। वर्ड टेस्ट किट बाहर निकालकर मकान पेड़ चर्च स्कूल रास्ते सभी कुछ सजाने लगा। चर्च की बात पूछने पर वह बोला हम रविवार को चर्च जायेंगे। हमारे माली जेक ने कहा था कि रविवार को चर्च जाना चाहिए। तभी तो रविवार को छुट्टी होती है। पर हाँ पापा का रविवार की छुट्टी नहीं होती। उन्हें तो जेल में जाना पड़ता है वस्तुतः जेल के प्रसंग से उसके पिता के प्रति दो मनोभाव व्यक्त हो रहे थे— एक पिता द्वारा उसे अपने अध्ययन-कक्ष के समीप न आने देना दूसरा पिता की चर्च के प्रति नास्तिकता।

अब डिब्स ने अपने खेल वाले मकान में अपनी माँ और बहन डोरोथी के प्रतीक स्वरूप दो खिलौने रखे। एक छोटा खिलौना और उठाया बोला यह छोटा डिब्स। तभी बड़े डिब्स का सूचक एक और खिलौना उठाया। बोला बड़ा डिब्स अब दिन भर घर में नहीं रहता। वह बाहर घूमने जाता है यह छोटा डिब्स अस्पताल जायेगा तो पिघल जाएगा बच रहेगा बड़ा डिब्स सच्चा डिब्स

इस प्रकार डिब्स पिघल गया। उसकी स्व निर्मित दीवारें पिघल गईं। अन्तर्मुखी बनकर जो डिब्स कुटुंब तथा समाज से दूर होता जा

रहा था वही डिक्स अब स्वाभिमान सम्मान गर्व और हिम्मत के साथ दुनिया म कदम स कदम मिलान को तैयार हो गया था।

ग्रीष्मावकाश के बाद डिक्स जब लौटा तो मन पत्र पर बुलाया। उसमे गजब की तेजस्विता और आत्मविश्वास आ गया था। उस भर पेन्ड्र की एक एक बात याद थी– 'मुझे अच्छी तरह स याद है वह गुडिया घर वे खिलौन रेत की ढेरी, सिपाही और ट्रक। अपन दुश्मन को मैंने वहाँ हराया था। व रा दते। क्षमा माँग लेते। मैं उन्हें जिंदा छोड़ देता।' और भी यह कई बार मिला था। उसकी स्कूल की अध्यापिकाएँ भी उसके समायोजन स प्रसन्न थीं और उसके माता पिता भी। खुशी की बात है कि डिक्स अपनी जिन्दगी क अँधेरे साये से निकल कर बाहर आ गया था। धूप छाँह जैसे जिन्दगी के अनिवार्य अंग है। चमचमाती हुई धूप पर शीतल छाँह के साये हम सादर्य बोध ही नहीं नया तजुर्बा भी देते है। यही डिक्स की जिन्दगी म हुआ।

मैं अनेक विश्वविद्यालयो तथा व्यावसायिक मीटिंगो म अक्सर भाषण देने जाती हूँ और इस नाते दूर-दूर तक मेरे विद्यार्थी छाये हुए है। अपने कई भाषणो मे मैंने डिक्स की इस कहानी की चर्चा की थी। एकाएक मेरे एक छात्र ने जो अब कहीं और सेवारत है मुझे डिक्स का एक पत्र भेजा। मुझ बताया गया कि डिक्स मेधावी (गिफ्टेड) बालको के एक विद्यालय म पढ़ता था और उस स्कूल की पत्रिका म यह पत्र छपा था। पत्र प्रिंसिपल क नाम लिखा गया था।

मेरी कक्षा क एक सहपाठी और मेरे मित्र को विद्यालय से निकाले जाने के विरोध म म यह खुला पत्र लिख रहा हूँ। आपकी निर्दयता नासमझी और संवेदनशून्यता को देख कर म रोष स भर उठा हूँ। कानाफूसी क जरिये यह बात मेरे कानो तक पहुँची है कि आपने मेरे मित्र को अपमान करके निकाल दिया है क्योंकि परीक्षा म वह चोरी कर रहा था। मेरे मित्र का कहना है कि वह चोरी नहीं कर रहा था। मुझे मेरे मित्र पर बहुत विश्वास है। उसने बताया कि वह एक तिथि का सत्यापन कर रहा था क्योंकि इतिहास की तिथि थी वह। अपने तथ्यों को प्रमाणित करने के लिए तिथि का सही होना लाजिमी था इसलिए सत्यापन जरूरी था। मेरा खयाल है कि हम लोग जब कभी ऐसा कुछ जरूरी काम करते है तो उसके कारणो को समझने म बहुधा नाकामयाब रहते है। क्या आप सही तथ्य की पड़ताल करने को किसी व्यक्ति का अपराध मानेंगे? क्या आप यह अच्छा समझते है कि कोई व्यक्ति अपने मन मे उठी हुई ईमानदार शंका को अज्ञान के बादलो म ढँक दे? आखिरकार परीक्षाओं का मतलब

क्या है? क्या वे इसलिए हाती हे कि हमारी शैक्षिक उपलब्धियाँ वढ? या इसलिए होती हैं कि सफलता प्राप्त करन के लिए सचेष्ट व्यक्ति का पीड़ा और गहरा आघात पहुँचाने का ओज़ार वनना है उन्ह !

स्टाफ के एक सदस्य न कल हमारे छात्र समुदाय क सामन मरे मित्र स कहा था अगर तुम इस स्कूल के स्तरानुरूप योग्यता प्रदर्शित नहीं कर सके तो अच्छा होता कि ऐसा छल करने की अपेक्षा किसी दूसरे स्कूल म भर्ती हा जाते। इस फब्ती स मे स्वय को अपमानित महसूस करता हूँ। म लज्जित हूँ ऐसी स्कूल के प्रति कि जा पढन वाले छात्रा क लिए अपने दरवाज़े हमेशा हमेशा खुले नहीं रखती कि व आय ओर हमार साथ पढ। दुनिया मे ओर भी वहुत से ज़रूरी ज़रूरी काम पड़ है वजाय इसक कि सत्ता ओर ताकत प्रतिरोध दण्ड ओर आघात का प्रदर्शन किया जाय। शिक्षाविद के नाते आपको अज्ञान पूर्वाग्रह तथा सकीर्णता को दूर करना चाहिए। अव अगर मेरे मित्र क गर्व ओर आत्मसम्मान को लगे आघात के लिए आप क्षमा याचना नहीं करग आर उसे फिर से स्कूल मे नहीं लेग तो नय शिक्षा सत्र से म भी यहाँ नहीं पढ़ूँगा।

यह कदम उठाने की दिली सचाई क साथ
आपका स्नेहाधीन
मै डिब्स

इस पत्र का यह परिणाम हुआ कि विद्यालयी व्यवस्था न डिब्स की सारी वात ज्या की त्या मान लीं क्याकि व डिब्स जैस विद्यार्थी को खाना नहीं चाहते थे।

यह एक नई जानकारी थी मेरे लिए पर उसके गुणा और उसकी विशिष्टताआ को देखते हुए ऐसी ही परिणति की सम्भावना थी। मेर केन्द्र पर 'खेल उपचार सत्र को समाप्त करने के पश्चात एक सैद्धान्तिक मनोविज्ञान ने डिब्स पर स्टेन्फोर्ड विने इण्टेलिजेंस टेस्ट आजमा कर देखा था। उसके अनुसार उसकी वुद्धिलब्धि 168 थी। पढने की जाँच भी की गई थी। डिब्स का रीडिंग स्कोर उसके स्तर और आयु से कई वर्ष आग था।

यह पुस्तक मैंने अवलोकनो तथा रेकार्ड की नई सामग्री के आधार पर तैयार की है तथा इसके लेखन प्रकाशन मे डिब्स के माता पिता की स्वीकृति मुझे उपलव्ध हुई है।

□

खेलना भी सीखना है

छुट्टी का दिन हो तो भले ही सर्द हवाएँ चले या आसमान मे बादल घिरे रहे बालको का खेलना बदस्तूर जारी रहता है। गली के बच्चे पहले मकानो के बीच वाले चौगान मे खेलते थे। लेकिन इन दिनो वहाँ पार्क बन रहा है इसलिए मेरे मकान के पास वाला खुला बाड़ा उनके लिए स्टेडियम बन गया है।

छत पर आकर देखता हूँ। हवा कानो को चीरती हुई निकलती है। पहाड़ो पर बर्फ गिरी है इसी से यह शीत लहर चल रही है। आसमान सुबह से ही ढका है। सूरज के प्रकट होने की संभावना नहीं दिखती। परिंदे भी पेड़ो मे दुबके है।

पास के बाड़े से बालको की आवाज़ आ रही है "चल बीसा तू भी हंड्रेड मीटर रेस मे खड़ा हो जा। रेडी वन टू, थ्री स्टार्ट!" और धावको के पैरो की धम धम तमाशबीन लड़को का हो हल्ला बीच बीच मे एक दूसरे को उत्साहित करने की आवाज़ सुनाई पड़ती है "बक अप बीनू, बक अप भोलू और तेज बक अप !"

छत से झाँक कर देखता हूँ। आशुतोष मोहल्ले के हम उम्र बालको का टूर्नामेंट रचा रहा है। हाथ मे नोटबुक है जिसमे भाग लेने वाले खिलाड़ियो के खेलवार नाम लिखे है। हर ईवेंट के बाद वह नोटबुक मे रिकार्ड दर्ज करता जाता है। वह सब का लीडर है खेलो का कंडक्टर है रेकार्डर रेफरी सभागी सब कुछ है।

पिछले दो दिनो से देख रहा हूँ, आशुतोष और अन्नू आजकल दिन दिन भर बाड़े मे लगे रहते है। मोहल्ले के बीस पच्चीस लड़के लड़कियाँ इकट्ठे हो जाते है और हाई जम्प लाग जम्प हंड्रेड मीटर रेस शॉटपुट पोलवॉल्ट आदि तरह तरह के खेल खेलते है।

अन्नू घर से सिलबट्टे का गोल बट्टा शॉटपुट के लिए उठा ले गया है। सिलाई मशीन के बक्से से मापने का इंचीटेप भी ले गया है

यह जो उसके गले मे झूल रहा है। आजकल उन पर खेलो का भूत सवार है। टी वी मे नेशनल इन्टरनेशनल ओपन एथलेटिक मीट को पिछले दिना बड़ी रुचि से देखा है उन्होने। कई कई प्रसिद्ध स्वर्णपदक विजेता एथलीटस के नाम उनकी ज़बान पर है।

आशुतोष पब्लिक स्कूल म पढता है। पढने मे तो तेज़ है ही खेलकूद डिबेट, म्यूजिक कल्चरल शो जनरल नॉलेज आदि मे भी अव्वल है। बात बात म वह अग्रेजी लफ्जो का प्रयोग करता है और गली के लड़को पर सवार रहता है।

नज़र उठा कर आसमान की तरफ देखता हूँ। बादलो की एक हल्की सी परत हटी है। कुछ उजाला हुआ है। सोचता हूँ, अँजुरी भर धूप उतर आए तो हाथो से मौजे उतार कर छात्राध्यापको के 'लेसन प्लान जाँच लूँ। तभी पत्नी की आवाज़ आती है 'साभळो छो? चा पीशो?

हॉ ले आ।

बाड़े मे लड़को ने बड़ी मेहनत से स्टेडियमनुमा अडाकार ट्रेक बनाया है। आशुतोष धावको को निर्देश दे रहा है कि फील्ड के कितने चक्कर लगाने है ओर कहॉ फिनिश करना है। पिकी को देखकर वह मुस्कराता है और कहता है सेलेना की तरह दौड़ना फस्टि से!

हेलो! रेडी । देख इस बार सलाम गरीबा ओर सेलेना का रेकार्ड कौन तोड़ता है? यो कहता हुआ आशुतोष अपनी हाथघड़ी को स्टोपवाच बना कर सबको सावधान करता है और दूसरे हाथ की कनिष्ठिका व तर्जनी को जोड़ कर मुँह से स्टार्ट की सीटी बजाता है।

रेस शुरू धावका मे होड़ाहोड़ दीवार के पास खड़े गली के तमाशबीन लड़को का हो हल्ला हँसी ठिठोली फबतियाँ स्पर्द्धा और मौज़मज़े का एक शानदार माहौल!

शु जुओ छो। पत्नी पास आकर कहती है।

बचे लोग खेलो मे मस्ती ले रहे है।

मुझ चाय का कप देती हुई वह मुँह चढा कर कहती है 'रजाओ मा ओमनो बीजो धधोज शो छे?

धधा कैसा भागवान? मैं कहता हूँ– देखती नहीं छुट्टियो का कितना रचनात्मक उपयोग कर रहे हैं ये! अपने आप खेलो का आयोजन करके ये लोग किस तरह अपना ज्ञान पुख्ता कर रहे है। न इनके लिए खेला का कोई आयोजक है न प्रेरक है न प्रोत्साहनदाता है फिर भी अपनी आतरिक सूझ से ये लोग किस तरह अपनी सामाजिक्ता और

मैत्री को पुष्ट कर रहे है। यह कोई मामूली बात नहीं है मैडम'

उधर पोलवॉल्ट की तैयारी हो रही है। चाय की चुस्की से भीतर गरमी महसूस करता हुआ मै एक बार फिर से आसमान पर नज़र डालता हूँ। आसमान अब भी ठस है हवा अब भी तेज़ है लेकिन इन सबसे बेपरवाह बालक अपनी प्रवृत्ति मे मगन है। दो लड़के सीने की ऊँचाई तक डोरी ताने खड़े है। सामने पोलवॉल्ट के लिए तैयार सात आठ लड़के पंक्तिबद्ध है जिन्हे एक लाठी के टेके से डोरी के ऊपर से छलाग लगानी है। आशुतोष अपने दोस्तो को समझाता है कि उन्हे बुवका की तरह छलाग लगाकर कैसे नया रेकार्ड बनाना है।

पत्नी भी मेरी देखा देखी झॉककर देखती है पर यह उसमे आनन्द नहीं ले पाई बोली रम्मत थी पेट न भराय। मारे रसाइामा जवानु छे। ऐवा नरवा काम माराथी न पोसाय।

मै उसे रोककर एक बार फिर से समझाने की दुश्चेष्टा करता हूँ कि देखो कभी कभी मन न भी हो तब भी बालको की प्रवृत्तियों मे रुचि लेनी चाहिए। इससे उनको प्रोत्साहन मिलता है। वैसे तुम उन्हे प्रोत्साहन के शब्द न भी कहोगी तब भी वे उसी लगन से अपने काम मे मगन रहेगे। प्रकृति ने बच्चो को ऐसी आतरिक शक्ति दी है कि वे किसी बाहरी प्रोत्साहन के तलबगार नहीं होते। वे आतरिक प्रेरणा से काम करते हैं और तब तक करते रहते है जब तक कि उन्हे आत्मसतोष नहीं हो जाता या वे थक नहीं जाते। और खेलना तो उनके सीखने का एक मेथड है। कितनी सारी बाते खेल ही खेल मे सीख लेते है वे' नए नए शब्द अभिव्यक्ति कौशल वाणी व्यवहार शिष्टाचार गणित की सामान्य बाते नई-नई तकनीके व कौशल सामान्य ज्ञान और न जाने क्या-क्या?" तभी आशु आशु की पुकार लगाते हमारे पड़ौसी अम्लान दत्तो किंवाड़ी खोलकर घर मे आते हे और पत्नी को सम्बोधित करते हुए बगला ज़बान मे कहते हे क्यो बोदी' एखोने आशुतोष एशे छिलो?

आवाज़ सुनकर पत्नी ऊपर जगले के पास खड़े खड़े ही अपनी गुजराती मिश्रित बोली मे कहती है आओ न अम्लान भाई' बाजूना वाड़ामा छोकराओनो टूर्नामेट थाय छे। आशुतोष त्याज छे।"

वर्षों से देख रहा हूँ, न सुधा बगला जानतीं न अम्लान भाई गुजराती जानते पर न जाने इन भाषाओ मे कौनसा तत्त्व अतर्निहित है कि एक की बात दूसरे तक सहज ही सम्प्रेषित हो जाती है।

अम्लान बाबू उन्हीं कदमो से वापिस चल देते है। बाड़े मे लड़को

के झुड के बीच खड़े आशुतोष को क्रुद्ध नज़रो से देखते हुए पुकार कर कहने लगते हैं 'चोलो आशु' वाड़ी ऐशो केनो सोमोय नोष्ट कोरछो। तोमाय पोड़वार जोन्य बोले नि कि ?

अम्लान बाबू की आवाज़ सुनते ही आशुतोष अपने घर की ओर भागता है। गली के अन्य लड़के भी सकपकाते-सकपकाते स्वय को अपराधी मानते हुए धीरे धीरे खिसक जाते है। पलक झपकते बालको का मिनि-एशियाड छिन्न भिन्न हो जाता है।

मै एक अयाचित आशका से भरा तेज कदमो से नीचे उतरता हूँ और दरवाज़े पर आकर कहता हूँ 'गुड मार्निंग अम्लान बाबू' आज तो फुरसत मे लगते है। आइए न' अनुरोध स्वीकार करके वे घर म चले आते है पर उनके चेहरे पर एक भाव अब भी मौजूद है जिसे सहज ही पढा जा सकता है।

पत्नी आकर पूछती है केम अम्लान भाई' कॉफी पीशो?

श्योर' कहते हुए वे सोफे पर बैठ जाते है। मूड उनका अब भी उखड़ा उखड़ा है।

बात मे ही शुरु करता हूँ, आजकल तो अम्लान बाबू' मोहल्ले के बड़े लोग खेलो मे इस क़दर मशगूल है कि इनको खाने पीने तक की फुरसत नहीं है।'

अम्लान दत्तो भरे तो थे ही चिहुक उठते है 'सिली बोयेज दे आर स्पोईलिंग देयर प्रेशस टाइम इन सच वेस्टफुल एक्टिविटीज।

लगा कि जैसे उनके मुँह का स्वाद कड़वा हो गया। मेरी तरफ उन्मुख होकर कहते है की होये छे सोव छेलेदेर को मास्टर मोशाय' सोमोय का उपयोग करना कब सीखेगा ए लोग? नोबडी एमगस अस टेल देम कि जाओ घोर जाके स्टडी कोरो।'

उनकी बात के जवाब म कुछ कहना समीचीन नहीं लगता मुझे। सोचता हूँ, सवाद के सामान्य धरातल पर लाने के लिए अभी मुझे उनकी बाते उदारता से सुननी होगी।

पत्नी कॉफी ले आती है। आते ही वह भी उन्हीं के सुर मे सुर मिलाती हुई बोलती है तमारी वातो बरोबर छे अम्लान भाई' ऐ छोकराओ आक्खो दाड़ो रखड़ताज फरे छे। स्टडीना नामे कटाळो आवे छे ऐमने'

शेई कोथा आमि बोलछिलाम मास्टर मोशाय के' किंतु ए भी क्या मास्टर मोशाय है– न छेलेदरे को डाटवे न बोझावे कि वाड़ी ते बोसे होम वर्क कोरो'

कॉफी के दो-चार घूँट हलक से उतरते ही ऐसा लगता है **मानो**

अम्लान बाबू क्षण भर पूर्व की मनोभूमि से कुछ ऊर्ध्व स्तर पर पहुँच कर चिंतन की अपनी भावभूमि पकड़ रहे हैं। बालते है "इन माई अर्ली एलीमट्री क्लासेज आई हेड लर्ण्ट ए पायम' छोटा छेलेदेरे क वास्त वो पोयम अच्छा है बट आई फील स्टिल इट हेज सम रेलेवेंस फोर दी पीपल आलसो।

यह हुई न कुछ बात' याद हो तो सुनाइए न!' मै अपनी उग्रतता व्यक्त करता हूँ।

कापी का आखिरी घूँट गले म उँडेलने के बाद व कविता सुनाते है

वर्क वाइल यू वर्क एंड प्ले वाइल यू प्ले दट इज द वे टु बी हेप्पी एंड ग ऑल देट यू डू, डू विद योर माइट थिंग्स डन बाइ हाव्ज आर नेवर डन राइट वन थिंग एट ए टाइम एंड देट डन वल इज ए वरी गुड रूल एज मैनी केन टैल।

पायम सुनकर पत्नी को मज़ा आ जाता है। कहती है वाह अम्लान भाई! केवु मजानु गोल्डन रूल छे! कामनी वेळा काम अने रम्मतनी वेळा रम्मत! अड्धा मनथी काम करवाना आवे ना ते सारू न कहेवाय!' कविता की पंक्ति दोहराती हुई वह खाली कप रकाबियाँ उठाकर भीतर चल देती है।

म कहता हूँ अम्लान भाई यह कविता और इसका भाव अपनी जगह ह और बालकों की काम करने व सीखने की आदत अपनी जगह। क्षण भर को आप सोचिये तो सही— क्या आप किसी ऐसे रूल को गोल्डन रूल मानना उचित समझगे जो बालको क भीतर से पैदा न हुआ हो अथवा जिसे बालक स्वयं अपनी ज़रूरत क मुताबिक ईजाद न करे?

यह कविता अब भी बालको के पाठ्यक्रम मे होगी। न होगी तो शिक्षकों के ज़ेहन म तो अवश्य ही है। आज भी हमारे कई अध्यापक बालकों को यह बताते हुए नहीं थकते कि उनके जीवन का गोल्डन रूल यही होना चाहिए। पर म काम के समय काम और खेल के समय खेल के भाव को लेकर कोई शिक्षण सूत्र नहीं बना सकता। अगर कोई बनाता है तो वह बाल स्वभाव और बाल-मनोविज्ञान क विपरीत आचरण करता है। आपको इस कविता मे जो एक आदर्श नज़र आता है अम्लान बाबू, दरअसल उसी म एक आधारभूत त्रुटि है।

अम्लान बाबू जिप्सम के व्यापारी हैं। वर्धवान युनिवर्सिटी से भूगर्भ विज्ञान म एम एससी करके व यहाँ पिता के काम म लग गए है। उनकी

अपनी खाने हैं। पचासो मजदूर काम करते है। बढ़िया ऑफिस है। प्लास्टर ऑव परिस बनाते है। मातृभाषा बगला है अत उनकी हिन्दी मे बगला और अग्रेजी का विशेष पुट रहता है।

आशुताप को वे भद्रजनोचित उत्तम माहौल देना चाहत है इसीलिए उसे शहर के सबसे महगे पब्लिक स्कूल म पढाते ह। व नहीं चाहते कि आशुतोष मोहल्ले के देसी माहोल म साधारण बालको क साथ बैठे उठ और अपना समय बरबाद कर। इस मामल म य थाड़ अनुशासन प्रिय है। वैसे ये अध्ययनशील ओर विचारवान है। चर्चा मे बैठ जाते है ता फिर अपने ज़रूरी काम तक भूल जाते है।

अम्लान बाबू को उम्मीद नही थी कि मै पायम सुनकर विपरीत प्रतिक्रिया व्यक्त करूँगा। इसलिए जब मैने त्रुटि की बात कही ता वे फारन पूछ बैठते है बाटस रोग विद द पोयम ?

मै कहता हूँ त्रुटि यह है कि काम क वक्त जिस काम की ओर खल के वक्त जिस खल की बात इस पायम म कही गई है क्या ये दा अलग अलग चीजे है? क्या खल काम नहीं हो सकता? क्या काम खेल नहीं हो सकता? इनम अतर मानकर चलना ही त्रुटि है। वस्तुत खेल ऐसी रोचक आर प्रभावशाली विधि है कि इससे सभी तरह क दुरूह काम आसान बन जाते है। बच्चा की कितनी बड़ी खूबी है अम्लान बाबू, कि ये अपने काम को आसान बनान के लिए 'प्ले व मेथड खुद-ब-खुद ईज़ाद कर लत हैं। दूसरी बात यह कि खेला म सलग्न रहते हुए उनको अपने कई कई तरह क अनुभवो का दोहराने का अवसर मिल जाता है। इसस उनका लर्निंग एक्सपीरियस स्थायी बनता है ओर वे नयी-नयी बात सीखते है।

ओ साब ठीक आछे बट प्लीज थिक ए लिटिल कि जितना सोमाय तक ए लड़का लोग अपना फडामटल लर्निंग कोर्स से दूर दूर रहेगा तो हाउ विल दे कीप देमसेल्व्ज इन टच विद द कटट? आप तो जानता है इनका कार्स कितना लेग्दी है। जब तक चार-छो घाटा तक ए लोग स्टडी पर वोसगा नहीं तब तक हामवर्क कैस पूरा हागा? प्रक्टिस मेक्स द मेन परफेक्ट। अम्लान बाबू अपनी अभिभावकीय व्यथा मेरे सामने व्यक्त करते हैं।

म अपनी कैफियत दत हुए कहता हूँ हम लाग बच्चा का कार्स पूरा कराने या स्टडी पर बिठाने की बात कहाँ कर रहे है अम्लान बाबू! मूल बात तो यह समझने की है कि बच्चे सीखते कैसे है? क्या वे हमारे द्वारा डाँट डपट क बाद जबरदस्ती बिठा दन स सीखते है? क्या वे काम

क समय काम और खेल क समय खल का नियम लागू कर देने से सीखत ह? अधिकाश माता पिता यही भ्राति पाले रहत है कि वे जबरदस्ती नहीं करग ता लड़क पढेगे ही नहीं। व यही मानकर चलते हैं कि बालक खेल म लगेगा ता समय गॅवायगा और स्टडी मे बैठेगा तो पढाई करेगा। क्या आप बच्च का स्टडी पर बिठाकर इस बात की गारटी ले सकते है कि वह पढेगा ही?

यस।' अम्लान बाबू कहते हैं स्टडी पर बैठेगा तो बच्चा पढेगा ज़रूर।'

क्षमा करे अम्लान बाबू! यही तो भ्राति है। हमारे अनेक अध्यापक भी यही भ्राति पाले हुए है। मा न लीजिए किसी क्लास म तीस विद्यार्थी बैठे है और मास्टर साहब उनको एलजेब्रा के फेक्टर निकालना सिखा रहे है। क्या सभी लड़को का ध्यान समान रूप से उनकी तरफ होना सभव है? भले ही उनकी नज़र बोर्ड पर टिकी हो लेकिन ध्यान होना ज़रूरी तो नहीं। बरामदे मे आने जाने वालो को देखने पर दरवाज़े के पास बैठने वाले लड़को का ध्यान भग होना लाजिमी है।

हमे तो मूल बात यही देखनी है कि बच्चो क सीखने मे स्वय उनकी रुचि और लगन कितनी है? मनोविज्ञान कहता है कि सीखने म दो तत्व प्रमुख है एक स्टिमुलस याने उद्दीपक ओर दूसरा रेस्पोस याने प्रतिक्रिया। सीखना एक ऐसी मानसिक घटना है अम्लान बाबू, कि जिसमे इन्हीं दाना तत्वा के मध्य गहरा रिश्ता जुड़ता है।'

वाट? आई कुडट फोलो। ए कोथा डिटेल म बोझाओ प्लीज।' वे बीच म ही पूछ बैठते है।

मै पूरी पृष्ठभूमि देते हुए उन्हे बताता हूँ एसा है अम्ला न बाबू! लगभग सौ साल पहले अमेरिका की कोलबिया युनिवर्सिटी में एक प्रसिद्ध शिक्षा मनोवैज्ञानिक हो चुके है। उनका नाम था थोर्नडाइक। उन्हान अपनी प्रयोगशाला मे बिल्लियो पर प्रयोग किया था। एक खास तरह का पिजरा उन्होने बनवाया जिसे आप चाहे तो 'पजल बॉक्स कह लीजिए। बिल्ली को उसमे बद कर दिया और खाना बाहर रख दिया। तब वे टकटकी लगा कर यह देखने लगे कि कितनी देर मे बिल्ली कोई तरकीब लगाकर पिजरे से बाहर आती है। उन्होने यह भी देखा कि किस तरह का भोजन (रिवार्ड) बिल्ली के लिए अधिक आकर्षक और असरदायी रहता है! क्या भूखी बिल्ली तृप्त बिल्ली की तुलना मे जल्दी तरक़ीबे लगाकर बाहर निकलती है?

वस्तुत बिल्ली को इतना सा काम करना था कि पंजो से पिंजरे का दरवाज़ा दबाये सिटकनी को ऊपर खींचे और दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल आए। यह क्रिया बार बार दोहराई गई तब जाकर बिल्ली को तरक़ीब समझ मे आई। थार्नडाइक ने इस प्रयोग के द्वारा सीखने के 'ट्रायल एरर मैथड की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। बिल्ली के साथ अनेक आवृत्तियॉ दोहराने क उपरात उन्होने यह निष्कर्ष निकाला कि सीखना उद्दीपक और प्रतिक्रिया के मध्य का एक गहरा रिश्ता है जो हमारे स्नायुकोष म घटित होता है और परिणामत कोई बात हमारी 'स्मृति का अग बन जाती है।'

वरी इटरेस्टिग मास्टर मोशाय' बट स्ट्रेंज आल सो। आप ए कोथा जनरलाइज केनो कोरछा' जो सिद्धाता पशु पोर हाय शेकि मानुषेर ऊपर होवे? अम्लान बाबू बड़ी गहराई और धैर्यपूर्वक मेरी लबी बात सुनने क बाद अपनी जिज्ञासा मेरे सामने रखते हैं।

ऐसा आरोप तो अम्लान बाबू! इस सम्पूर्ण लेबोरेटरी मेथड पर वर्षों से लगता आया ह। यह कोई खास बात नहीं। खास बात यह हे कि थार्नडाइक ने इसी आधारभूत सिद्धात से सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियम बनाये थे जो हमारे लिए जानने योग्य हैं।

पहला नियम हे 'लॉ ऑव रेडिनेस का अर्थात जब कोई बालक कोई काम करने को उद्यत हाता है तो वह प्रक्रिया उसे इस काम को करने मे आनद देती है आर अगर वह काम नहीं करता तो उसके भीतर खीझ पैदा होती हे। इसका अर्थ यह है अम्लान बाबू! कि बच्चो के मन और उनकी इच्छाओ का उनके पढने और सीखने म बहुत महत्व है।

उसका दूसरा नियम 'लॉ ऑव प्रेक्टिस कहलाता है। अभी आपने भी तो कहा न कि प्रेक्टिस मेयस द मैन परफेक्ट। यह वही नियम है। और तीसरा नियम है लॉ ऑव ईफेक्ट अर्थात प्रभाव का नियम। इसक मुताबिक अगर किसी प्रतिक्रिया से कर्ता को सुख सतोष मिलता है तो कर्ता उसको दोहरायेगा और यदि उसका परिणाम कष्टदायी हुआ तो नहीं दोहरायेगा।

मे आपको यही बताना चाहता हूँ अम्लान बाबू! कि मनोविज्ञान के आधार पर बालका की इच्छा के विरुद्ध उन पर अपनी इच्छाएँ अथवा आदेश लादने से बचना चाहिए। मैं तो अपने टीचिंग में शुरू स ही इन बातों पर अमल करता आया हूँ। बस इसीलिए मुझे काम के समय काम और खेल के समय खेल वाली बात पसद नहीं आती। थार्नडाइक

का यह उदाहरण विद्वत्ता झाड़ने के लिए नहीं अपितु प्रसगवश वताना जरूरी था। फिर आप जैसे गुणग्राही और विचारशील व्यक्ति से ही तो ऐसी अकादमिक चर्चा की जा सकती है।

देटस राइट मास्टर मोशाय' आपसे ही तो किछु ना किछु शिक्खा होता है किंतु एकटा काथा वोलो–ए 'लॉज ऑव लर्निंग वालका पर एप्लाइ करन का हालात म आपको ऐसा नहीं लगता कि मोटिवेशन ऑव स्टुडट इज ए मस्ट फोर द टीचर्स?

वेशक।

वन थिग मोर अम्लान वावू क्षण भर रुक कर चितन के उसी क्रम को आगे वढाते हुए कहते हे आई थिक, एक तरह का एक्सपीरियस हासिल कर लेने का बाद उसकी सिमिलर हालात म जब नया एक्सपीयरियस सामने आएगा तो चाइल्ड विल ईजीली फस द न्यु सिच्युएशन' आई मीन देट दे केन ट्रासफर दयर एक्सपीरियस टु अदर सिमिलर फील्ड' क्यो गलत वोला?

याह अम्लान वावू! आपने वहुत पते की वात पकड़ी है। पढ़ना आखिर और है ही क्या? अगर वालक ने स्कूल म एन्साइक्लोपीडिया का उपयाग करना सीख लिया तो वह मोपैड की मनुअल दख कर अपनी खराव पड़ी मोपैड को ठीक करना सीख सकता है। यही तो ट्रासफर ऑव एक्सपीरियस है' लेकिन अम्लान वावू, सीखने की इस स्टेज तक पहुँचने से पहले आपके जैसे पैरटस को और अधिक जागरूक वनना पड़ेगा और हमारे टीचर्स को भी वहुत वहुत होमवर्क करना पड़ेगा।'

सहसा सुधा आकर कहती है हजी तमारी वातो पूरी नथी थई? अम्लान वावू ने तो हवे रजा आपो। अरुधती वेन कालीवाड़ी जवाने ओमनी वाट जुवे छे।'

सुनते ही अम्लान वावू तत्काल उठते हे और आच्छा आमि आरिछ कहते हुए चल देते हे। हम भी दरवाज़े तक आकर उन्हे आयजो कहते है।

सीढियाँ चढकर म वापिस छत पर आता हूँ। उजाला थोड़ा और फैल गया हे। थोड़ी कमजोर-सी धूप भी उतर आई हे लेकिन हवा का पैनापन अव भी वरकरार है।

हाथो के मौजे उतार कर लेसन प्लान क रजिस्टर देखने वेठता हूँ पर ध्यान टिका है पास वाले वाड़े मे जहाँ गली क लड़को ने अपनी आतरिक ऊर्जा से एक जीवत क्लासरूम की सृष्टि की थी जहाँ वे शिक्षार्थी भी थे और शिक्षक भी जहाँ उनकी विविध प्रवृत्तिया मे आतरिक ऊर्जा

थी उल्लास था जहाँ प्रसगानुसार सीखने की सामग्री स्वत जुटाई जा रही थी ओर विधियाँ स्वत उपस्थित हो रही थी और जहाँ बालक कई कई विषयो की परिसीमा मे प्रविष्ट होकर ज्ञान के निर्मल जल म अवगाहन कर रहे थे।

पलक झपकते बालका का खेल ससार छिन्नभिन्न हो गया उनकी सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति अवरुद्ध हो गई और क्रियाहीनता का एक वितान इस छोर से उस छोर तक फैल गया। सोचता हूँ, हम लाख कोशिश कर ले चाहे जितने विस्तार और बारीकी से 'लसन प्लान बना ल पर क्या वह जीवतता ला सकगे जो कुछ देर पूर्व बालका न अपनी अत प्रेरणा ओर सूझ से खेल प्रवृत्ति के रूप म यहाँ रची थी?

नज़र उठाकर आसमान की तरफ दखता हूँ। धूप कुछ खिल गई है। बादल कुछ बिखर गए हे। लेकिन मरे मन का आकाश बादला से घिर गया हे। देखे कब पास वाले बाड़े मे बालका की किलकारियाँ गूँजती है कब बादल छँटते हे और कब अँजुरी भर धूप उतरती हे'



सवाल सीखने-सिखाने का

तैयारी किए बगर कक्षा म जाकर पढाना या तो एक ऊँचे दर्जे की साधना समझी जानी चाहिए या फिर परले सिरे की जड़ता। और हमारे यहाँ कक्षा शिक्षण मे अपेक्षाकृत जड़ता का ही माहौल ज्यादातर नजर आता है। साधना की बात तो शगुन पछी की तरह कभी-कभार दिखने वाली चीज़ है।

कक्षा म जाकर पढाना अध्यापक के लिए हमेशा एक चुनौतीपूर्ण काम रहा है यह बात भिन्न है कि वह उसे किस रूप मे ले रहा है। विमान के कॉकपिट मे बैठे पायलट से उसकी स्थिति जरा भी फर्क नहीं होती जिसे उड़ान से पूर्व कितने ही छोटे बड़े कल पुर्जों की गति और सन्तुलन पर सतत ध्यान देना पड़ता है। अध्यापक को भी पाठ्यवस्तु शिक्षण प्रयोजन विद्यार्थी की रुचि सलग्नता शिक्षण मे उसकी स्थिति, और शिक्षण विधिया का लकर न जाने कितनी कितनी बाते सोचनी पड़ती है। और फिर उसकी नजरो के सामने भी तो सूक्ष्म सवेदी यन्त्र बैठे रहते है' क्या उन लोगो की गति प्रगति और सतुलित विकास पर सतत ध्यान देना अध्यापक का दायित्व नहीं?

जॉन ब्रोडस वाटसन स लकर बी एफ स्किनर तक और ज्यॉ पियाज़े से लकर जिरोम ब्रूनर तक सभी व्यवहारवादी एव सज्ञानवादी मनोविज्ञानवत्ताओ ने अपने प्रयोगो एव परीक्षणो के आधार पर बाल मन की बारीकिया का विवेचन किया है। उनके परिप्रेक्ष्य म उन्होने अध्यापको के लिए अपने शिक्षण सिद्धान्त भी प्रस्तुत किये है जो कक्षा शिक्षण मे बहुत कारगर सिद्ध हुए है। इस लेख मे हार्वर्ड के जाने माने मनोवैज्ञानिक जिरोम ब्रूनर के शैक्षिक विचारो और उसके द्वारा प्रतिपादित सीखने सिखाने की अनुसधान विधि पर ध्यान केन्द्रित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

शिक्षण के अपने ध्येय को लेकर ब्रूनर ने बहुत स्पष्ट लिखा है

कि पाठ्य सामग्री की सरचना के प्रति विद्यार्थियों की सामान्य समझ को विकसित करना ही शिक्षण का अतिम ध्येय है। जब बच्चा अपने विषय की सरचना को समझ जाता है तो वह उसे एक सम्बद्ध पूर्णता के रूप मे दखता है। ब्रूनर समग्रतावादी (गेस्टाल्टिस्ट) है इसलिए सार्वभौमिक महत्व की अवधारणाएँ निर्धारित करने अथवा सुसगत मान्यताएँ तय करने का आग्रह रहा है उसका। वह बार बार अध्यापकों स यही अनुरोध करता है कि वे कक्षा मे पढाते वक्त ऐसा वातावरण बनाये ऐसी स्थितियाँ निर्मित करे कि जिससे विद्यार्थी अपने विषय विशेष की सरचना को अच्छी तरह से जान सक समझ सक। सरचनाओ के आधार पर अगर कक्षा म पढाई होती है तो वह अधिक स्थायी होगी। बच्चे आसानी से उसे भूलेगे नहीं। मान ले कि किसी बालक ने जीवविज्ञान पढा। आने वाले वर्षों म वह उस विषय की बहुत सी बाते बहुत सी बारीकियाँ भूल भाल जाएगा। पर अगर उसको सामान्य सरचनाओ की समझ क साथ पढाया जाएगा तो वह उन तमाम बारीकियो का आसानी से याद भी रखेगा और उसके बताने म फुर्ती भी रहेगी।

ब्रूनर ने अपने इन विचारो को 'सीखने क सिद्धान्त कहने की अपेक्षा अनुदेशन सिद्धात कहना उचित समझा है क्योंकि वे वर्णनात्मक होते है याने वे तथ्य प्रस्तुति के बाद वर्णन करते है कि क्या-कुछ होता है जबकि ये निर्देशात्मक होते है याने ये पहले से ही निर्देशित कर देत है कि किसी विषय विशेष को किस उम्दा तरीके से समझाया जा सकता है। अगर 'सीखने के सिद्धात हमे यह बताते है कि छह वर्ष की वय के बच्चे विपर्यय के विचार (रिवर्सिबिलिटी) को अब तक जज्ब नहीं कर पाये हैं ता अनुदेशन सिद्धात रास्ता सुझायेगा कि किस उत्तम विधि से बालका को यह भाव स्पष्ट कराया जाए और कब कराया जाए।

ब्रूनर के सिद्धान्तो मे उत्प्रेरण सबसे पहला है। उनकी मान्यता है कि प्रत्येक बालक मे सीखन की इच्छा जन्मजात हाती है। उस इच्छा को गतिशील रखने के लिए वैसे तो उत्प्रेरण के बाह्य तरीके भी है जिसकी तरफ स्किनर ने ध्यान दिलाया था याने पुनर्बलन (रिइन्फोर्समेंट) पर आन्तरिक उत्प्रेरण अधिक स्थाई तरीका है। आन्तरिक उत्प्रेरण का उत्तम उदाहरण है 'जिज्ञासा । प्रत्येक व्यक्ति ससार में जिज्ञासा का अपरिमित कोश लेकर अवतरित होता है। बालको में तो इसकी मात्रा सर्वाधिक होती है। तभी तो वे किसी एक प्रवृत्ति विशेष से चिपके नहीं रह सकते। एक को छोड़कर दूसरी से दूसरी को छोड़कर तीसरी व चौथी से जुड़ते जाते हैं। बालको के बौद्धिक विकास को गति देने के लिए इस स्थिति का

भरपूर लाभ उठाया जाना चाहिए। उत्प्रेरण से जुड़ी एक स्थिति यह भी है कि प्रत्यक व्यक्ति सक्षमता प्राप्त करना चाहता है। बच्चे उसी काम को रुचिपूर्वक किया चाहते है जिसम वे अपने का सक्षम महसूस करते है। इसके विपरीत जिन प्रवृत्तिया स व रच मात्र भी स्वय का सक्षम महसूस नहीं करते उनम उन्ह उत्प्रेरित करना कठिन हो जाता है। ब्रूनर ने उत्प्रेरण म एक ओर तत्व को सम्मिलित किया है। वह है अन्योन्याश्रितता (रेसिप्रोसिटी)। यानी दूसरों के साथ सहयाग की भावना स काम करने की ज़रूरत। मानव समाज का विकास भी इसी उत्प्ररण की बदौलत हुआ है।

प्रश्न उठता है कि उक्त सभी प्रकार क आभ्यतरिक उत्प्ररणा का एक शिक्षक कक्षा शिक्षण में कैसे-क्या लाभ उठा सकता है? ब्रूनर लिखत है कि प्रत्यक अध्यापक विद्यार्थिया का विकल्पा का पता लगाने म उन्ह तलाश करने मे सहयाग ही न द बल्कि रास्ता दिखाय। अतत सीखना और है भी क्या? समस्या का समाधान या विकल्पा की तलाश करना ही ता है। बालकों को विकल्पा की तलाश क लिए क्रियाशील बनाना है। अध्यापका का इस स्तर पर ध्यान दना चाहिए कि अगर विद्यार्थियो का दिया हुआ कार्य आसान हागा ता उनक लिए चुनाती नहीं रहेगी आर अगर कार्य जटिल हागा ता व विकल्पा का पता लगाने म भ्रमित हो जाएँग। यान समस्याएँ इस हद तक जटिल हा कि बालको की आभ्यतरिक जिज्ञासा उन्ह विकल्पो की तलाश के लिए क्रियारत रख। दूसरे यह कि विकल्पा की तलाश का काम बराबर जारी रहे। छात्रा को इस बात की आश्वस्ति रहे कि गुरुजी के निर्देशन मे जा तलाश चल रही है वह कष्टकर कतई नहीं है। तीसरे बालको को अपने कार्य की दिशा का अता पता बराबर रहे कि विकल्पा की तलाश का उनका प्रयोजन क्या था आर कहाँ तक उन्हे सफलता मिल चुकी है।

कुल मिलाकर अपने इस प्रथम सिद्धात मे ब्रूनर यही कहना चाहते है कि बच्चा मे सीखने की इच्छा जन्मजात होती है। शिक्षकों की यह चेष्टा रहे कि उनके निर्देशन म बच्च विकल्पा की सार्थक तलाश कर। अपने आप तो बच्चे घरो पर भी सीखते है तब स्कूली शिक्षा की ज़रूरत ही क्या है? ब्रूनर का यह सिद्धान्त स्कूली शिक्षा की महत्ता प्रतिपादित करन वाला है।

ब्रूनर का दूसरा सिद्धान्त शिक्षा जगत मे एक सर्वथा नया अभिमत है कि कोई भी विषय किसी भी बालक को विकास के किसी भी स्तर पर बौद्धिक ईमानदारी के साथ प्रभावकारी ढग से पढाया जा

सकता है।' अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि अगर समुचित रीति से पाठों की संरचना पर ध्यान दिया जाए तो किसी भी विचार, समस्या अथवा ज्ञान को सरल विधि से प्रस्तुत किया जा सकता है ताकि कोई भी जिज्ञासु उसे अच्छी तरह से ग्रहण कर सके। पर इसका आशय यह नहीं कि छह वर्ष की आयु का बच्चा आइंस्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त की सूक्ष्मताओं को अच्छी तरह से हृदयगम कर सकेगा। ब्रूनर की मान्यता है कि अगर विषय की संरचनाओं पर समुचित रीति से ध्यान दिया जाए तो आइंस्टीन की मोटी मोटी बात बच्चा समझ सकता है। बल्कि यदि उसे पूछा जाए तो वह किसी भौतिकशास्त्री को उक्त सिद्धान्त से सम्बन्धित अच्छे भले उत्तर भी दे सकता है।

यहाँ एक सवाल खड़ा होता है कि छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रभावशाली तरीके कैसे तैयार किये जाएँ? क्या आधार हो? इसके उत्तर में ब्रूनर पाठ्यवस्तु की प्रस्तुति के तीन तरीकों का उल्लेख करता है: प्रस्तुति का ढंग, प्रस्तुति की लाघवता, प्रस्तुति की ताकत।

ब्रूनर की मान्यता है बालक इन्द्रियबोध (एनक्टिव) से मूर्त प्रस्तुति (आइकानिक) की ओर और अंत में अमूर्त (सिम्बालिक) प्रस्तुति की दिशा में बढ़ता है इसलिए शिक्षण विधियों का निर्धारण भी तदनुसार ही किया जाना चाहिए। कई बार ग्राह्य शक्ति की न्यूनता वाले बालकों को समझाने के प्रयास में शिक्षकों को इसीलिए निराशा का सामना करना पड़ता है कि उनकी प्रस्तुति का ढंग बालकों के अनुभूति स्तर से असंगत होता है। बच्चा तब तक अग्राह्य स्थिति में रहेगा जब तक कि सम्प्रेषित वस्तु उसके लिए बोधगम्य नहीं होगी।

छोटे बच्चे किसी भी चीज़ को क्रिया द्वारा सीखते हैं। चूँकि उनका मनोजगत इन्द्रिय बोध से दिशा ग्रहण करता है इसलिए उन्हें सिखाने में गत्यात्मक और क्रियात्मक उदाहरणों का समावेश किया जाना चाहिए। याने शब्दहीन सम्प्रेषण के प्रयास किये जाएँ। जब बच्चे बिना क्रिया के वस्तु को समझने लग जाते हैं तो स्पष्ट है कि उन्हें प्रस्तुति में मूर्तता की आवश्यकता है। वे अब खाने के अभिनय या क्रिया के बिना भी चम्मच या रोटी के चित्र बना सकते हैं। बालक के बौद्धिक विकास में इस बिंदु की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका यह है कि शिक्षण को स्थाई व आसान बनाने के लिए चित्रों एवं रेखाकनों का आश्रय लिया जाए। प्रस्तुति के तीसरे चरण में, जिसे ब्रूनर ने 'अमूर्त' या 'सांकेतिक' नाम से अभिहित किया है, बच्चे अनुभवों को भाषा द्वारा व्यक्त करने लग जाते हैं। उनके विचारों में तार्किकता और संश्लिष्टता आने लगती है। इसी से उनका अनुभव

जगत निर्मित होता है जो समस्या समाधान के लिए बालको को प्रेरणा प्रदान करता है।

प्रस्तुति के इन तीनो तरीको मे से अध्यापक किसे चुने कि जिससे शिक्षण प्रक्रिया को बल मिले? यह बात तो बालक की उम्र पर उसकी पृष्ठभूमि तथा पाठ्यवस्तु पर निर्भर करती है। अगर नीति सम्बन्धी कोई पाठ्य विषय है तो प्रस्तुति अमूर्त हो। भूगोल के शिक्षण मे मूर्त प्रस्तुति काम आती है और गति सम्बन्धी कौशल सिखाने हो तो मूर्त प्रस्तुति बहुत कारगर सिद्ध होती है। पर गणित को इन तीनो ही प्रस्तुतियो मे समाहित किया जा सकता है ऐसी ब्रूनर की मान्यता है।

ब्रूनर का तीसरा शिक्षण सिद्धात है अनुक्रम याने क्रमिकता। अगर बालको को किसी विषय को समझने मे कठिनाई दरपेश आती है तो यह काफी कुछ उस विषय की क्रमिक प्रस्तुति पर निर्भर करता है। पढाते वक्त इस बात का सर्वाधिक ध्यान रखा जाना चाहिए कि विद्यार्थी को विषय के विविध पक्षो की क्रमिकता से परिचित कराते हुए आगे ले जाया जाए। ब्रूनर ने इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर इगित करते हुए लिखा है कि बोद्धिक विकास भी अपने आतरिक रूप मे क्रमबद्धता लिए होता है। यह अभिनय से मूर्त की तरफ और फिर अमूर्तता की ओर जाता है। इसलिए अध्यापक को किसी भी विषय के शिक्षण मे भी यही क्रमिकता बरतनी चाहिए। क्रमिकता बालको के लिए उत्प्रेरण का भी काम करती है।

ब्रूनर का चौथा और अतिम शिक्षण सिद्धान्त है पुनर्बलन । सीखने के लिए पुनर्बलन की आवश्यकता होती है। किसी भी समस्या या विषय पर अधिकार हासिल करने के लिए फीडबैक मिलना ज़रूरी है यह ज्ञान ज़रूरी है कि उसे हम कैसे सम्पादित कर रहे है।

इन्हीं सिद्धान्तो के परिप्रेक्ष्य मे ब्रूनर ने बालको के सीखने की अनुसधान विधि बनाई है। पर यह विधि सर्वथा ब्रूनर के मस्तिष्क की ही उपज नहीं है। इस दिशा मे जॉन डीवी तथा कई अन्य सज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिको ने भी प्रयास किये थे। ज्याँ पियाज़ द्वारा काफी पहले सुझाई गई यह बात इस विधि के केन्द्र मे स्थित है कि कक्षा की पढाई मे बालक की ही सक्रिय भूमिका रहनी चाहिए। हमारे यहाँ स्थिति इसके ठीक विपरीत रहती है याने अध्यापक कक्षा मे सर्वाधिक मुखर होता है और विषयवस्तु से सम्बन्धित व्याख्याएँ अथवा सूचनाएँ स्वय विद्यार्थियो को वह उपलब्ध कराता है। अनुसधान विधि का आशय यह है कि विद्यार्थी ज्ञान का अपना पैकज खुद तैयार करे जबकि व्याख्या विधि का आशय

यह रहता है कि कोई अन्य व्यक्ति आकर उसे खोलकर बताए।

किसी भी कविता को कठस्थ करना पहाड़े या देशो की राजधानियो के नाम याद करना बहुत आसान है। लेकिन यदि अर्थपूर्ण सीखने सिखाने का आग्रह है तो इसके लिए अनुसधान करना पड़ेगा। विद्यार्थी जब स्वय अपने अन्वेषण या अपनी छानबीन से तथ्यो को ज्ञात करता है ता वह उसके लिए ज्यादा उपादेय रहता है अपेक्षाकृत स्मृति पर निर्भर रहकर सूचनाएँ एकत्र करने के। शिक्षकों के सामने अपनी अपेक्षा रखते हुए ब्रूनर ने लिखा है कि विद्यार्थियो को एक वैज्ञानिक इतिहासवेत्ता या गणित शास्त्री की भाति स्वत काम मे लगने द और अपनी समस्या के समाधान तलाशने दे। यानि अर्थ का अन्वेषण वे करे और शिक्षक उन्हे बोधगम्य भाषा मे अवधारणाएँ समझने मे सहायक बन। द एक्ट ऑफ डिस्कवरी नामक अपने एक निबध मे ब्रूनर ने अनुसधान विधि के चार लाभ बताए है

1 बौद्धिक सामर्थ्य म अभिवृद्धि
2 वाह्य की अपेक्षा आतरिक लाभ पर बल
3 समस्या समाधान मे इस तकनीक का उपयोग
4 स्मृति मे चिरकालिक स्थायित्व।

ब्रूनर यह नहीं कहते कि अनुसधान की विधि ही सीखने की एक मात्र नायाब पद्धति है। न ही वे बालका से यह कहते कि किसी विषय विशेष की प्रत्येक समस्या के अन्वेषण मे वे अपनी शक्ति खपाते रहे। जो तकनीके अथवा जो विचार हमारी सस्कृति का अग बन गए है उनकी फिर से तलाश करके देखना वक्त की बरबादी ही है। अब रेडियो प्रसारण की जिस विधि को वर्षों पूर्व मारकोनी ने एक बार अन्वेपित कर दिया तो इसका यह आशय नहीं कि बालक उस दिशा मे अपनी ताकत लगाए। हॉ सूझ बूझ युक्त प्रश्नो के माध्यम से शिक्षको के निर्देशन मे वे रेडियो प्रसारण के मूलभूत सिद्धान्तो की पड़ताल अवश्य करे। सीखने की यह विधि रेडियो प्रसारण सिद्धान्तो को रटने की बजाय कहीं ज्यादा उपयोगी रहती है।

शिक्षण की यह विधि शिक्षको के लिए चुनोतीपूर्ण है। बालको को निर्देशित करने वाले व्यक्ति को अधिक गभीर अधिक चौकन्ना नम्र और अपने विषय का अधिकारी बनना पड़ता है। हड़बड़ी या जल्दबाज़ी को इसमे कतई कोई स्थान नहीं। एक अच्छा शिक्षक धैर्यवान होता है और अनुसधान विधि का सचालन धैर्य के साथ ही किया जाता है और यही इसकी प्रभविष्णुता का राज़ भी है।



समरहिल का सम्मोहन

लगभग एक दशक पूर्व एक अमेरिकी शक्षिक पत्रिका म बी एफ स्किनर का एक निबंध पढने म आया था द फ्री एण्ड हैप्पी स्टुडेट। निबंध के प्रारम्भ मे लिखा था

उस बालक का नाम है एमील। अठारहवीं सदी के मध्य भाग मे जन्मा था वह– जिन दिनो व्यक्तिगत स्वतत्रता का पहला पहला दौर शुरू हुआ था। पिता का नाम है जीन जैक्वीज रूसा पर उसका लालन पालन करने वाले माता पिता और भी है जैसे पैस्टोलाजी फ्रॉबेल मोंटेसरी से लेकर ए एस नील और ईवान ईलिच तक।

वह एक आदर्श बालक है। गुरुजना और माता पिताआ के प्रति उसक हृदय म सम्मान है। अनुशासन की उसके साथ कोई समस्या नहीं। वह पढता है क्योंकि कुदरत ने उसे जिज्ञासु बनाया है। वह धीज़े बनाना सीखता है क्योंकि वे उसमे दिलचस्पी जगाती है। पर दुर्भाग्यवश वह कल्पनाशील है। रूसो के साथ वह इसी स्वाभाविकता स रहा था जिसन स्वय अपन बच्चा को अनाथालय म भर्ती करा दिया था और फिर मन के किसी निभृत कोने मे अपने आप से पूछा था– कैसे पढाऊँ अपने इस कथा नायक को?

पर रूसो ही नहीं बालक को आज़ादी दकर खुशी खुशी पढाने क आर भी प्रमाण पॉल गुडमन जॉन हाल्ट जोनाथन कोजोल या चार्ल्स सिल्वरमैन आदि की पुस्तको मे मिल जाते है। वे सब के सब काल्पनिक है। एमील को सही ढग से शिक्षा देन के प्रमाण कहीं कहीं ओर कभी कभी ही मिलते है।

आज भी एमील अध्यापका क सामने बैठा है और परेशान है। उसे भरपूर स्वतत्रता देकर आह्लादपूर्वक पढाने का मुकम्मल प्रबध देखने मे नहीं आता। मान ले अगर किसी किडरगार्टन या मोंटेसरी मे अनुकूल वातावरण मिल भी गया तो उससे अगली सीढी पर तो उसे अनुशासन

स्तरीयता कक्षा श्रेणीबद्धता आदि न जाने किन किन बंधनों में बँधना पड़ता है। एक पूरी व्यवस्था उस पर हावी हो जाती है। किसी भी कोने से उसे स्वयं को पहचानने समझने में मदद नहीं मिलती। उसे तो वही बनना पड़ेगा जो उसे व्यवस्था बनाना चाहती है। ऐसे में एमील की परेशानी को समझा जाना चाहिए।

हमारे योजनाकारों के जेहन में यह बात आती क्यों नहीं कि अगर एमील को कक्षा की चहारदीवारी में बेंचों की कतारों में बिठाने से उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता आहत होती हो तथा उसकी सृजनात्मकता बाधित होती हो तो बेंचें हटा दें या बालक को कुदरती माहौल में ले जाया जाए। अगर उसकी क्रियाशीलता तथा स्वाभाविक प्रवृत्तियों में उच्छृंखलता नज़र आती है जिसे बल प्रयोग द्वारा ही शमित किया जा सकता है तो बराए मेहरबानी उस अव्यवस्था को जारी रहने दीजिए क्योंकि वह शैक्षिक है सृजनकारी है। परीक्षाओं और श्रेणियों की चिंता किये बगैर बालक को अगर सचमुच में अज्ञान से मुक्त नहीं किया जा सकता तो ऐसी परीक्षाएँ समाप्त कर देनी चाहिए।

मेरे मानस में एक चित्र उभरता है। एमील एक ऐसे स्कूल में पढ़ रहा है जहाँ वह हर तरह से खुश है मुक्त है आह्लादित है अपने में खोया है अपने आप को पहचानने में और माहौल के अनुरूप ढलने में लगा है। उसका शारीरिक मानसिक भावनात्मक विकास स्वयमेव हो रहा है और धीरे धीरे वह पूरी सामाजिक व्यवस्था इंसानी बिरादरी उसके साथ अपने अंतर्संबंध एक न्यायप्रिय समाज व्यवस्था और प्रत्येक व्यक्ति की सीमाओं को समझ रहा है।

बहुत पुराना स्कूल है यह। इंग्लैंड के लीस्टन (साफोक) में सन 1921 में खुला था। नाम है समरहिल। संभव है बहुतों ने इसे देखा हो जाना हो। मैंने तो इसके बारे में पढ़ा है– बार-बार पढ़ा है और हर बार इसे पढ़ते पढ़ते मानस में एक चित्र उभरा है कि यही वह स्कूल हो सकता है जहाँ एमील की उत्तम पढ़ाई हो सके। और ख़यालों ही ख़यालों में वह 'समरहिल अपने पूरे परिवेश के साथ हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषि मुनियों वाले किसी तपोवन के पार्श्व में उतर आता है। ए एस नील के भीतर किसी तत्व-दृष्टा ऋषि जैसा जीवन सत्य झिलमिला उठता है। 'समरहिल का सम्मोहन मन पर ऐसा छाता है कि वह इन्द्रजाल हटाए नहीं हटता। यह सम्मोहन जागा है उसे बार-बार पढ़ने से और उसके भीतर पैठने से।

यूँ तो सदियों से व्यक्ति एवं समाज को सुधारने बल्कि इन्हें पूर्ण बनाने के लिए सही शिक्षा की महत्ता को समझा गया है और इसके लिए प्रबंध भी हुए है, क्योंकि मनुष्य के भीतर एक भलापन है, एक विवेक भी है और शिक्षा के माध्यम से बाहरी आवरण को हटा कर इन गुणो को जगाना होता है। इसी मूल भाव से हर देश मे न जाने कितनी सारी शालाएँ खुली होंगी। रूसो ने अपनी अमर कृति एमील मे इसी विचार को व्यक्त करते हुए लिखा है कि बालक को समाज के बनावटी रूढ पुराने बंधनो से अगर हम मुक्त कर लेगे तो उस मुक्त वातावरण मे वह स्वभावानुसार अपना विकास कर सकेगा। ऐसे ही 'समरहिल' का भी मूलमंत्र यही है— बालक को अपने विकास के लिए मुक्त छोड दीजिए। मानवीय विकास के नैसर्गिक तरीको से वह स्वयं अपना विकास कर लेगा।'

समरहिल शिक्षा जगत मे एक ऐसा अदभुत विद्यालय है जो बालको के स्वस्थ संवेगात्मक समायोजन पर अधिक बल देता है। जहाँ हर बालक स्कूली गतिविधियो और पाठ्यक्रम मे निर्णय लेने का अधिकारी है। किताबो कक्षाओ परीक्षा आदि को जहाँ महत्त्व नहीं दिया जाता अपितु मुक्त विचाराभिव्यक्ति को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाता है और जहाँ बच्चो पर कम से कम पाबंदियाँ आयत की जाती है।

आइए जरा 'समरहिल' की काया मे प्रवेश करे।

यह एक आवासीय स्कूल है। पाँच से पन्द्रह वर्ष की उम्र के बच्चे पढते हैं पर 16 वर्ष की उम्र तक ही उनको पढाने का नियम है यहाँ और छात्रो की संख्या भी सीमित रखी जाती है याने 20 लड़कियाँ और 25 लड़के।

बालक बालिकाओ के रहने के कमरो मे किसी को निरीक्षण अवलोकन की इजाज़त नहीं है। बच्चे अपने कमरो मे मुक्त है। पोशाक का भी उन पर कोई बंधन नहीं जो भाये सो पहनो।

शुरु शुरु मे अखबार वालो ने इस स्कूल को लेकर बड़ा कोहराम मचाया नाम दिया था- 'मनमर्ज़ी का स्कूल'। बालको को जंगली आदिवासियो का समूह बताया था— जो न आचार जानते न सलीके।

प्रारम्भ मे 'समरहिल' एक प्रायोगिक स्कूल था। बाद मे यह प्रदर्शन स्कूल बन गया क्योंकि अपनी निराली शैक्षिक प्रवृत्तियो द्वारा इसने सिद्ध कर दिखाया था कि 'स्वतंत्रता का असर' होता है। ए एस नील दम्पति एक ऐसा स्कूल खोलना चाहते थे जो बच्चो के अनुरूप ढले न

कि जहाँ बच्चे स्वय को स्कूल के अनुरूप ढाले। नील ने अपने वक्त मे कई विद्यालया मे अध्यापन-कार्य किया था और वे उन तमाम शिक्षण विधियो एव व्यवस्थाओ से वाक़िफ थे जो प्रौढ अवधारणाओ पर आधारित होने के कारण एक आचारगत बधन रखती थी कि बच्चो को कैसा व्यवहार करना चाहिए और कैसे पढाना चाहिए। ये उस ज़माने की बाते थीं जब विज्ञान मे मनोविज्ञान की स्वतत्र सत्ता का उदय भी नहीं हुआ था। नील ने यह तय किया कि स्कूल मे प्रत्येक बालक को पूरी आज़ादी दी जाए। इसका यह अर्थ हुआ कि उन्हे अनुशासन उपदेश परामर्श नैतिक शिक्षा धार्मिक निर्देशो आदि से निजात पानी पड़ी।

नील की मान्यता थी कि बालक स्वभावत भला होता है और उनका यह विश्वास जीवन की आखिरी साँझ तक अडिग रहा था। इसी भरोसे उन्होने 'समरहिल मे बड़ बड़े करिश्मे कर दिखाए थे। अगर हम बालक के प्रति आस्थावान रहे कि वे बुद्धिमान और यथार्थवादी होते है और अगर हम उन पर अपने प्रौढ सुझाव न लादे तो वे उस हद तक विकास कर दिखाते है जहाँ तक जाने की उनमे क्षमता होती है।

'समरहिल की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ पढना ऐच्छिक है। बच्चे चाहे तो अध्यापको के पास पढने जाएँ चाहे तो वर्षों तक न जाएँ। समय विभाग-चक्र है ज़रूर पर बालको के लिए नहीं अध्यापको के लिए। पढने क इच्छुक छात्र वैसे तो अपनी वय के अनुसार ही कक्षाआ म जाते हैं पर कई बार वे अपनी रुचि के अनुसार भिन्न कक्षाओ मे भी जाने को स्वतत्र है। 'समरहिल म नूतन शिक्षण विधि या सिद्धान्त नामक कोई चीज़ नहीं लगी क्योंकि अध्यापकगण पढान को अपने आप मे बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं मानते। उदाहरण के लिए गणित म भाग लगाने की प्रक्रिया का ज्ञान कराना हो तो विशिष्ट शिक्षण विधि पर उन लोगो का कोई आग्रह नहीं होता क्योंकि इस विषय की महत्ता सिर्फ उन्हीं छात्रो के लिए है जो इसे सीखना चाहते हैं और जो बालक भाग की प्रक्रिया सीखने के इच्छुक हैं वे चाहे कैसी ही विधि से क्यो न सिखाया जाए सीखेगे ही।

'समरहिल मे अमूमन किंडरगार्टन स्तर तक के बालक नियमित रूप से कक्षा-कक्ष में बैठ कर पढते हैं पर दूसरी स्कूलो स यहाँ आकर भर्ती हुए छात्र पढते नहीं खेलते हे दिन भर साइकिले चलाते हैं। महीनों तक वे कक्षा का मुँह भी नहीं देखते। कक्षा मे जाने मे उन्हे लगभग उतना ही समय लग जाता है जितने समय तक पिछले स्कूल की पढाई ने उनम नफरत पैदा की थी। कान्वेट की एक लड़की ने तो कमाल ही

कर डाला। तीन साल तक आवारागर्दी करती रही वह। यहां बालको को दिये गए स्वतंत्र वातावरण को देखकर आगंतुक भी चक्कर में पड़ जाते है कि कैसा पागलपन है यह जहाँ विद्यार्थी चाहे तो पूरे पूरे दिन खेले।

एक लड़का था जैक सात वर्ष का। वह इंजीनियरिंग के एक कारखाने में भर्ती होने के लिए 'समरहिल' छोड़ गया था। कुछ अर्से बाद एक दिन कारखाने के प्रबंध निदेशक ने उसे बुलाया और पूछा 'मान लो तुम्हे पढने का एक मौका और मिले तो क्या तुम इटन में पढ़ना चाहोगे या समरहिल में' और जैक ने बेझिझक जवाब दिया 'समरहिल में'।

पर यह तो बताओ कि वहाँ ऐसी क्या खूबी है कि जो दूसरी स्कूलो में नहीं है?" अधिकारी ने पूछा।

जैक ने जरा सोच कर धीमे से कहा "मेरे ख्याल से 'समरहिल' में आपको पूर्ण आत्मविश्वास का भाव मिलेगा।"सुनकर अधिकारी खुश हो गया क्योंकि उसने जैक को अपने ऑफिस में पूरे आत्मविश्वास के साथ प्रविष्ट होते देखा था अतः बोला 'लोगो को जब मैं बुलाता हूँ तो वे मेरे दफ्तर में आते ही कुछ असुविधा बेचैनी महसूस करने लगते है जबकि तुम दफ्तर में यूँ आए जैसे मेरी बराबरी के हो। अच्छा बताओ तुम किस विभाग में काम करना पसंद करोगे।

इस कहानी से स्पष्ट है कि समरहिल में पढना या सीखना अपने आप में उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना व्यक्तित्व निर्माण या चरित्र निर्माण।

समरहिल वास्तव स्वातंत्र्य का पर्याय विद्यालय है जहाँ न पढने वालो को न पढ़ने की छूट है और पढने वालो को पढने के तमाम अवसर उपलब्ध कराये जाते है। यहाँ पढने वाले 12 वर्षीय बालक भले ही अन्य विद्यालयो के हम उम्र छात्रो से वर्तनी सुलेख गणित में पीछे हो परीक्षा देने की तकनीक में वे किसी से भी पीछे नहीं है जबकि यहाँ परीक्षाओ को कोई स्थान नहीं। परीक्षाएँ ली तक नहीं जातीं। हाँ कभी कभार मौज़ मज़े के लिए ए.एस.नील अजीबोगरीब प्रश्नावली बना कर परीक्षा लिया करते थे।

कक्षा में जाने वाले छात्रो के विपरीत 'समरहिल' में ऐसे प्रचुर उदाहरण भी देखने को मिलते है कि जब शिक्षको की अनुपस्थिति मात्र से छात्र क्षुब्ध हो जाएँ। वे कक्षाओ में बैठकर कई तरह के ढेर सारे काम करना पसंद करते हैं। नौ वर्षीय डेविड को कुकर खाँसी हो जाने

के कारण कक्षा म जाने से रोक दिया गया था। इस पर वह चीख पड़ा– मै राजर्स के भूगोल के पाठ नहीं छाड़ूँगा। वस्तुत डेविड यहाँ जन्म से ही था और नियमित कक्षा शिक्षण को लेकर उसके विचार बहुत स्पष्ट थ। एक बार 'समरहिल म शाला परिषद ने एक छात्र को अपराधी घोषित करके उस सज़ा दी कि वह सप्ताह भर तक कक्षा मे पढने नहीं जाएगा। इस पर विद्यालय के सभी छात्रो ने मिलकर इस बात की खिलाफत की कि यह सज़ा बहुत अधिक है।

अपने परिवार स दूर रहन क बावजूद 'समरहिल के विद्यार्थी न घर की याद म रोते-झींकते है न भागने की काशिश करते है। शायद ही कभी किसी बालक को किसी ने चीखते सुना हागा क्योंकि आज़ाद रहन पर वे अपनी नफरत को बहुत कम व्यक्त करते है अपक्षाकृत दबा कर रखे जान वाले छात्रा की तुलना म। घृणा घृणा को जन्म दती है और प्रेम प्रम को। बालका को प्रेम देने का अर्थ है उनकी क्रियाआ को मान्यता देना सम्मान देना। 'समरहिल की यह खूबी प्रत्यक विद्यालय क लिए अनुकरण योग्य है। अगर कोई किसी बालक को पीटेगा ता ज़ाहिर है उसे बालक का समर्थन ता मिलन से रहा।

समरहिल मे अध्यापका और छात्रो के अन्तर्सम्बधा घटित घटनाओ और प्रसगा क माध्यम से सही बौद्धिक दृष्टिकोण या आचार-व्यवहार ढालन का एक भी अवसर हाथ से जान नहीं दिया जाता। ए एस नील शुरू स ही मान कर चलत थे कि ये इसानी दुर्बलताआ स उपर या अलग नहीं है। अत उन्ह लेकर किसी बालक को दोषी ठहराना गलत है। एक बार नील ने कुछ आलू बोये। एक बालक न उनम से चार छह पौधे चुरा लिए। नील ने बालक क सामने प्रश्न तो अवश्य खड़ा किया पर वह नैतिकता अनैतिकता का नहीं था मिल्कियत का था। याने किसी को भी किसी दूसरे की मिल्कियत पर कब्जा करने का अधिकार नहीं है। हर किसी को अपनी चीज़ रखने का अधिकार हाना चाहिए। इसी तरह एक और पक्ष पर भी 'समरहिल म अधिक बल दिया है और वह है समता अर्थात बराबरी का। नील अपने छात्रा का ठीक वेस ही हुक्म उठाते थे जैसे कि वे छात्रा से अपने आदेश पालन की अपेक्षा रखते थे। पॉच वर्ष की उम्र के एक बालक बिल ने नील को एक बार अपनी जन्मदिन पार्टी से बाहर चले जाने का आदेश दिया था क्योकि उसने उन्ह बुलाया तक नहीं था और नील साहब खरामा खरामा उसके कमरे से बाहर चले गए।

समरहिल की एक और बड़ी विशेषता है उसकी स्व शासन व्यवस्था जा सर्वथा प्रजातान्त्रिक है। हर शनिवार की शाम शाला की साधारण सभा की बैठक होती हे ओर उसमे सामाजिक सामुदायिक जीवन से सबधित अपराधो गलतियो पर मिल बैठकर चर्चा होती है और सज़ा सुनाई जाती है। स्टाफ क प्रत्यक सदस्य ओर हर उम्र क छात्र को वाट देने का अधिकार होता हैं आंर प्रत्यक के वाट का बराबरी का महत्त्व दिया जाता है।

समरहिल के छात्र ही मिल बैठकर अपने लिए नियम बनात है जैसे स्टाफ के सदस्य की अनुपस्थिति म समुद्र स्नान वर्जित है छत पर चढना मना है सोने का हर किसी क लिए समय निर्धारित है आर उसका पालन करना होगा नहीं तो फाइन देना पड़ेगा।

शनिवार की हर बैठक म स्टाफ पूरा उपस्थित रहता हे और परिचर्चा म भाग लेता हे। बहुधा छात्रा की शिकायते कोई चीज़ चुराने निर्धारित नियमा का उल्लघन करन या किसी को डरान धमकान सबधी हाती है ओर यथासभव बैठक म उन पर नरम रवया अपनाते हुए सुधारवादी निर्णय लिये जात हैं। बहुधा किसी नियमोल्लघन या अपराध का भागी छात्र बैठक के निर्णया का शिरोधार्य कर लेता है पर यदि वह सज़ा को मानन स इन्कार करता है तो उसे परिषद क सामने अपनी सफाइ पेश करने का अवसर दिया जाता है। एसी स्थिति म उसक पक्ष का बहुत गौर स सुना जाता हे आर बहुधा प्रतिपक्ष क असताप का ध्यान म रखत हुए उसकी सज़ा का कुछ कम कर दिया जाता है।

शाला परिषद क अधिकारिया क आदशा को छात्र पूरी भावना स स्वीकार करते ह। एक बार चार बड़ लड़का का शाला की साधारण सभा न अपन कमर की चीज़ चुरा कर बचन क जुर्म म सज़ा सुनाई। सज़ा थी कि इन्हे शाम आठ बज तक अपन कमर म जाकर साना पड़ेगा। उन्होने सज़ा को शिरोधार्य कर लिया। एक सोमवार को जब सारे छात्र शहर मे सिनेमा देखने गए थे डिक नामक एक छात्र जो उन चारो मे से एक अपराधी था अपने कमरे मे पढ रहा था। ए एस नील ने जाकर उसे कहा अबे बड़ा मूर्ख हे तू। सारे के सारे लड़के सिनेमा देखने गए हे। तुम क्यो नहीं जाते? पूरे मनोभाव से अपनी शाला परिषद का आदेश पालन करने वाले उस छात्र ने तत्काल कहा 'कृपया मज़ाक न करे मुझसे?' --प्रजातात्रिक विधान के प्रति 'समरहिल क बालको म ऐसी वफादारी प्रशसनीय और अनुकरणीय चीज़ है। बहुधा किसी अपराध

क लिए दडित छात्र का शाला की साधारण सभा का अध्यक्ष चुना जाता है। न्याय के प्रति छात्रा मे ऐसा उत्कृष्ट भाव दखने मे आता ह कि अचरज हाता है। वद्ये प्रत्येक घटना पर जो तर्क वितर्क प्रस्तुत करते है ओर जैस प्रशासनिक निर्णय लेते हे वे महान हैं। शिक्षा की भाँति स्व शासन भी उनक लिए एक अपरिमेय मूल्य है।

समरहिल मे वहुधा सज़ा फाइन क रूप म दी जाती है। या तो सप्ताह भर के लिए अपना जेव खर्च वद कर दो या सिनेमा जाना वर्जित। तीन लड़कियाँ अपनी सहेलियो की नींद मे विघ्न डाल रही थीं। सहेलिया ने फरियाद की। इस पर लड़किया को यह सज़ा दी गई कि सप्ताह भर तक उन्हे निर्धारित वक्त से एक घटे पहले जाकर सोना पड़ेगा। दा लड़का की शिकायत आई कि उन्हाने अपने साथिया पर मिट्टी के ढले फक। उन्ह सज़ा दी गई कि वे हॉकी मैदान मे छकड़ा भर कर मिट्टी वरावर जमाएँ।

तो 'समरहिल एसा विद्यालय है जिसने स्व शासन व्यवस्था को अमल म लाकर दिखा दिया। चाहे काई शाला छात्रा की आज़ादी का कितना ही दभ भर पर अगर वहाँ उन्ह अपने सामाजिक जीवन की गतिविधियो के सचालन की पूरी आज़ादी नहीं मिलती तो उनकी प्रगतिशीलता वेकार का दिखावा मात्र है। जव तक शाला म कोई स्वामित्व का भाव जताएगा तव तक कैसी आज़ादी। ओर अधिकाश विद्यालयो म छात्रा पर एक 'वॉस हावी रहता है।

इधर हमारे विद्यालया में स्वशासन की यह प्रवृत्ति लगभग अदृष्ट है। पहल विद्यालयो के साथ छात्रालय भी होते थे ओर छात्रालया म स्व शासन व्यवस्था चला करती थी। पर अव ता छात्रालय भी या ता लुप्त हा गए या पढ़ाई से भिन्न अन्य असामाजिक प्रवृत्तिया के केन्द्र वन गए। समरहिल क सस्थापक ए एस नील की मान्यता थी कि स्व शासन स इतन सारे शैक्षिक लाभ होते हैं कि उन्ह कम करके नहीं आँका जाना चाहिए। वद्ये व्यावहारिक नागरिकशास्त्र की विधि जान जाते हैं साथ ही यह भी कि अपने अधिकारा को हासिल करने या उनकी रक्षा करने के लिए कैसे जान की वाजी लगा देनी चाहिए। स्कूल मे सप्ताह भर की विविध विषया की पढ़ाई एक तरफ और एक दिन की शाला साधारण सभा की बैठक एक तरफ। छात्रो को अपनी वात कहने का कैसा उम्दा मच मिलता है और अपनी सहज स्वाभाविकता के साथ वे अपने को व्यक्त करते हैं। वहुधा वद्ये विना पूर्व तेयारी के वड़ी लवी-लवी समझयुक्त

तक़रीरे करते है। मैं समझता हूँ बाल अभिव्यक्ति के लिए यह विधि अधिक स्वाभाविक और शैक्षिक है बजाय उन बाल सभाओ के जहाँ महत्वहीन ओर उबाऊ विषयो पर छात्रो को पराये अननुभूत उधार के वाक्य बोलने सिखाए जाते हे।

समरहिल म बालको को अपन हाथो से अपना इच्छित काम करने का अवसर मिलता है। ए एस नील ने शिक्षा के सबध म अपनी बुनियादी चिता व्यक्त करते हुए एक स्थान पर लिखा था कि हमारे जीवन का प्रयोजन है सुख की प्राप्ति और शिक्षा का प्रयोजन हे सुखी जीवन की तैयारी। अपनी सस्कृति पर गौर कर तो हम अपने को सफल नहीं कह सकते। हमारी शिक्षा राजनीति अर्थनीति–सब क सब हम युद्ध की ओर ले जा रहे हे। दवाओ से मर्ज नहीं मिटते। धर्मों से धाड़े और सूदखोरी नहीं घटती। मानवता की माला जपने वाल लोग शिकार के हिंसक खेलो म रस लेते है। विज्ञान ने ध्वस का साज़ो सामान ओर भी तैयार कर दिया है और सचमुच सिरहाने युद्धो क नगाड़े बज भी रहे है क्या कारण है इसका? – कारण यही कि विश्व की सामाजिक चेतना अभी तक आदिम बनी हुई है। क्योंकि हमने शिक्षा का कोई सही स्वरूप नहीं बनाया। नील 'समरहिल के छात्रो को इतना तैयार कर देना चाहते थे कि यहाँ से निकलने वाले छात्र स्वनिर्भर स्वानुशासित विवेक सम्पन्न ओर सामभावी बन कर निकल। इसी परिप्रेक्ष्य मे उन्होने शिक्षा मे समुदाय और अभिभावको का सर्वाधिक योगदान प्राप्त करने की चेष्टा की थी क्योंकि बालक को तैयार करने के समानातर अभिभावको को भी विश्वास म लेना लाजिमी है।

अपने वक्त मे 'समरहिल ने अभिभावको की शिक्षा सबधी भ्रात धारणा की चूलो को हिलाने का काम किया था। याने लोगो ने यही मान रखा था कि शिक्षा सिर्फ स्कूलो मे ही दी जाती है। 'समरहिल ने उन्हे बताया कि शिक्षा का पहला स्थान है घर परिवार जहाँ अभिभावक बिना विचारे बालको की स्व क्रिया मे बाधा डाल देते है या उनकी सृजनशीलता को बढने नहीं देते। वस्तुत बच्चे भी ठीक वैसे ही सीखते हे जैसे प्रौढ। अत स्कूल ज़रूरी नहीं है। और फिर स्कूलो मे जो पुरस्कार दिये जाते है या परीक्षाएँ और अक दान का जो तत्र बनाया गया है वह छात्रो को उनके सम्यक व्यक्तित्व विकास से अलग ही हटाता है। सिर्फ पोगे पडित ही इस बात का समर्थन करेगे कि किताबे पढना ही शिक्षा है। स्कूलो मे किताब सर्वथा अनुपयोगी शिक्षण उपकरण होती है। बालको के लिए पहली आवश्यकता है– पढना लिखना गणित–शेष सब सर्जनात्मक

प्रवृत्तियाँ याने खेल नाट्य कला मिट्टी के काम और स्वतंत्रता। शालाओं मे किशोर-वर्ग व छात्रों को हमारे यहाँ बहुधा ऐसा अनुपयोगी काम करने को दिया जाता है जो उनके समय शक्ति और धैर्य का अपव्यय मात्र कहा जाएगा। ऐसा अशैक्षिक काम उन्हें खेल के अपने अधिकार से वंचित करता है।

फटाफट ऊँची से ऊँची शिक्षा का एक मिथ्या भ्रम शिक्षाविदों और अभिभावकों को इतना दिग्भ्रमित किए हुए है कि उसके परिणाम की चिंता किए बगैर वे एक ऐसी पीढ़ी को उगाना चाहते हैं जो ज्ञाता अवश्य बन जाएगी पर अनुभूतिहीन संवेदना रहित। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले हमारे युवा बिल्कुल ऐसे ही हैं। 'समरहिल' ऐसी कुकुरमुत्ता संस्कृति के विरुद्ध है। ए एस नील ने आंग्ल प्रशिक्षणालयों में भाषण करते हुए ऐसी पीढी को देखा था। उनके साथ बातचीत करते हुए उन्होंने उन्हें बताया था कि ये लोग एक अनुभूति जगत को अपने पीछे छोड़ आए हैं और उसे नितांत छोड़ चले जा रहे हैं। उनकी किताबों में मानवीय चरित्र नदारद है प्रेम स्वतंत्रता आत्म निर्णय की बात गायब हैं। और शिक्षा का एक तंत्र निरंतर आगे बढ़ा चला जा रहा है। उसका मक़सद है छात्रों को सिर्फ किताब पढ़ाओ भले ही उनके दिल और दिमाग में कोसों भर दूरी बढ़ती रहे। 'समरहिल' इस दूरी के खिलाफ है।

तो एमील को मैंने ऐसे ही किसी स्कूल में पढ़ते देखा था जहाँ वह खुश रहे खेले आज़ाद रहे चीज़ों को चुनने और उन्हें समझने की जहाँ छूट हो और उसके चारों ओर समान भावनाओं के खिलखिलाते बालक भरपूर उल्लास का जीवन जीयें। 'समरहिल' आत्मविश्वास से युक्त एक पूर्ण इंसान बनाना चाहता है शायद इसी कारण इसका सम्मोहन मुझ पर हावी है।

□

जीवन और शिक्षा की समग्रता

बहुत वर्षों पहले की बात है। एक क्रोधी अध्यापक ने एक दुबले पतले बालक को क्लास से बाहर निकाल दिया क्योंकि बालक पढ़ाई मे कमज़ोर था। अध्यापक को भय था कि कहीं उसकी संगति का प्रभाव अन्य विद्यार्थियो पर न पड़। ऐसी घटनाएँ आज भी अनेक विद्यार्थियो मे देखी जाती है। सशंकित अध्यापक छात्रो को सज़ा देने के इरादे से क्लास स बाहर निकाल देते है ओर बेचारे बालक महफ़िल से बाहर निकाल जाने जैसा अपराध भाव लिये मुँह लटकाए बाहर टापते रहते है। पर उक्त घटना वाला बालक क्लास से निकाले जाने पर न आतंकित हुआ न उसने अपने मन म अपराधी होने का भाव आने दिया। वह क्लास से बाहर के परिवेश को देखने लगा— झूमते महकते वृक्षो चहचहाते पक्षियो हवा के शीतल मंद प्रवाह और खुले आकाश की वादियो म वह खो गया। पढ़ाई की एक खुली कक्षा इधर थी और एक बंद क्लास अन्दर। बालक को आश्चर्य हुआ तो महज़ इसी बात का कि उसके साथी लोग बंद क्लास म वहाँ क्या बैठे है जबकि यहाँ इतना आकर्षण है सौंदर्य है गतिशील जीवन का संचार है।

यही बालक आगे चलकर महान विचारक बना— जे कृष्णमूर्ति जिसने सुशिक्षित व अभिजात जगत को विषम मानवीय समस्याओ शिक्षा विज्ञान धर्म दर्शन की सचाइयो व प्रासंगिकताओ का ज्ञान दिया। कृष्णमूर्ति आज नहीं रह पर वे लाखो नर-नारियो के लिए एक सच्चे शिक्षक और मसीहा थे। उनके एक एक शब्द को सुनकर लोगो को अपनी सांसारिक व्यथाओ और पीड़ाओ से मुक्ति का मार्ग मिला था।

वे भारत मे जन्मे थे भारतीय थे पर किसी एक देश जाति विचारधारा या सम्प्रदाय के घेरे मे उन्होने अपने को कभी क़ैद नहीं रखा था। व पूरे इंसान थे— मुक्त व चेतन इंसान और इसी नज़रिये से उन्होने राष्ट्रो व्यक्तियो जातियो धर्मो आदि की समस्याओ पर दृष्टिपात किया

था। उनक विचार आज पूरी मानवता के लिए ग्राह्य और अनुकरणीय हैं।

मूलत व शिक्षक थे और शिक्षा के बारे म उन्हाने बहुत सारी पुस्तके लिखी हे। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वे मात्र सिद्धातकार थे। उन्हाने अनेक शिक्षण सस्थाएँ स्थापित की थी और खुशी की बात कि भारत मे स्थापित उनक कृष्णमूर्ति फाउडेशन की ओर से यहाँ उनकी विचारधारा पर चार स्कूल इस समय चल रही है। एक है आध्रप्रदेश की ऋषि घाटी में दूसरी वाराणसी की राजघाट स्कूल तीसरी स्कूल अडियार मे है और चौथी बगलार की वेली स्कूल।

उनकी विचारधारा ओर स्कूलो के उद्देश्या कार्यो का जानना हमारे लिए बहुत ज़रुरी हे क्योंकि राष्ट्रीय स्तर पर हम शिक्षा क नए स्वरूप की तलाश म हैं और यह जानकारी निश्चित रूप स हमारी उस तलाश मे सहयोग बनेगी।

कृष्णमूति ने परपरागत शिक्षण पद्धति से भिन्न एक नया सोच सामने रखा था कि युगा युगा स चली आने वाली इस शिक्षा पद्धति ने स्वतत्र विचार करने की हमारी शक्ति को असभव बना दिया है। अगर सच्ची शिक्षा पद्धति लानी है ता सबसे पहले हम सम्पूर्ण जीवन का अर्थ समझना होगा। इस सवाल पर रूढिगत ढग से न सोच क्योंकि रूढिगत ढग से सोचने वाला व्यक्ति विचारवान नहीं हाता। वह किसी प्रणाली या सस्था या विचारधारा का अनुयायी हो जाता है। उन्हीं क शब्दो को बोलता है। उन्हीं का आचरण करता है। वस्तुत जीवन को किसी अमूर्त भाव या मतव्य स नहीं समझा जा सकता। जीवन को समझना याने अपने आप को समझना। यही शिक्षा का प्रारभ है और यही अत।

सिर्फ ज्ञान का सग्रह व सकलन करना अनेकानेक विषयो की सुसगत जानकारी लेना ही शिक्षा नहीं है। सम्पूर्ण रीति स जीवन का मर्म समझना ही सच्ची शिक्षा है। पर जीवन की सम्पूर्णता को उसके खड रूप म नहीं समझा जा सकता। कितने आश्चर्य की बात हे कि इसक बावजूद राज्य धर्म और विद्वान लोग यही खडित प्रणाली अपना रहे हे।

इसी बात को अधिक बल दकर कृष्णमूर्ति न अपने एक निबध म लिखा था अज्ञानी मनुष्य वह नहीं हे जो अशिक्षित हे अपितु वह है जो अपने आप को नहीं पहचानता। अगर शिक्षित व्यक्ति समझ हासिल करने के लिए पुस्तको पर ज्ञान पर तथा अन्य माध्यमा पर अवलबित रहता हे ता वह मूढ है। समझ सिर्फ स्वज्ञान द्वारा ही प्राप्त होती है

और अपने मन की समस्त क्रियाओ को जानना ही स्वज्ञान है।'

आज की शिक्षा व्यक्ति का जिस अन्धी गली म ल जा रही ह जहाँ शास्त्रीय ज्ञान हासिल करने के वाद व्यक्ति किन्हीं आजीविकाआ से जुड़ जाता हे सुखी जीवन और आर्थिक समृद्धि की दिशा मे बढ जाता हे कृष्णमूर्ति उसे नकारते हुए कहते है पढना लिखना ज़रूरी है इजीनियरी के काम या अन्य धधा की जानकारी हासिल करना भी ज़रूरी है पर शास्त्रीय ज्ञान से क्या जीवन समझने की शक्ति मिलती है यह विचारणीय प्रश्न हे। वस्तुत शास्त्रीय ज्ञान गौण है। अगर इसी को हासिल करने म हम लग हे तो जीवन का एक वहुत वड़ा भाग हम यूँ ही बेकार गॅवा दगे।'

ज़ाहिर है कृष्णमूर्ति जीवन की एकागिता को पाषित करने वाली शिक्षा पद्धति अस्वीकार करत हे। अपने विद्यालया का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा था इन विद्यालयो का प्रयोजन वालका को सर्वोत्कृष्ट तकनीकी क्षमताआ स युक्त करना हे ताकि वे आधुनिक विश्व म स्पष्टता और निपुणतापूर्वक अपना काम चला सक। साथ ही साथ वालको के लिए हम ऐसा वढिया वातावरण वनाना है कि व पूर्ण मानव क रूप म विकसित हो सक। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्हे परोपकार व कल्याणकारी वातावरण मे तैयार किया जाए। इसक लिए उन्हे जीवन की पूर्णता स सम्पृक्त रखना ज़रूरी है। लागा विचारा वस्तुओं के ससर्ग सम्पर्क स भी उन्हे सही वातावरण मिले।

एक अन्य स्थल पर उन्हाने लिखा था कि विद्यालय ज्ञान के एसे केन्द्र न वन जाएँ कि वे आत्मकेन्द्रित प्रवृत्तिया या ऐंद्रिक सुख की ही लालसा जगाएँ अपितु वहाँ की ज़िदगी से सही कार्यों को सपादित करन की समझ जाग पारस्परिक सवधा की गहराई और उसके सादय की दृष्टि विकसे तथा धार्मिक जीवन की पावनता महके। उनके लिए धर्म बहुत व्यापक शब्द था।

कृष्णमूर्ति फाउडेशन के समस्त विद्यालया म जीवन की इसी सम्पूर्णता पर वल दिया जाता है। छात्रा को मुक्त ओर निर्भय वनने की स्थितियाँ दी जाती ह। यही वज़ह ह कि वहाँ परीक्षाएँ कभी भी नहीं ली जाती न परीक्षाओ के लिए छात्रा को तेयार कराया जाता है। कृष्णमूर्ति ने कहा था जुल्मो क वेसे तो कई रूप और कई तरीके होते है पर उनकी चरम अभिव्यक्ति हे परीक्षाएँ। छात्रा से भी एक वार उन्होने इसी तथ्य की ओर इगित करते हुए कहा था कि अगर वे महज़ प्रतियोगिताओं क लिए अपन को तयार करग सिर्फ सफलता की ही लालसा रखग

तो उनके चारों ओर जो वास्तविक मूल्य विद्यमान हैं, उनके प्रति वे अपनी संवेदना खो बैठते।

तो कृष्णमूर्ति के विद्यालयों में परीक्षाएँ नहीं होतीं, पर एक ऐसा वातावरण बालकों को दिया जाता है कि व किसी बाहरी दबाव या भय से प्रभावित हुए बगैर अपने व्यक्तित्व को स्वत: विकसित कर। प्रेम-प्यार और सहयोग-सहकार के उस माहौल म विद्यार्थी एक पूर्ण जीवन जीते हैं और जीना सीखते हैं।

ऋषि घाटी स्कूल मदनापल्ली (कृष्णमूर्ति के जन्म स्थान) से 16 कि.मी. दूर है। 370 एकड़ के विशाल प्रांगण म कई बगीचे हैं। कक्षा 4 से 12 तक कुल 350 लड़के-लड़कियाँ वहाँ पढ़ते हैं। अध्यापकों की संख्या 40 है। यानी शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात 1:9 है। वाराणसी का स्कूल भी विस्तृत प्रांगण म है। वहाँ भी लगभग इतने ही छात्र-छात्रा हैं। इसी प्रकार बंगलौर का स्कूल भी विशाल परिवेश मे स्थित है– पहाड़, खेत, वन, झरने आदि। हाँ, अडियार के स्कूल का प्रांगण छोटा है। पर प्राकृतिक वातावरण सुन्दर है।

इन स्कूलों म संगीत, खेल, पठन तथा ललित कलाओं मे बालकों की रुचियों को विकसित किया जाता है। परीक्षाएँ न होने पर भी विद्यार्थी संदर्भ पुस्तक टटोलते हैं, विश्वकोष देखते हैं तथा अपने नोटस लेते हैं।

अध्यापकगण छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता के मनोवैज्ञानिक आधार को मानकर चलते हैं, अत: सबो को एक ही ढर्रे पर एक-सा पाठ्यक्रम देकर काम कराने के बजाय उन्ह आत्म विकास का भरपूर अवसर प्रदान करते हैं। वहाँ टाइम टेबल जैसी बाध्यता नहीं है। कोई विद्यार्थी किसी पाठ को चाहे घंटे भर म समझे या दो घण्टे म, अध्यापक आपत्ति नहीं करते। बल्कि वे ऐसे तमाम छात्रों को अच्छी तरह स सही-सही समझने म मदद देते हैं ताकि उस समझ के आधार पर बाहर की बहुत सारी बातों को आसानी से समझा जा सके। विद्यार्थियों के श्रेष्ठ व उत्तम कार्यों के लिए वहाँ कोई पुरस्कार नहीं दिया जाता, न ही काम न कर पाने या धीमी गति से करने पर दंड दिया जाता है। गरज़ यह कि वहाँ प्रतिस्पर्धा व तुलना को कोई स्थान नहीं।

पर इन विद्यालयों के छात्र वर्ष मे एक बार केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की या इंडियन स्कूल सर्टिफिकेट की परीक्षाएँ देते हैं और शत प्रतिशत उत्तीर्ण होते हैं। अधिकांशत: छात्रो को 'विशिष्ट' दर्जे मिलते हैं। इस उदाहरण से अपने लिए हम सबक ले सकते हैं कि सामान्य

विद्यालयो म जो बार वार परीक्षाएँ लेने का रिवाज है उसे हटा देना लाभकारी हागा।

कुल मिलाकर कृष्णमूर्ति क विचारा पर स्थापित इन विद्यालयो की कार्य पद्धति से हम प्रचलित विद्यालयी व्यवस्था मे कुछ परिवर्तन ला सकते हैं। हमारी शिक्षा नीति म भी कागजी उपाधि क स्थान पर अतज्ञान को विकसित करन दड पुरस्कार व प्रतिस्पर्धा से बचने तथा सही अर्थ मे एक जिज्ञासु समाज बनाने के विचारो को सम्मिलित कर सकते हे।

कृष्णमूर्ति न एक स्थान पर लिखा था सतुलित या कहे प्रज्ञाशील मनुष्य निर्मित करना शिक्षा का मुख्य कार्य होना चाहिए। डिग्रियाँ लेकर तथा समझ से वचित रहकर हम यन्त्र की भाँति कुशल जरूर बन सकते है। मात्र जानकारियाँ इकट्ठी करना समझ नहीं ह। हमने परीक्षाओ और उपाधियो को ज्ञान की कसौटी बना डाला यह क्या किया? कृष्णमूर्ति क विद्यालयो म विद्यार्थियो की अपनी समझ विकसित करने के लिए अभिव्यक्ति के अन्यान्य पक्षो पर अधिक बल दिया जाता है। बहुधा विद्यार्थी जीवन और जगत के शाश्वत एव विवादास्पद विषयो पर अपने शिक्षको से वार्तालाप करते हे जैसे साम्प्रदायिक सौहार्द धर्म या ईश्वर को लेकर समुदाय मे व्याप्त अशान्ति आदि आदि। इस प्रयास म छात्रो को उन मनोवैज्ञानिक तथ्यो की स्वत जानकारी हो जाती है जो जीवन को खडित करते है।

एक तरह से कहे तो कृष्णमूर्ति की शिक्षा पद्धति छात्रो को न सिर्फ समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी नागरिक क रूप म तैयार करती हे अपितु वह अत प्रकृति और बहिर्प्रकृति के सतुलित समन्वय से जीवन को पूर्णता मे देखने की दृष्टि भी प्रदान करती हे।

❒

वसुधा का स्कूल एक नई दिशा

तुम्हारा स्कूल कैसा चल रहा है वसुधा?

जी, अच्छा।

पढाने म आनद आता है?

जी पढाती कहाँ हूँ?

ता फिर क्या करती हो?

ढर सारे खिलोनो ओर आकर्षक चीज़ो से सजे एक कमर म बालकों को छोड़ दती हूँ मै। बच्चे उन्ह देखते हे छूते है हाथ म लेकर उलटते पलटते है और खेलते हे। इसी प्रयास मे चीज़ कई बार हाथ से गिरकर टूट भी जाती हे। बस यही पढाई हे मेरे यहाँ।

वसुधा की बाते सुनकर क्षण भर को मैं ठिठका क्योकि जिस तरह की स्कूले इधर गली मोहल्लो मे खुलने लगी है उनकी व्यावसायिक प्रकृति से वसुधा की बात मुझे कुछ अलग लगी थी। मैने तत्काल एक चुटकी ली

तब तो बहुत जल्दी छुट्टी हो जाएगी तुम्हारी।

सो कैसे? वह सकपका गई।

'कैसे क्या? माँ बाप बच्चो को तुम्हारे स्कूल मे पढने भेजते हैं या इस तरह मौज़ मज़े करने खेलने गुलछर्रे उड़ाने? राज रोज यही पढाई चलेगी तो किसी दिन बच्चो के माँ बाप तुम्हारे कान खीचने नही चले आएँगे?

इसके लिए मै तैयार हूँ, अकल' उसके चेहरे पर आत्मविश्वास की चमक थी। मानो जीवन क अपने अपवाद से वाकिफ थी वह।

कहने लगी वैसे तो मेने बालको के प्रवेश के समय ही उनके माता पिता को कह दिया था कि बच्चो की पढाई को लेकर वे अपने विचार मुझ पर थोपने की कोशिश न करे न कभी उलाहने लेकर आएँ कि अभी तक इनको वर्णमाला पढनी लिखनी ही नहीं आई अथवा इन्होने गिनती ही नहीं सीखी क्योकि मेरे यहाँ पढाने का तरीका थोड़ा हटकर

विद्यालयो म जो बार बार परीक्षाएँ लेने का रिवाज़ है उसे हटा देना लाभकारी होगा।

कुल मिलाकर कृष्णमूर्ति के विचारा पर स्थापित इन विद्यालयो की कार्य पद्धति से हम प्रचलित विद्यालयी व्यवस्था मे कुछ परिवर्तन ला सकते हैं। हमारी शिक्षा नीति मे भी कागज़ी उपाधि के स्थान पर अतर्ज्ञान को विकसित करने दड पुरस्कार व प्रतिस्पर्धा से बचने तथा सही अर्थ म एक जिज्ञासु समाज बनाने के विचारो का सम्मिलित कर सकते है।

कृष्णमूर्ति ने एक स्थान पर लिखा था सतुलित या कहे प्रज्ञाशील मनुष्य निर्मित करना शिक्षा का मुख्य कार्य होना चाहिए। डिग्रियाँ लेकर तथा समझ से वचित रहकर हम यन्त्र की भाँति कुशल ज़रूर बन सकते है। मात्र जानकारियाँ इकटठी करना समझ नहीं है। हमने परीक्षाओ और उपाधिया को ज्ञान की कसौटी बना डाला यह क्या किया? कृष्णमूर्ति के विद्यालयो मे विद्यार्थिया की अपनी समझ विकसित करने के लिए अभिव्यक्ति के अन्यान्य पक्षो पर अधिक बल दिया जाता है। बहुधा विद्यार्थी जीवन ओर जगत के शाश्वत एव विवादास्पद विषयो पर अपने शिक्षको से वार्तालाप करते हैं जैसे साप्रदायिक सौहार्द धर्म या ईश्वर को लेकर समुदाय मे व्याप्त अशान्ति आदि आदि। इस प्रयास म छात्रा को उन मनोवैज्ञानिक तथ्यो की स्वत जानकारी हो जाती है जो जीवन को खडित करते है।

एक तरह से कह तो कृष्णमूर्ति की शिक्षा पद्धति छात्रो को न सिर्फ समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी नागरिक के रूप मे तैयार करती हे अपितु वह अत प्रकृति और बहिर्प्रकृति के सतुलित समन्वय से जीवन को पूर्णता म देखने की दृष्टि भी प्रदान करती है।

❒

वसुधा का स्कूल एक नई दिशा

तुम्हारा स्कूल कैसा चल रहा है वसुधा?

जी अच्छा।

पढाने मे आनद आता है?

जी पढाती कहाँ हूँ?

तो फिर क्या करती हो?

ढर सारे खिलौनो और आकर्षक चीज़ो से सजे एक कमर म बालकों को छोड़ दती हूँ मै। बच्चे उन्हें देखते है छूते है हाथ म लेकर उलटते पलटते है आर खेलते है। इसी प्रयास मे चीज़ कई बार हाथ स गिरकर टूट भी जाती है। बस यही पढाई है मेर यहाँ।

वसुधा की बाते सुनकर क्षण भर को मैं ठिठका क्योंकि जिस तरह की स्कूले इधर गली मोहल्ले मे खुलने लगी है उनकी व्यावसायिक प्रकृति से वसुधा की बाते मुझे कुछ अलग लगी थी। मने तत्काल एक चुटकी ली

तब तो बहुत जल्दी छुट्टी हो जाएगी तुम्हारी।

सो कैसे? वह सकपका गई।

'कैसे क्या? माँ बाप बच्चो को तुम्हारे स्कूल मे पढने भेजते ह या इस तरह मौज़ मज़े करने खेलने गुलछर्रे उड़ाने? रोज रोज यही पढाई चलेगी तो किसी दिन बच्चो के माँ बाप तुम्हारे कान खींचने नहीं चले आएँगे?

इसके लिए मै तैयार हूँ, अकल' उसके चेहरे पर आत्मविश्वास की चमक थी। मानो जीवन के अपने अपवाद से वाकिफ थी वह।

कहने लगी 'वैसे तो मने बालको के प्रवेश के समय ही उनके माता पिता को कह दिया था कि बच्चो की पढाई को लेकर वे अपने विचार मुझ पर थोपने की कोशिश न करे न कभी उलाहने लेकर आएँ कि अभी तक इनको वर्णमाला पढनी लिखनी ही नहीं आई अथवा इन्होने गिनती ही नहीं सीखी क्योंकि मेरे यहाँ पढ़ाने का तरीका थोड़ा हटकर

है। बावजूद इसके अगर माता पिता शिकायत लेकर आएँगे तो मै उनको बड़े ही धैर्य के साथ सारी बात समझा दूँगी।

मने प्रतिप्रश्न किया क्या समझा दोगी? –यही कि तुम सब कुछ जानती हो और माँ बाप कुछ नहीं जानते समझते? इसलिए वे खामोश रह कुछ न बोले मूक दृष्टा बने रहे?

'जी नहीं मैने एक पम्फलेट छपा कर सब का बाँट दिया है। उसमे मेरे स्कूल का उद्देश्य साफ-साफ लिखा हुआ है कि अल्प आयु क बच्चो की पढ़ाई का दबाव और बधन म नहीं होती। मेर यहाँ बच्चे मुक्त रहगे और चीज़ो को देखकर उपयोग मे लाकर स्वय अनुभव करगे। बच्चे परस्पर सवाद करगे। अध्यापक उनसे तरह तरह की बात करेंगे और वे भी हमसे तरह तरह की बाते पूछेंगे। प्रारंभिक उम्र के बच्चो की इन्द्रियो का विकास करना अधिक ज़रूरी है न कि उन्हे वर्णमाला या गिनती सिखाना।

मुझे उम्मीद है कि मेरे उद्देश्य पत्र को माता पिता पढ चुके होग फिर भी अगर वे मेरी बात न समझे हो तो वे चाहे जितनी बार आएँ और पूछताछ करे मुझे कोई फरक नहीं पड़ेगा अकल।

वसुधा की बात सुनकर मन उल्लास से भर गया।

दरअसल हम वसुधा के मकान मे किराए पर रहते हुए अभी दो तीन महीने ही हुए थे। पत्नी के वाणी व्यवहार और अपनत्व के कारण वसुधा और उसकी छोटी बहने ही नहीं उसके मम्मी पापा भी दिन मे कई कई बार मिलने आ जाते थे। लगता था मानो हमारा एक ही परिवार हो।

वसुधा के बारे मे किस्तो मे बाते सामने आई कि दुर्भाग्य ने उसका जीवन सहचर छीन लिया था कि ससुराल में उसके साथ अच्छा सलूक नहीं हुआ था कि पापा उसे घर ले आए थे कि पढ लिख कर वसुधा ने अपना ही काम करने का निश्चय किया था कि अब वह पिता के घर म ही जीवन बिताना चाहती है आदि आदि।

जब से वसुधा को मेरे शिक्षक जीवन के अनुभवो म अपनापन और ग्राह्यता महसूस होने लगी है तब से तो वह जाते आते बीसो बार छोटी छोटी बातो पर मेरी राय लेती रही है।

एक शाम वह आई। लगा जैसे फुरसत मे थी। उसने अपने स्कूली अनुभवो का प्रसग छेड़ दिया। बोली बच्चो की दुनिया भी एक अलग ही दुनिया होती है अकल' किताबो से तो उसे हर्गिज नहीं जाना जा सकता। मैं बच्चो के बीच बैठती हूँ और उन्हे काम मे मशगूल देखती

हूँ तो देखकर हैरान हो जाती हूँ कि कितनी लगन होती है उनम? कितनी जिज्ञासा और क्रियाशीलता होती है? ये थकना भी नहीं जानते। उनको काम मे मदद देना उनकी प्रशसा करना उनके आकर्षण को बनाए रखना काम म लीन उनक अन्तर्मन को पढना अपने आप म एक बेमिसाल अनुभव होता है। कई बार बच्चो के साथ काम करते-करते मै इतना खो जाती हूँ कि दूसरे ज़रूरी काम याद तक नहीं आते। कई बार स्वय पर गुस्सा भी आता है कि योजना बनाकर काम करना क्या नहीं आता मुझ? बात ही बात म वसुधा न अनायास अपनी एक जेनुइन व्यथा मरे समक्ष रख दी।

मेरे पास इसका इलाज ही क्या था। अपने अध्यापन काल म योजनाएँ बनाकर काम करने वाले कई अध्यापको को देखा था। उनम स कइयो ने नोकरी छाडकर प्राइवेट स्कूले खोल ली थीं कइयो न अपने पुत्र-नातियो सबधियो को प्राइवेट स्कूले खुलवा दी थीं ओर योजना बनाकर बाकायदा उन्हे सचालन कार्यो मे मदद दते रहे थे। पॉच सात वर्षों म ही उनके चेहरो पर लाली छाने लगी थी व्यक्तित्व निखर उठा था। स्कूल भवन बन गए थे। घर के मकान बन गए थे। स्कूटर गाड़ियाँ खरीद ली थीं। कहने का आशय यह है कि योजना बाल विकास के बजाय उनके अपने विकास की बनी थी। कक्षाओ मे क्या हो रहा था ओर क्या नहीं इससे उनको क्या लेना-देना' लड़को पर होमवर्क लादा जाता था फीस इतनी अधिक थी और ड्रेसो किताबो कॉपियो एक्टिविटी का खर्च इतना अधिक था कि माता पिता को स्कूली पढाई को लेकर प्रश्नचिह्न लगाने की बात ही याद नहीं आती थी। सरेआम एक ठगी चल रही थी और माता पिता स्वेच्छया ठगे जा रहे थे।

वसुधा की जेनुइन व्यथा ने मुझे हक़ीक़त से दो चार कर दिया। पर मैं ये बाते वसुधा से सीधे सीधे कहना नहीं चाहता था। मै उससे कैसे कहता कि योजना बनाकर ऊपरी टीम टाम करने वाले तथाकथित अध्यापक तो बहुत देखे बस नहीं देखे तो कक्षा मे बालको के साथ परिश्रम करने वाले डूब कर शिक्षण कार्य करने वाले अध्यापक नहीं देखे। बालको के साथ खो जाने वाले शिक्षक का मेरे दिल मे बहुत ऊँचा स्थान था। यह 'विस्मृति ही सार्थक शिक्षण का उद्गम है।

अपनी तरफ से कुछ भी कहने की बजाय मैंने वसुधा से एक प्रश्न पूछना समीचीन समझा

क्यो वसुधा' बालको के साथ खो जाने मे तुम तकलीफ क्या महसूस करती हो?

निजी रूप म ता काइ तकलीफ नहीं होती मुझे वह बोली पर कई बार समय का ध्यान नहीं रहता या फिर जब बच्चो के माता पिता आकर खड़े रहते हे और उन पर मेरी एकाएक नजर पड़ती है तो अपने प्रति बड़ी कोफ्त हाती है कि यह कैसी अशिष्टता! माता पिता भला क्या सोचते होंगे कि कैसी अभद्र टीचर है कि आने वालो को एटड तक नहीं करती!"

'पर ये तुमको काम मे खोये देखकर खुश भी होते होगे। कृत्रिमता आर सहज स्वाभाविकता का फर्क भी क्या किसी को समझाना पड़ता है? और लगे हाथ मैंने अपने अध्यापक जीवन के प्रारभिक वर्षों का अनुभव उसे सुनाना शुरु कर दिया— आज की पढाई म 'विस्मृति' का यही तत्व नदारद है वसुधा! मेरे मत से तुम योजना वोजना के चक्कर म मत पड़ना। शिक्षण के लिए पहली ज़रूरत ह अपने विद्यार्थियो को पहचानना। फिर तुम्हारे पास तो बहुत छोटे बच्चे आते हे। उनके साथ काम करना सचमुच जितना कठिन और पेचीदा है उतना ही सरस उत्फुल्लकारी और शिक्षाप्रद भी! अगर तुम उनको कोई प्रवृत्ति नहीं दागी तो तुम्हारी खेर नहीं। प्रवृत्ति मिलते ही बच्चो का एक नई दुनिया मिल जाती है फिर ता तुम बस उनकी लीलाएँ देखती रहो!'

बाते करते-करत म सचमुच अपने प्रारभिक अध्यापन काल मे जा पहुँचा जब मे छोटी कक्षा के बालको को पढाने का काम किया करता था। अनेक चेहरे मेरी आँखो क सामने झिलमिलाने लगे। मैने कहा वसुधा! क्या तुमने कभी गौर किया है कि बच्चो के कितने कितने रूप होते है और कितनी कितनी मुद्राएँ होती है उनकी? –काम मे लगे विचारों में मगन कभी अपन शिकवे शिकायत और तर्क पेश करते कभी नाराज़गी नफरत और उग्र रूप दिखाते कभी प्यार दुलार भरे मददगार सुधबुध भूले खोज मे डूबे अपने खयालों को कोई आकार देते चपल नटखट कल्पनाशील निरीह उद्धत ईर्ष्यालु परदुखकातर दुष्ट दयालु रचनाशील अपराधी भुलक्कड़ आदि आदि। पर एक अध्यापक के लिए वह्र शुद्ध निरपक्ष रूप म बच्चे ही होते है। उनकी विविध मानसिकताओ से आग्रहरहित रहन म ही शिक्षक के लिए लाभ की बात है। हम उन्हे बराबरी का सम्मान द।

मुझे नहीं पता कि तुम स्कूल मे कैसे काम करती हो पर इधर की प्राइवेट स्कूलो म लागों मे स्वय को 'खास' दिखाने की प्रवृत्ति कुछ ज्यादा ही बढ गई है मानो शिक्षक का कोई नाता ही नहीं रहा बच्चों से! छोटे बच्चो के साथ काम करते हुए मैंने स्वय को विशिष्ट दिखाने

का कभी प्रयत्न नहीं किया न पद प्रतिष्ठा की परवाह की। न मैंने बच्चों को कभी हुक्म दिया न अनुशासन लादना चाहा। अगर तुम कोई योजना बनाना चाहती हो तो भले ही बनाओ पर योजना अपने मन में ही बनाना। योजना बनाने का अर्थ बच्चों से दूर छिटकना उनसे अपने व्यक्तित्व को अलग दिखाना नहीं है। क्यों तुम्हारा क्या खयाल है वसुधा?

वसुधा मेरे एक - एक वाक्य को मानो आँखों के रास्ते भीतर उतार रही थी। बड़ी दत्तचित्त थी। कहने लगी बच्चों से क्षण भर की दूरी भी मुझे बर्दाश्त नहीं अंकल! अगर कोई अध्यापक ऐसा व्यवहार करता है बालकों को छोड़कर कहीं बाहर चल देता है तो मैं उसे शिक्षक का बहुत बड़ा अशैक्षिक कदम मानती हूँ। दूसरे आप वाली यह बात भी मुझे पसंद आई कि शिक्षक बच्चों के सामने अपनी पद प्रतिष्ठा या व्यक्तित्व के अलगाव की बात पर न जाए। वैसे अगर बच्चे कक्षा में बैठे आपस में बात करते हैं अथवा परस्पर उलझते हैं तो मैं इसे बुरा नहीं मानती। आखिर यही तो तरीका है उनके सीखने का! बातचीत करने से जहाँ उनकी मैत्री पुष्ट होती है समझ बढ़ती है वहीं अभिव्यक्ति प्रखर बनती है। न तो मुझे बालकों का शोर बुरा लगता न उनका बेतरतीब बैठना खड़े होना या कोई अन्य प्रवृत्ति करना। शिक्षा सिद्धान्तों के आधार पर मेरे यहाँ शायद ही कोई काम होता हो। मैं तो बस एक खुली और उदार दृष्टि लेकर चली हूँ। हाथ उठा कर या वाणी से बोलकर तो क्या मैंने तो आँखों के संकेत से भी कभी बालकों को रोकना-टोकना या उनकी सहज क्रियाओं का दमन करना नहीं चाहा।

यूँ कीजिए अंकल! आप किसी दिन मेरी स्कूल आकर देखिए और फिर मुझे रास्ता दिखाइए कि मैं अपने अंदर क्या कुछ परिवर्तन करूँ कैसा नया असर पैदा करूँ!" वसुधा ने मुझे अपनी कार्य प्रक्रिया भी समझा दी और लगे हाथ स्कूल देखने का न्योता भी दे दिया।

वसुधा के आग्रह को स्वीकार करते हुए मैं एक दिन उसके स्कूल में गया। चहारदीवारी के अंदर बीचोबीच ऊँचे प्लेटफॉर्म पर दो-तीन कमरे बने थे। बीच में बड़ा हॉल था। बच्चों के जूते बाहर क़रीने से रखे थे और हॉल में बच्चे अपनी प्रवृत्तियों में खोये थे। वसुधा भी उनके बीच काम में लगी थी। मैंने अंदर जाकर किसी के भी काम में विघ्न डाले बिना चारों ओर एक नज़र दौड़ाई। बच्चों की आठ दस टोलियाँ संयुक्त रूप से बैठी थीं। कुछ बच्चे इधर उधर अकेले-दुकेले भी बैठे थे दो चार लेटे थे। दीवार के सहारे हॉल में चारों तरफ सामान सजा था।

स्कूल चाहे कितनी ही छोटा क्यों न हो एक बार में उसे भलीभाँति

नहीं जाना जा सकता। मैं भी दो-तीन बार म ही स्कूल को देख समझ पाया। वसुधा का परिश्रम देखकर उसके प्रति श्रद्धा बढी। मैंने उसे अपनी प्रतिक्रिया कई किस्तो मे दी।

एक बात जो सबसे अधिक पसद आई वह थी बालको की पोशाक की स्वतन्त्रता। पर वसुधा से तो मैने चुहल भरे अदाज म ही कहा था यह भी भला कोई स्कूल हुआ वसुधा' कि तुम्हारे यहॉ बच्चे मनमानी ड्रेसों म आएँ? स्कूल की कोई खास ड्रेस तो तय होनी ही चाहिए थी।

इस पर उसने कहा था 'कोई मुझ लाख उलाहना दे बुरा कह या मेरी स्कूल को पोशाल कहे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस समाज से मेरे यहॉ पर बच्चे आते हैं उसकी सास्कृतिक छाप मिटाने का मुझ क्या अधिकार है?' यह तो माता पिताओ का पारिवारिक मामला है। बहुरगी भॉत भॅंतीली वेशभूषा पहने हुए उन बच्चो के बीच बैठकर मैं पूर समाज से मिलने का सुख अनुभव करती हूँ। स्कूल भी तो एक छोटा सा समाज है अकल उस बड़ समाज का प्रतिरूप।'

एक दिन मैने बालको की पृष्ठभूमि के एक अन्तर को रेखाकित करते हुए वसुधा से कहा था 'तुमने देखा होगा कि बच्चे कई घरो से आत है। व अपने साथ घर परिवार के सस्कार और निजी विशेषताएँ लेकर आते है। कुछ पढे लिखे परिवारो के बच्चे तो मानो स्कूल मे पढने सीखने को तैयार होकर ही आते हैं जबकि निम्न वित्तीय परिवारो के बच्चे कम तैयार होते ह या बिल्कुल तयार नहीं होते। इस फर्क को सामान्यत विद्यालयो म नज़रअदाज़ किया जाता है। ऐसे मे कक्षा शिक्षण मे विषयवस्तु की ग्राह्यता अग्राह्यता को लेकर बालको के बीच फर्क बढता जाता है। यह गलत चीज़ है। इससे हर हालत मे बचा जाना चाहिए।

तुम्हारे लिए यह भी एक समझने की चीज़ है वसुधा कि बालक स्कूल मे पढने के लिए आता । वस्तुत बालक दुनिया को अपनी ऑखो से देखने समझने की इच्छा लकर घर से बाहर निकलता है अतएव उसकी कोशिश रहती है कि नज़रो के सामने की दुनिया के बारे मे पुख्ता जानकारी प्राप्त करे। वह खोद खोद कर प्रश्न पूछता है क्योकि उसके अपने कुछ निश्चय और प्रयोजन होते हैं। वह कुछ काम करना चाहता है। वह अपने स्तर पर प्रश्नो के माध्यम से सघर्ष कर करके सासारिक सचाइयॉ ज्ञात करना चाहता है। दृश्यमान वस्तुओं के प्रति उसकी एक आदिम समझ होती है। वह भाषा को नही जानता लेकिन भाषा ही उसके ग्रहण सम्प्रेषण का माध्यम बनती है।

बच्चे म भाषा की चेतना एकाएक नहीं आ जाती । प्रारभिक वर्षो

मे बच्चे के लिए भाषा घटनाओ के साथ जुड़कर आती है। उन दिनो उसक मुँह से निकलने वाले शब्द स्थिति विशेष को व्याख्यायित करत है। वह गौर से समझने की चेष्टा करता है कि जब लोग बाग बोलते बतियाते ह तो व क्या कुछ चेष्टाएँ करत है। उस समय बालक शब्दो के अर्थ पर नहीं जाता। आगे चलकर वह सिर्फ स्थितिया पर नज़र रखता है भले ही एक भी शब्द न बोला जाए।

मेरा कहने का आशय यह है वसुधा कि तुम्हारी स्कूल में आने वाले अलग अलग पृष्ठभूमि क बालका मे से जिनका भी आवश्यकता महसूस करो उनकी भाषायी समझ विकसित करने पर तुम्ह अधिक परिश्रम करना हागा– इसके लिए तुम चाह खेल विधि से काम करो चिट्ठी विधि प्रयोग म लाआ अथवा कहानी विधि। विधियाँ तुम्हारी है। मूल बात है प्रारंभिक उम्र के बालको म भाषा की समझ पैदा करना तथा उन्हे वाचन का कौशल दना। उन बालको की समस्या बड़ी है वसुधा जा अपनी घरेलू पृष्ठभूमि से पर्याप्त तैयारी के साथ नहीं आते। माना कि व उच्चरित भाषा का थोड़ा बहुत सोच सस्कार लेकर आते है और अपना रोजाना का काम उससे ठाठ स चलाते है लकिन सच पूछा ता उन्ह यह कत्तई पता नही होता कि यह पढना भला क्या बला है?

मै आपकी बात समझी नही अकल' वसुधा बीच म बोल उठी।

मैने उसे समझाते हुए कहा था मान लो कि कुछ बालक चार छह महीना स पढने आते है पर क्या तुम यह कह सकती हो कि वे पढना अथवा रीडिंग की सकल्पना से अवगत है या हो गए है? वस्तुत वे इतना भी नहीं बता सकगे कि डाकिय न एक घर मे तो चिट्ठी डाली लेकिन दूसरे घर म क्या नहीं डाली' व यह भी नही बता सकेगे कि उनकी माँ नई चमचमाती बस को छोड़कर पास वाली पुरानी भीड़ भरी बस म क्या बैठी' और तो और कुछ बच्चे यह तक नहीं बता सकगे कि उनके दादाजी आँखो क सामने अखबार उठाए क्या करते है और उन्ह गाना गाने से क्या मना कर देते है'

मरा आशय यह है कि बच्चो को तुम पठन कौशल की तैयारी ता कराओ ही लेकिन उससे पूर्व तुम्हे उच्चरित भाषा पर सर्वाधिक बल देना होगा। ऐसा करना उनकी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने मे मदद देना ही नहीं है अपितु उन्ह यह महसूस कराना भी है कि वे क्या कर रहे है और उसका बोलना जो एक अर्थ रखता है वह शब्दो का समेकित रूप ही है। बच्चे शब्द तक से परिचित नहीं होते। ऐसे अपरिचिता अर्थात पिछड़े घरो स आए जिज्ञासुआ पर तुम्हे विशेष मेहनत करनी चाहिए क्योंकि

वे लोग बहुधा स्कूलों में भी उपेक्षित रह जाते हैं। कबीर वाली बात सच है –जल बिच मीन पियासी रे!

मैं जानता था कि वसुधा बच्चों को ढेर सारी कहानियाँ सुनाती थी और उनके साथ चारों तरफ के विषयों पर बात करती थी ताकि उनकी जानकारी भी बढ़े और अभिव्यक्ति का विकास भी हो लेकिन सदियों से उपेक्षित रहे परिवारों के बच्चे स्कूल में भी उपेक्षित न रह जाएँ यह विश्वास उन्हें दिलाना बहुत ज़रूरी था।

आज तो वसुधा का स्कूल बहुत बड़ा हो गया है। सभी इलाकों के बच्चे यहाँ पढ़ने आते हैं। स्कूल का बगीचा कक्षा की दीवार बरामदे पुस्तकालय वाचनालय प्रयोगशालाएँ खेल के मैदान चित्रशाला आदि सब बच्चों को सीखने में मदद देते हैं। स्कूल होते हुए भी वह बच्चों के लिए घर जैसा है और बच्चे अलग वर्गों के नहीं लगते पूरे समाज के प्रतिनिधि लगते हैं।

बकुल के जिस वृक्ष तले बैठा मैं आज अतीत में खोया बीती बातों की जुगाली कर रहा हूँ वहाँ से सामने हरी भरी घास में दौड़ते खेलते पक्षियों-से चहचहाते बच्चों को देखना बड़ा ही सुखद और भव्य लगता है। कल की सी बात है वसुधा का स्कूल आज बहुत फैल गया है। मैं भी अब यहीं रहने लगा हूँ, उसके पास। वह बहू है मेरी। उसके दोनों बच्चे– अंकुर और विशाखा भी हरी लॉन में खेल रहे हैं। रक्त की मारी बूढ़ी आँखों से अब दूर तक नहीं देखा जा सकता। पहले भी सब बच्चे अपने ही लगते थे और अब तो मानो सब के सब अंकुर विशाखा ही बन गए हैं। कितना सौभाग्यशाली हूँ मैं कि जो दृश्य नंदबाबा या माता यशोदा तक ने नहीं देखा होगा, उसको मैं नित्य विविध रूपों में देखता हूँ।

दृष्टि के समक्ष धरती पर बकुल के फूल बिखरे हैं। पेड़ के नीचे की यह माटी प्रातःकाल की ओस और फूलों के पराग से आर्द्र तो है ही महक भी रही है। और ऐसा ही महक रहा है मेरे मन का आँगन। विद्यालय में खेलते खिलखिलाते परिंदों का कलरव और यहाँ मेरे आवास के आगे फले बकुल में चहचहाते पक्षियों की सुरीली चहचहाहट कितनी समरूप है! इस मधुर गंधवाही संगीत को साँसों में उतारने के लिए वसुधा जैसा सर्जक मन चाहिए।

□

किसिम-किसिम के अध्यापक

कक्षा म उत्तम प्रभावशाली शिक्षण क लिए जितनी अपेक्षाएँ विद्यार्थियो से की जाती हैं उतनी ही अध्यापका स भी की जानी चाहिए। ऐसा ता है नहीं कि जिज्ञासा लगन परिश्रम स्वाध्याय आदि की ज़रूरत सिर्फ विद्यार्थिया का ही पड़ती हो अध्यापका को नहीं। दुर्भाग्यवश यही सोच हमारे विद्यालयो और घरो मे अब भी विद्यमान है और परिणामस्वरूप शिक्षण का वाछित लाभ छात्रा को नहीं मिल पाता। कक्षा म क्या अध्यापक ही छात्रा को देखत ह छात्रा की सेकड़ा आँखे भी ता अध्यापको का अवलोकन ओर मूल्याकन करती रहती हे' पर विद्यार्थिया के प्रति जिस उन्मुक्तता स हमारे शिक्षक अपनी खरी खाटी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कर देते है वैसी आज़ादी विद्यार्थी नहीं लेते। अध्यापका ने अभी अपने आपका इतना सहज व उदार कहाँ बनाया है कि वे ऊँचे आसन से उतर कर नीचे आएँ ओर विद्यार्थिया के बीच स्नेह सौहार्द का एसा सरस वातावरण बना ल कि विद्यार्थी उन्ह अपने मन के विचार मुक्त रूप से आज़ादी के साथ कह सक। यही कारण हे कि शिक्षक-शिक्षार्थी क बीच शिक्षण प्रक्रिया अपनी पूरी अर्थवत्ता और सार्थकता क साथ उभर नहीं पाती।

विद्यार्थिया की बात छोड़िए काश अध्यापक स्वय अपना मूल्याकन करना शुरु कर द ता बहुत लाभ हो। बड़े-बड़े दार्शनिको ओर शिक्षाविदो न स्व मूल्याकन की महत्ता बताई है। सुकरात ने ता बल्कि यहाँ तक कह डाला था कि वह जीवन भी कोई जीने लायक जीवन होता है जिसमे आत्म परीक्षण न हा' ज़ाहिर हे कि जिस ढग से अध्यापकगण स्वय अपने बारे म सोचेगे और महसूस करेगे वेसा ही कक्षा का वातावरण बनेगा और वेसा ही विद्यार्थियो का निर्माण होगा उनका परफोर्मेस होगा। अगर अध्यापका मे आत्मविश्वास है सतुलन स्व नियत्रण और छात्रा को अपने साथ लिए चलने की ललक है तो स्पष्ट है कि इनसे कक्षा म अच्छी पढाई और सहयोग सहकार का अच्छा वातावरण बनेगा। लेकिन इसके विपरीत अगर अध्यापक बहुत अधिक चिन्ता करने वाला भीरु या अस्थिर

प्रकृति का हुआ तो ठीक विपरीत वातावरण सामने आएगा।

इधर तो खेर हवा दूसरी चल रही है। कक्षाएँ विद्यार्थिया और अध्यापको से खाली पड़ी रहती हे। यह एक भिन्न तरह का विरोध है। लेकिन अब भी हमे कई विद्यालय ऐसे मिल जाएँगे जहाँ बाकायदा पढाई होती है छात्र और अध्यापक कक्षा मे रहते है और अच्छा परिणाम सामने आता है। लेकिन हमारी चिन्ता के स्थल वे हे जहाँ विद्यार्थिया मे पढने सीखने की ललक है पर अध्यापक पढाने सिखाने की चुनौती को स्वीकार नही करते। ऐसे जड़ व दब्बू अध्यापक अब भी हमे कक्षा मे मिल जाएँगे जो बड़े ही बेमन स कक्षा म प्रविष्ट होते हे और कुछ भी पढाने के नाम पर बेहद तकलीफ महसूस करते है इसलिए या तो इधर उधर की बातो म वक्त गँवाना चाहते हैं ताकि छात्र व्यस्त रहे या फिर छात्रो को शान्ति से बैठे रहने को कह कर खुद अतर्मुखी बन जाते हे। एकाध बार तो खैर ऐसा चल जाता है पर बार बार लगातार जारी रहने पर कक्षा का वातावरण इतना कोलाहलपूर्ण और बोझिल बन जाता है कि अच्छा भला अध्यापक तो इसे बर्दाश्त ही नहीं कर सकता। लड़के जोर-जोर से बोलने लगते हे किताबे कापियाँ चॉक डस्टर आदि फेकने लगते हे इरक पटकन आर कक्षा मे इधर उधर भटकन लगत हे माना कक्षा न हुई सब्जी मडी हो गई। कक्षा को अपने वाणी व्यवहार से नियत्रित न कर पाने वाले अध्यापको को ऐसे मे कक्षा से भागना पड़ता है। दुर्भाग्यवश अध्यापक यह बात स्वीकारते तक नहीं कि ऐसी दशा लाने वाले वे स्वय है। अगर उनम आत्मविश्वास का अभाव न होता या अपने ज्ञान के प्रति वे भ्रात न हाते तो क्या छात्रो को इन बातो का पता लग पाता? अध्यापको की प्रवृत्तियो आर प्रच्छन्न बातो को पढने मे छात्र बड़ निपुण होते हैं। अत और आर मनोवृत्तियो को लेकर अध्यापक अपनी बात खुद जानें पर विद्यार्थियो के सामने जाने से पूर्व एक खास अनुपात मे उनमे आत्मविश्वास होना बहुत लाजिमी है।

यह तो अध्यापको का एक प्रकार हुआ जिन्हे हम जड़ या दब्बू या डरपोक किस्म का कहेगे। अध्यापको की ओर भी कई किस्मे हैं। उनम कुछ ऐसी अतिरिक्त विशेषताएँ देखने को मिलती है कि वे शिक्षक नहीं कुछ और लगते है। काश वे अपना आत्मपरीक्षण करे तो उन्हे शिक्षक से अवातर दिशा मे बढने या भटकने के बजाय सही लक्ष्य तक पहुँचने की कुतुबनुमा मिले। शिकागो विश्वविद्यालय के प्रो हर्बर्ट थेलन ने लगभग तीस वर्ष पहले एक पुस्तक लिखी थी डायनेमिक्स ऑव ग्रुप्स एट वर्क, जिसम लेखक ने शिक्षको के कतिपय सामान्य विचारों को सूचीबद्ध किया

है जो स्वय शिक्षका ने अपने प्रति व्यक्त किए थे। लेखक ने उन्ह रूपक शैली म सात मॉडल बना कर प्रस्तुत किया है। पर हम उन्हें मॉडल के साथ साथ अगर 'टाइप भी कह दे तो अधिक समीचीन होगा क्योंकि मॉडल म अनुकरण का एक आदर्श तत्त्व विद्यमान रहता है जबकि टाइप बनने म लोगों को एक बुराई भी नज़र आ सकती है जिसस बचा जाना अच्छा होता है।

मॉडल एक

सोक्रेटिक य अध्यापक महादय अपने आपको पुराने जमाने के एक बुद्धिमान प्राचीन गुरु के चोले म देखते है– बेहद जड़ और खब्ती। इनकी ख्याति का आधार होता है तर्क या सवाद से इनका प्रेम। स्वय चलाकर य उत्तेजक वक्तव्य साया करते है और कई बार ऐसे ऐसे अप्रिय विचार को लेकर कुतर्क करने लग जाते है कि उस जिरह से शैतान का ही भला हा सकता है। अपनी नज़र म ये अन्वेषक हाते है। प्रश्न दर प्रश्न पूछना इनका धर्म है। नतीज़े पर शायद ही कभी पहुँचते हैं। कक्षा म अनेक बार चर्चित मुद्दा पर बार बार नए प्रश्न खड़े करना इन्ह बहुत रास आता है। इनकी पाठ याजना म प्रश्ना का अतहीन सिलसिला होता है और छात्रा स उलझने म मज़ा भी आता है। जैसे किसी मकदमे मे प्रश्न म से प्रश्न खाद खादकर पूछे जाते है कक्षा शिक्षण म ये वही तरीका काम म लाते है। अब अगर छात्रो को कोई निर्णय लेना है तो वे स्वय ही ल या फिर प्रश्नकर्त्ता स अपनी सहमति व्यक्त कर ले।

मॉडल दो

नगर प्रबधक य महाशय अध्यापक के रूप म कक्षा के विद्यार्थिया के सहयोग सहकार और मतैक्य की ही अधिक चिन्ता रखते हैं। कक्षा को ये एक समुदाय के रूप म देखते है जिसमे परस्पर निर्भर एक समान इसान निवास करते है। प्रो थेलन के अनुसार शिक्षक के नाते अपने विषय का अधिकारी होन के बजाय य एक नगर-प्रबधक के रूप मे एक मध्यस्थ या नियामक की भूमिका निभाते है। मध्यस्थ के नाते ये अध्यापक अपने छात्र-समुदाय को समुदाय के हित म सहयोग देने हेतु प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार य कोई विशिष्ट उपलब्धि हासिल करने के बजाय इस प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया को अधिक महत्त्व देते है। शिक्षाविदा मे यह विचार इधर पर्याप्त चर्चित रहा है कि कक्षाआ म समुदाय का एक शैक्षिक ताकत के रूप म इस्तेमाल किया जाए। तो क्या इस विचार को जारी रहने दिया जाए कि शिक्षक स्वय को सामुदायिक सहयोग और सर्व-सम्मति प्राप्त करने वाला एक मध्यस्थ ही मान कर चले।

मॉडल तीन

एक आदर्श/एक अनुकृति ऐसे अध्यापक अपने आपको विद्यार्थियो के असली आदर्श मानकर चलते है कि जिनका छात्रा क द्वारा अनुकरण किया जाना चाहिए। इन्ह विद्यार्थियो की अकादमिक पढाई से कोई लेन देन नहीं होता ये उससे बहुत आगे, या कहिए बहुत ऊपर निकल जाते है कि उनके विद्यार्थी जीने की कला कैसे सीखते है। विद्यार्थियो के लिए ये सिर्फ गुरु ही नहीं होते पिता, मित्र सखा ओर बॉस भी होते है। इनकी नज़र म शिष्य का अपने मास्टर का लघु सस्करण बनना चाहिए।

ऑस्ट्रिया के महान शिक्षाविद कोनराड लॉरेंज न बत्तखो के बच्चो का एक उदाहरण दकर शिक्षाशास्त्र मे 'इम्प्रिटिंग' नामक एक विचार दिया था कभी। इस मॉडल वाल शिक्षक भी अपने आपको उसी मादा बत्तख की तरह मानते है कि नन्हे चूजो को उसी का अनुकरण करत हुए पीछे पीछे प्रतिबद्ध आर अनुशासित भाव से चलत रहना है।

मॉडल चार

सेनाध्यक्ष ये अध्यापक कानून और व्यवस्था के समर्थक हात है। ये स्वय अपन नियम बनात ह ओर छात्रो से आशा रखते है कि उनका पालन हो। अस्पष्टता आर संदिग्धता का इनक यहाँ कोई स्थान नहीं हाता। दड ओर पुरस्कार दोनो क लिए ये सर्वेसर्वा और सक्षम होत है। प्रो थेलन लिखत ह कि ये अनिवार्य रूप से हमेशा दड ही दे ऐसा नहीं ये बड़े ही दयालुता ओर सज्जनता का व्यवहार भी करते है जब तक कि विद्यार्थी इनक अनुशासन मे रह।

मॉडल पॉच

व्यवसायी इन अध्यापका क लिए शिक्षण एक व्यवसाय है और ये बिजनेस एक्जिक्यूटिव। इन्ह ता बस एक कम्पनी (क०ना) चलानी है और अपन कमचारिया (विद्यार्थिया) क साथ बिजनेस डील करना है। इनक और विद्यार्थिया क बीच एक काट्रेक्ट हाता है जहॉ प्रत्यक वेतन भागी का काम तय है जिसे कांट्रेक्ट की अवधि मे पूरा किया जाना ह। व्यवसायी प्रशासक (अध्यापक) उस काम क दारान अपने कर्मचारिया से सलाह मशवरा करता है एक तरह स अपनी क्वालिटी को बनाए रखने के लिए प्रयास करता है और अन्तिम प्रोडक्ट का मुआयना करता है।

मॉडल छह

कोच इन अध्यापका की दुनिया बिजनेस एक्जिक्यूटिव की दुनिया से एकदम अलग होती ह। चारा ओर का माहाल मानो लॉकर रूम के जेसा बन गया हो। विद्यार्थी मानो एक टीम के सदस्य हा जहॉ व्यक्तिगत

रूप से भले ही हर कोई महत्त्वहीन हो पर सामूहिक रूप में वे पहाड़ को हटा कर यहाँ से वहाँ रख सकते हैं। अध्यापकों की यह भूमिका हनुमानजी को उनकी शक्ति का स्मरण कराने जैसी है—उत्साहवर्द्धक और प्रेरक। कामना लगन और समर्पण ही प्रमाण चिह्न होते हैं इन अध्यापकों के। छात्रों को अल्पातिअल्प आदेश सूचक शब्द सुनाई देते हैं और वे मिलजुल कर उन्हें अमल में लाकर दिखा देते हैं। कोच का काम बस इतना सा होता है कि एक चुनौती के लिए वह अपने आप को किसी काम में झोंक देता है। उसकी प्रभावोत्पादकता का पैमाना सिर्फ एक ही होता है—नतीजा अन्तिम परिणाम' और जब वह खेल को जीत जाता है तभी उसके मुँह से 'शानदार लड़का 'प्यारा लड़का जैसे शब्द निकलते हैं। कोचिंग के काव्यशास्त्र का ब्रह्मसूत्र है 'विनिंग इज नोट एवरीथिंग इट्स द आनली थिंग।'

मॉडल सात

गाइड बहुत से अध्यापकों में एक व्यवसायी टूरिस्ट गाइड जैसा अदभुत साम्य देखने को मिलता है। ये अपने विषय में निष्णात होते हैं दुनिया भर की उन्हें जानकारी होती है लगता है जैसे चलते फिरते विश्वकोष हों। पर वे कई बार अपने आप में समाये हुए अनिच्छुक और सूत्रात्मक भी होते हैं। क्योंकि यह रास्ता उनका सैकड़ों बार देखा परखा जाना हुआ होता है वैसी जिज्ञासाएँ और वैसे प्रश्न सैकड़ों बार पहले ही वे सुन चुके होते हैं। उनके उत्तर गढ़े गढ़ाए टकसाली और व्यापक होते हैं। छात्रों से एक खास किस्म की तटस्थता उनमें देखने को मिलती है। कक्षा में रहते हुए भी जैसे वे कहीं और होते हैं।

प्रो थेलन द्वारा वर्णित उक्त सात मॉडल प्रत्येक अध्यापक के लिए इष्ट या अभीष्ट नहीं हैं। बहुत सम्भव है कि हममें से अनेक अध्यापक इनमें से कहीं किसी की आत्मा में साँस ले रहे हों। मुख्य बात है अपने से हट कर अपना मूल्यांकन करना और छात्रों के परिप्रेक्ष्य में अपना दायित्व तय करना। अध्यापकों को नए अभिमन्यु की तरह उक्त सातों चक्रों को चीर कर अपनी मौलिक इमेज बनानी होगी। टाइप और मॉडल तो एयर इंडिया के महाराजा की भाँति अतीत की वस्तु बन चुके हैं और उनको वहीं रहने दिया जाए छात्रों के परिप्रेक्ष्य में हमें अपनी नयी भूमिका तय करनी होगी अन्यथा इतिहास यह बात कैसे स्वीकार करेगा कि अभिमन्यु की तरह हमारा इतिहास द्वापर की चौहद्दी में ही नहीं टूट गया था अगली सदी के इस छोर तक आया था।

जा सकता है कि व्यक्ति का व्यवहार आनुवंशिकता एव पर्यावरण की अन्योन्य क्रिया की परिणति है। शिक्षक क नाते हमे इस तीसरे आयाम यानी 'समय की पकड़ करनी कहीं ज्यादा ज़रूरी है। हम जन्मजात गुणा को विकसित करना चाहते हैं तो यह इस बात पर तो निर्भर करेगा ही कि परिवेश कैसा है किस दर्जे का है उसका परिमाण कितना है— बल्कि इस पर भी मुनहसिर करेगा कि वह किस वक्त होगा। शिक्षण का समय जल्दी भी हो सकता है और देरी से भी।

बच्चे अक्सर खेलों मे दिन भर व्यस्त रहते है। समझदार माता पिता व अध्यापक शिक्षण को खेला से ही जोड़कर समय का सदुपयोग कर लेते है पर कई घरो और स्कूला मे जहाँ कक्षा कार्य और गृह कार्य पर ही बल दिया है वहाँ ज़ाहिर है खेल मे व्यस्त रहने वाले बच्चे तो काम के लिए हर्गिज नहीं बैठ पाएँगे। ऐसे मे अभिभावका और अध्यापका का ही फर्ज़ बनता है कि सीखने क उस सक्रात काल (क्रिटिकल पीरियड) का पकड़े आर उसका उपयाग कर जो सहजतया पकड़ मे नहीं आता।

कनाडा के महान शिक्षाविद डॉ रोबी किड ने विद्यार्थियो के सीखने के सिद्धातो की चर्चा करत हुए अपनी पुस्तक हाऊ एडल्ट्स लर्न मे एक स्थान पर लिखा है कि कई बार विद्यार्थी आरभ मे कुछ प्रगति करता है उसके बाद देर तक नहीं करता फिर कुछ थोड़ी प्रगति करता है और फिर उसकी प्रगति धीमी पड़ जाती है। प्रगति के कुठित होने स विद्यार्थी के मन मे खीझ आना स्वाभाविक है। कभी-कभी इसके विपरीत विद्यार्थी आरभ म बिल्कुल प्रगति नहीं करता पर एक दफा वह प्रगति करने लगता है तो फिर रुकता नहीं।

यहाँ समझने की बात यह है कि जिन विषयो के सिद्धात आसानी से समझ मे आ जाते है या जब विद्यार्थी को उनके बारे मे पहले से बहुत जानकारी होती है तो उनको सीखने मे विद्यार्थी पहले तो प्रगति करता है पर बाद म धीमा पड़ जाता है। प्रगति के अवराध क पीछे मनोवैज्ञानिक एक कारण यह भी बताते है कि कई बार विद्यार्थी की प्रगति को बरकरार रखने के लिए अध्यापको को कुछ उपाय काम म लाने चाहिए जैसे प्रोत्साहन देना सीखने के उपाय म परिवर्तन करना अथवा छात्र को यह समझाना कि जिस बात को सीखने मे उसे कठिनाई आ रही है उसका विषय के अध्ययन म क्या महत्व है।

पशुआ को सिखाने के सिद्धात की चर्चा करत हुए डॉ किड ने लिखा है कि जा उपाय आम तौर पर काम मे लाये जाते है उनका आधार

यह होता है कि विशिष्ट परिस्थिति के कारण उसके मन म जो प्रतिक्रिया जागृत हाती है उसक स्थान पर हम नयी प्रतिक्रिया जागृत कर और इस प्रकार जानवर को सिखाएँ। घोड को सहला कर उस पर जीन कसा जाता है ओर सवारी की जाती है। ज़ाहिर है घोड़ा भयमुक्त होकर नई परिस्थिति स्वीकार कर लेता है। कई बार पशु को दड दकर समझाया जाता है। यहाँ भय है कि सिखान वाला व्यक्ति अनाड़ी है ओर जल्दवाजी करता है तो पशु सीखन की वजाय भयग्रस्त हो जाता है।

विद्यार्थी क बारे म भी यही प्रतिक्रिया होती है। नई वात सिखाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक आर ता हम शिक्षार्थी क अदर विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कर पर दूसरी आर अपनी जल्दवाजी से उस भयग्रस्त बना दे कि वह शिक्षक स बचने की काशिश कर आर उसकी प्रगति अवरुद्ध हो जाए।

बालको के शिक्षण म करो ओर सीखो का एक सिद्धात कोहलर क प्रयाग क वाद व्यवहार म आया। उसन एक लगूर का पिंजर म रखा। पिंजर म एक सदूक व एक डडा भी था ओर पिजर क ऊपर कुछ कल रखे थे। शुरू मे बदर कलो को कुछ दर दखता रहा तब उसने कूदना शुरू किया पर केले हासिल न कर सका। थाड़ी देर वाद उसन डडा उठाया ओर केलो पर दे मारा जिससे कले नीच गिर पड़।

इस घटना स स्पष्ट है कि प्रयत्नो और असफलताआ के बाद बदर क दिमाग म एक नई सूझ उपजी। एक बार जब वह समझ गया तो फिर भूला नहीं।

डॉ रोबी किड लिखते है कि यहाँ तीन बातें याद रखने की हैं (1) काम कैसे किया जाए यह बात लगूर समझ गया (2) जा ज्ञान उसने प्राप्त किया, वह स्थायी था और उसका प्रयाग वह अन्य परिस्थितिया म भी करने लग गया था (3) पिजरे केले सदूक डडे और अपनी आवश्यकता– इन सब अलग अलग चीज़ा की प्रतिक्रिया होने क बजाय इन सभी तत्वो का एक साथ सबध उसकी समझ म आ गया।

सीखने की इस विचारधारा मे हर वस्तु का उचित स्थान समझन और अपने उद्देश्य के लिए उसका उचित उपयाग करने पर बहुत महत्त्व दिया जाता है। पर इससे भी महत्त्वपूर्ण तत्व है मन म चाह का होना। अगर उद्देश्य और चाह इतनी स्पष्ट न होती तो सभवत बदर कुछ करने की ओर प्रेरित नहीं होता। शिक्षक के लिए यही आवश्यक है कि वह उस क्षण की या ता प्रतीक्षा करे या फिर उस क्षण को लाने क लिए

अपने सकारात्मक प्रयासों की गति तेज करे।

मान ले कि बालक कोई काम स्वय करने मे लगा है और बार बार असफल हो रहा है। शिक्षक उसे देख रहा है कि अमुक स्थान पर आते आते बालक गलत दिशा म चला जाता है और वाछित लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता। यहाँ अग्रेजी की कहावत याद रखनी चाहिए कि नथिंग सक्सीडस लाइक सक्सेस अर्थात सफलता से बढ़कर कोई प्रात्साहन नही होता। बार बार की असफलता से बालक निराश न हो जाए अत शिक्षक को उस मोड़ पर गलत दिशा म न जाने तथा भिन्न दिशा म जाकर देखने का सुझाव देना चाहिए।

परिस्थिति और प्रतिक्रिया के सबध पर आधारित सीखने की जो विचारधाराएँ मनोविज्ञान ने हमे दी हैं उनमे एक बड़ी कमी यह है कि व उद्देश्य और अनुभव का बिल्कुल भूल जाती हैं। बदर ने यदि केले न देखे होते तो उसमे कार्यशक्ति कैसे जाग्रत होती। मान लें केले स्थान पर कोई ऐसी चीज़ होती जिसमे कोई आकर्षण न हो तो न बॉक्स पर चढ़ता न डडा उठाता, न उस चीज़ को गिराने की करता। इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति कोई क्रिया करता है तो कोई उद्देश्य सुनिश्चित है। प्रारभिक उद्देश्य तो काम करता ही है क अदर नए नए उद्देश्य और जागृत होते रहते है यों प्रेरणा मिलती है।